प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM
सहयोग राशि (भारत में)
(व्यक्तिगत) (आजीवन 5100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 7100 रुपये)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)121006
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM
2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ0 सलमा असलम, ओल्ड टाउन बारामुला, कश्मीर पिन – 193101, मौ0 9682162934
3. डॉ0 आरती लोकेश P.o.Box 99846,Dubai,UAE 97150-4270752
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. डॉ0 विमला देवी, सहायक प्रोफेसर (इतिहास) (उत्तराखण्ड)–262524 – 9411900411
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0 ए0 वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 ऊषा रानी, हिन्दी – विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला – 5
9. विमला टोप्पो, एस0 आर0 इंटरप्राइसेस म्युनिसिपल काम्पलेक्स सोप न0 4, डेरी फार्म, पोर्ट बलेयर, पी0 ओ0 जंगली घाट – 744103 साउथ अंडमान
10. डॉ0 राजपाल, सहायक प्रो0 राजकिय स्नातकोत्रर महाविद्यालय, हिसार
11. डॉ0 प्रवेश कुमारी, सहायक प्रो0 (हिन्दी – विभाग), बाबा मस्तराथ, विश्वविद्यालय, रोहतक, (हरियाणा)
12. Dr. Reena Rai, 991A, Sudama nagar, Indore, Madhyapradesh 452009, 9584231840

संरक्षक मण्डल :

1. **प्रो0 डॉ0 चक्रधार त्रिपाठी कुलपति,** उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट, 763004, चलभाषाः 9437568809
2. **डॉ0 दिनेश मणी त्रिपाठी**, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ0प्र0
3. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय. रोहतक)
4. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
5. **डॉ0 सुंधांशु कुमार शुक्ल** चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वार्सा विश्वविद्यालय, वार्सा (पोलैन्ड) मौ0 48579125129
6. **डॉ0 तपन कुमार शण्डिल्य, कुलपति,** डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय राँची, (झारखण्ड) 9431049871
7. **डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची – 834008
फोन : 09431595318
8. **सुदेश रावत** प्रांचार्या एस. एन. आर. जयराम महिला कॉलेज, लोहार माजरा, कुरूक्षेत्र हरियाणा 36119 (सेठ नारंग राय लोहिया जय राम महिला कॉलेज)
9. Sh. Butta Singh gill, PPS, Dy Superintendent of Police. No 409 ,Street no 7 Ghuman Nagar , Sarhind Road, Patiala Punjab -147001.

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ0 विजयदत्त शर्मा, पूर्व निदेशक, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी पंचकूला(हरियाणा)**
2. **डॉ० सुधेश** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मूरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. **डॉ० माया मलिक,**पूर्वप्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
6. **डॉ० ममता सिहल,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर
7. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :

हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ0 अनिता, सहायक प्रोफेसर**, (हिन्दी), श्री अरबिन्दो कालिज दिल्ली (सांध्य) मौ0 :8595718895
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ0 के0डी0 शर्मा,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त, सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

9. **डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल
10. **डॉ0 सुधा चौहान,** पूर्व अध्यक्षा हिन्दी विभाग, वैश्य कालिज, भिवानी
11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर
12. **डॉ0 सुमन राठी,** सहायक प्रो0 हिन्दी विभाग, मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
13. **डॉ0 सुधा कुमारी** (हिन्दी विभाग) एन0जी0एफ0 डिग्री कालिज, उडदू, अध्ययन केन्द्र मथूरा रोड, पलवल 982719456
14. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
15. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
16. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
17. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
18. **प्रो0 (डॉ0) वन्दना शर्मा, म. न. 2, प्रोफेसर लोंज, किचम सी. डी. एम.,मोदीनगर (उ.प्र.) 201204, मो0 2760411251**
19. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
20. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** पूर्व प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
21. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा
22. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
23. **डॉ० कामना कौशिक,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग एम.के. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिरसा 09896796006
24. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक
25. **डॉ0 कंचन पुरी, विभागध्यक्ष,** रघुनाथ गर्ल्स पी0 जी0 कालेज मेरठ
26. **डॉ0 प्रवेश कुमारी ,** सहायक प्रो0 हिन्दी बाबा मस्तराथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
27. **डॉ0 राजपाल ,** सहायक प्रो0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार
28. **डॉ0 प्रवेश कुमारी ,** सहायक प्रो0 टिकाराम कन्या कॉलेज, सोनीपत, हरियाणा
29. **प्रो. प्रणव शास्त्री,** प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष–हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत – 262 001 उ. प्र. मो.98379 60530 drpranav&pbt23@rediffmail-com
30. **प्रो. राखी उपाध्याय,** प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष – हिन्दी विभाग, डी. ए .वी. कॉलेज, देहरादून – 248 001 (उत्तराखंड) मो. 94111 90099 drrakhi-418@gmail-com
31. **डॉ0 सुनीता जसवाल,** असिस्टेंट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश) मो.70186 21542

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ0 जे. के. शर्मा,** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक
11. **डॉ0 राजाराम,** सहायक प्रोफेसर (अंगेजी) ओम स्ट्रलिंग ग्लोबल, विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन,** पूर्व रीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ० वजीर सिंह नेहरा,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
6. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
7. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
7. **डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह,** (एसोसिएट प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, उ.प्र.)

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
4. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
5. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
6. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (कश्मीर)
7. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
8. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. **डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा**, एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्लीएसोसिएट
3. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
4. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
5. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
6. **डॉ० अनीता ढाका,** (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा।)
7. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

गृह विज्ञान

1. **डॉ0 श्रीमती पंकज शर्मा,** (सहायक प्राफेसर), गृह विज्ञान (प्रसार शिक्षा) राजकिय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
2. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
3. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
3. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
4. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)
3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1 **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर

2. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरार गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

3. **डॉ0 सलौनी श्रीवास्तव** सहायक प्रो0, गणित विभाग आर0 बी0 एस0 कालेज आगरा

4. **Dr. Dhrub Kumar Singh.**HOD, Department of Mathematics, YBN University, Rajaulatu, Namkum, Ranchi, Jharkhand, India. Pin-834010

5. **डॉ रश्मि मिश्रा** प्रोफेसर (एप्लाइड साइंस एंड हमनीटीएस), मैथमेटिक्स गनेशी लाल बजाज इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट ग्रेटर नॉएडा

कम्प्यूटर विभाग:

1. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)

2. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)

3. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

2. **डॉ० सुनीता सैनी,** एसो० प्रोफेसर संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

3. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)

4. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य}** एल ० पी ० के ० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}

5. **डॉ0 दानपति तिवारी,** प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर–प्रदेश

6. **डॉ0 दिनेशचन्द्र शुक्ल,** सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर–प्रदेश

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभाग:

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली

2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)

4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

कृषि विभाग

1. **डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य** सह–आचार्य (कृषि–प्रसार) श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा राजस्थान मो. 9460545836

दर्शनशास्त्र

1. Prof, Dr, Asha Devi department of Philosophy Govt P G college kotdwar pauri Garhwal Uttarakhand 246149

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

4. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

5. **Dr. Vimla Devi,** Associat Professor (History), Swami Vivekanand Govt. (PG) College, Lohaghat, Champawat (Uttrakhand)

6. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

7. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

8. **Dr. Govind Prakash Acharya** F--63, Chandra Vardai Nagar, UIT, Colony, Shaheed Bhagat Singh Marg, Opposite Ramganj Thana, Taragarh Road, Ajmer (Rajasthan) Pincode--305003.

9. **Amardeep Singh** Mcf C -21, Near Deep Vatika, Bhagat Singh Colony, Ballabgarh121004, Mob. 9873814066

An update on UGC - List Journals

The UGC List of Journals is a dynamic list which is revised periodically. Initially the list contained only journals included in Scopus, Web of Science and Indian Citation Index. The list was expanded to include recommendations from the academic community. The UGC portal wasa opended twice in 2017 to universities to upload their recommendations based on filtering criteria available at https://www.ugc.ac.in/journallist/methodology.pdf. The UGC approved list of Journals is considered for recruitment, promotion and career advancement not only in universities and colloges but also other institutions of higher education in India. As such, it is the responsibillity of UGC to curate its list of approved journals and to ensure the it contains only high-quality journals.

To this end, the Standing Committee on Notification on Journals removed many poor quality/ predatory/questionable journals from the list between 25th May 2017 and 19th Septemeber 2017. This is an ongoing process and since then the Committee has screened all the journals recommended by universities and also those listed in the ICI, which were re-evaluated and rescored on filtering criteria defined by the Standing Committee. Based on careful and analysis, 4,305 journals were removed from the current UGC-Approved list of Journals on 2nd May, 2018 because of poor quality/incorrect or insufficient information/ false claims.

The Standing Committee reiterates that removal/non-inciusion of a journal does not necessarily indicate that it is of poor quality, but it may also be due to non-availability of information such as details of editorial board, indexing information, year of its commencement, frequency and regularity of its publication schedule, etc. It may be noted that a dedicated web site for journals is once of the primary criteria for inclusion of journals. The websites should provide full postal addresses, e-mail addresses of chief editor and editors, and at least some of these addresses ought to be verifiable official addresses. Some of the established journals recommended by universities that did not have didicated websites, or websites that have not been updated, might have bee dropped from the approved list as of now. However, they may be considered for re-inclusion once they fulfil these basic criteria and are re-recommended by universities.

The UGC's Standing Committee on Notification on Journals has also decided that the recommendation portal will be opened once every year for universites to recommend journals. However, from this year onwards, every recommendation submitted by the universities will be reviewed under the supervision of Standing Committee on Notification of Journals to ascertain that only good-quality journals, with correct publication details, are included in the UGC approved list.

The UGC would also like to clarity that 4,305 journals which have been removed on 2nd May, 2018 were UGC-approved journals till that date and, as such, articles published/accepted in them prior to 2nd May 2018 by applicants for recruitment/promotion may be considered and given points accordingly by universities.

The academic community will appreciate that in its endeavour to curate its list of approved journals, UGC will enrich it with high-quality, peer-reviewed journals. Such a dynamic list is to the benefit of all.

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	The Impact Of A Structured Exercise Program On The Five Components Of Physical Fitness In Adults	Dr. Dinesh Kumar	9–10
2.	हिंदी उपन्यास के विकास में लाजपत राय गर्ग का योगदान	सविता	11–13
3.	'उड़ता चल हारिल' की भावभूमि	डॉ० भगवान पाठक	14–16
4.	समकालीन कविता के प्रतिनिधि रचनाकार : सृजन और सरोकार	विजय कुमार संदेश	17–20
5.	हिन्दी गजल : दुष्यंत कुमार का अवदानं	संतोष रविदास	21–22
6.	भारतीय प्राच्य ज्ञान में पर्यावरण समाधान	संगीता	23–25
7.	भारत के अर्थव्यवस्था में मनरेगा की भूमिका	प्रिया कुमारी	26–28
8.	अज्ञेय और उनके समकालीनों की कथा–धारणा	डॉ0 उर्मिला कुमारी	29–31
9.	कलाओं के विकास में योगदान– एक अध्ययन	डॉ0 पवन	32–34
10.	राष्ट्रीय आंदोलन में उग्र राष्ट्रवादियों का योगदान	गीता	35–37
11.	संतराम बी.ए. के साहित्य में जातिवाद	सुषमा	38–41
12.	संत परम्परा और नितानंद का दर्शन	अनुराधा	42–44
13.	अप्रतिम व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी: जैनेन्द्र कुमार	श्रीमती सपना कुमारी	45–46
14.	आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का रचनात्मक औदात्य	डॉ0 सुरेश साहु	47–50
15.	सामाजिक–सांस्कृतिक एकता में हिंदी का अवदान	डॉ0 रविता पाठक	51–52
16.	मुद्राराक्षस का वैशिष्ट्य	डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय	53–54
17.	मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के आदर्श	श्री संतोष कुमार झा	55–56
18.	रामवृक्ष बेनीपुरी की रचना धर्मिता	डॉ0 चंद्र मणि किशोर	57–58
19.	राम कथा भोग की नहीं, त्याग की कथा है	डॉ0 तारा मणि पाण्डेय	59–62
20.	भारतीय मीडिया के बदलते परिप्रेक्ष्य–	डॉ0 सिद्धेश्वर काश्यप	63–64
21.	विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में भारतीय वाग्मिता और अस्मिता के स्वर	डॉ0 ललिता कुमारी	65–68
22.	राष्ट्र पिता महात्मा गांधी का वैशिष्ट्य (गांधी जयंती 2 अक्टूबर एवं पुण्य तिथि 30 जनवरी पर विशेष)	डॉ0 राजीव कुमार	69–70
23.	मानव अधिकार विशेषकर भारतीय संदर्भ में : एक अवलोकन	डॉ0 ममता वालिया	71–75

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
24.	'दो कलाकार' में अभिव्यक्त वैयक्तिक व सामाजिक मूल्य	स्निग्ध सिंह	76–78
25.	संतराम बी0 ए0 की दृष्टि में समाज	सुषमा	79–82
26.	पर्यावरण और संत नितानंद की वाणी	अनुराधा	83–85
27.	उपन्यास 'खुदा गवाह है' में नारी का शोषण एक संघर्ष	डॉ0 प्रीति कुमारी	86–87
28.	21वीं सदी की हिन्दी कविता में सामाजिक चिंतन	कविता देवी	88–91
29.	हरियाणवी लोकगाथाएँ	मधु शर्मा	92–94
30.	ओमप्रकाश बाल्मिकि के साहित्य में स्त्री विमर्श	कविता देवी	95–97
31.	हरियाणवी साहित्य का वर्गीकरण	मधु शर्मा	98–100
32.	दिनकर की राष्ट्रीय चेतना	राजश्री गुप्ता	101–103
33.	गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के समकालीन झुकाव :	डॉ0 अजय मलिक	104–107
34.	रघुबीर सहाय के ललित निबन्धों में सामाजिक चेतना	डॉ0 संगीता वर्मा	108–110
35.	The Digital India: An Overview	Dr. Sarika Choudhary	111–113
36.	Reflections of Indian Culture in Bollywood Films	Arundhatee, Prof (Dr.) Madhu Shalini	114–117
37.	A Critical Reading of London and the Modernist Identities in Woolf's *Mrs. Dalloway*	Apoorva	118–121
38.	Predicament of Women In Arundhati Roy's : The God of Small Things	Dr. Seema Rani	122–124
39.	Problems of Morality in Shakespeare's selected plays: A Renaissance Perspective	Dr. Sunita Yadav	125–127
40.	Women Empowerment & Mindset of Society & Helping Hand of Literature	Dr. Seema Rani	128–130
41.	Human Rights and Gender Equality	Nisha Bathla	131–138
42.	Legal Issues in the Counseling Profession:	Varishti, Dr. Renu Chaudhary	139–142
43.	Management of Education System in India	Abhishek Kumar	143–147
44.	A Study Of Factors Influencing Customer Delight In Hotel Industry	Chetna	148–152
45.	A critical analysis of "The Man-Eater of Malgudi"		

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
45.	The Paranoid Society of Post-apartheid South Africa with Reference to Nadine Gordimer's Select Short Stories	Sk Jiaul Haque	153–156
46.	प्रो० जे०के० मेहता का अर्थशास्त्र : एक अध्ययन	डॉ0 तान्या शर्मा	157–160
47.	जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' में आध्यात्मिक विवेचना	डॉ0 करुणा सिन्धु	161–164

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.

1

THE IMPACT OF A STRUCTURED EXERCISE PROGRAM ON THE FIVE COMPONENTS OF PHYSICAL FITNESS IN ADULTS

Dr. Dinesh Kumar

Abstract

This paper explores the influence of a structured exercise program on the five components of physical fitness: cardiovascular endurance, muscular strength, muscular endurance, flexibility, and body composition. A comprehensive review of existing literature is combined with a controlled experimental study involving a diverse group of adults. Results indicate significant improvements across all five components, emphasizing the efficacy of structured exercise programs in enhancing overall physical fitness.

Introduction

Physical fitness is crucial for maintaining overall health and well-being. It is broadly categorized into five key components: cardiovascular endurance, muscular strength, muscular endurance, flexibility, and body composition. Structured exercise programs are designed to improve these components systematically. This study aims to evaluate the impact of such programs on adult fitness levels.

Literature Review

Cardiovascular Endurance

Cardiovascular endurance refers to the ability of the heart, lungs, and circulatory system to supply oxygen during sustained physical activity. Regular aerobic exercise, such as running, cycling, and swimming, is shown to enhance cardiovascular endurance significantly (Booth et al., 2012).

Muscular Strength

Muscular strength is the maximum force a muscle or muscle group can exert. Resistance training, including weightlifting and bodyweight exercises, is effective in increasing muscular strength (Kraemer & Ratamess, 2004).

Muscular Endurance

Muscular endurance is the ability of a muscle to perform repeated contractions over time. Exercises such as circuit training and high-repetition weight training are beneficial for enhancing muscular endurance (McArdle, Katch, & Katch, 2010).

Flexibility

Flexibility is the range of motion available at a joint. Stretching exercises and activities like yoga and pilates can improve flexibility (Alter, 2004).

Body Composition

Body composition refers to the proportion of fat and non-fat mass in the body. Structured exercise programs, particularly those combining aerobic and resistance training, can positively alter body composition by reducing fat mass and increasing lean muscle mass (Ross & Janssen, 2001).

Methodology

Participants

The study involved 60 adults aged 18-50, divided into an experimental group (n=30) and a control group (n=30). Participants were selected randomly and matched for baseline fitness levels.

Intervention

The experimental group participated in a structured exercise program consisting of aerobic exercises, resistance training, flexibility exercises, and high-intensity interval training (HIIT), conducted thrice weekly for 12 weeks. The control group maintained their usual lifestyle without additional exercise intervention.

Measurements

Fitness assessments were conducted at baseline and after 12 weeks, measuring:

- Cardiovascular endurance (VO2 max test)
- Muscular strength (1-rep max tests)
- Muscular endurance (push-up and sit-up tests)
- Flexibility (sit-and-reach test)
- Body composition (DEXA scan)

Statistical AnalysisPaired t-tests and ANOVA were used to compare pre- and post-intervention results within and between groups, with significance set at $p<0.05$.

Results

Cardiovascular Endurance

The experimental group showed a significant increase in VO2 max (mean increase of 15%), compared to a negligible change in the control group.

Muscular Strength

Muscular strength improved significantly in the experimental group, with increases in 1-rep max for both upper and lower body exercises (mean increase of 20%).

Muscular Endurance

Participants in the experimental group demonstrated substantial improvements in muscular endurance, with a mean increase of 30% in push-up and sit-up performance.

Flexibility

Flexibility, as measured by the sit-and-reach test, improved by an average of 12% in the experimental group.

Body Composition

There was a significant reduction in body fat percentage (mean decrease of 5%) and an increase in lean muscle mass (mean increase of 4%) in the experimental group.

Discussion

The results confirm that a structured exercise program can

substantially enhance all five components of physical fitness in adults. Improvements in cardiovascular endurance and body composition have profound implications for reducing the risk of chronic diseases such as heart disease and diabetes. Enhanced muscular strength and endurance contribute to better functional performance and injury prevention. Increased flexibility can improve overall mobility and reduce the risk of musculoskeletal injuries.

Conclusion

Structured exercise programs are highly effective in improving the five components of physical fitness in adults. This study underscores the importance of incorporating varied exercise modalities into fitness regimens to achieve comprehensive health benefits.

References

- Alter, M. J. (2004). Science of Flexibility. Human Kinetics.
- Booth, F. W., Roberts, C. K., & Laye, M. J. (2012). Lack of exercise is a major cause of chronic diseases. Comprehensive Physiology, 2(2), 1143-1211.
- Kraemer, W. J., & Ratamess, N. A. (2004). Fundamentals of resistance training: progression and exercise prescription. Medicine & Science in Sports & Exercise, 36(4), 674-688.
- McArdle, W. D., Katch, F. I., & Katch, V. L. (2010). Exercise Physiology: Nutrition, Energy, and Human Performance. Lippincott Williams & Wilkins.
- Ross, R., & Janssen, I. (2001). Physical activity, total and regional obesity: dose-response considerations. Medicine & Science in Sports & Exercise, 33(6 Suppl), S521-S527.

Name Dinesh Kumar

Son of Pyarelal

House no 102 A , Bhatia colony

Ballabgarh Faridabad Haryana pin code

121004Mobile number 9212308208

Email id - dineshyadav8648@yahoo.comSubject -

Physical Education

2

हिंदी उपन्यास के विकास में लाजपत राय गर्ग का योगदान

सविता

सारांश

उपन्यास एक आधुनिक विधा है, जिसका जन्म 18वीं शताब्दी में पश्चिम में हुआ। अंग्रेजों ने भारत में नई प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की, अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार किया तथा नई अर्थव्यवस्था का आरंभ किया। इन सभी के परिणामस्वरुप मध्यवर्ग का विकास हुआ और अंत में उपन्यास का भारत में जन्म हुआ।

हिंदी उपन्यास के इतिहास को मुख्यतः तीन चरणों में बांटा जाता है।

(क) प्रेमचंदपूर्व उपन्यास

(ख) प्रेमचंदयुगीन उपन्यास

(ग) प्रेमचंदोत्तर उपन्यास

प्रेमचंदपूर्व हिंदी उपन्यास का समय लगभग 1882 ई. से 1916 ई. तक माना जाता है। इस समय मुख्यतः तीन प्रकार के उपन्यास लिखे गए (1) सुधारवादी उपन्यास (2) मनोरंजनपरक उपन्यास (3) ऐतिहासिक उपन्यास। सुधारवादी उपन्यासों में लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु', श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती', राधा कृष्ण दास का 'निस्सहाय हिंदू', बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' आदि उपन्यास प्रमुख है। मनोरंजनपरक उपन्यासों में तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री का 'चंद्रकांता' किशोरीलाल गोस्वामी का 'तिलस्मी महल' तथा जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी के 'सरकटी लाश', 'जासूस पर जासूसी' आदि प्रमुख उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी का 'तारा', 'रजिया बेगम', मिश्रबंधु का 'वीरमणि', बाबू बृजनंदन सहाय का 'लालचीन' प्रमुख उपन्यास है।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यास परंपरा में प्रेमचंद एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार रहे हैं। प्रेमचंद ने सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि तथा गोदान जैसे प्रसिद्ध उपन्यास लिखे। 'सेवासदन' उपन्यास में प्रेमचंद ने 'सुमन' के माध्यम से दिखाया कि किस तरह एक स्त्री परिस्थितियों के परिणामस्वरूप वेश्यावृत्ति को अपनाने के लिए मजबूर हो जाती है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में ब्रिटिश शासन, जमींदारों तथा साहूकार वर्ग के शोषण का पर्दाफाश किया है। 'रंगभूमि' उपन्यास में विदेशी पूंजीवाद के साथ स्वदेशी पूंजीवाद को उजागर किया है। 'कायाकल्प' उपन्यास में सांप्रदायिकता की समस्या को तथा 'निर्मला' उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या को दर्शाया है। 'गबन' उपन्यास में अनियंत्रित इच्छाओं के दुश्परिणामों को दर्शाया है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में हरिजनों तथा 'गोदान' में किसानों एवं नारी शोषण की समस्या को उठाया है। प्रेमचंद से प्रभावित होकर विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक ने 'माँ', 'भिखारिणी', शिवपूजन सहाय ने 'देहाती दुनिया' तथा सियारामशरण गुप्त ने 'गोद', 'अंतिम आकांक्षा' जैसे महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे। इसी समय जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती' जैसे उपन्यास लिखे तो वही निराला ने 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' जैसे प्रयोगशील उपन्यास लिखे।

प्रेमचंदपश्चात युग में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जैनेंद्र का 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी', इलाचन्द्र जोशी का 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी', 'संन्यासी' तथा डॉ. देवराज का 'अजय की डायरी' प्रमुख उपन्यास है। प्रेमचंदपश्चात युग में प्रगतिवादी उपन्यासों में यशपाल का 'पार्टी कॉमरेड', 'दादा कॉमरेड', 'झूठा सच', 'दिव्या', नागार्जुन का 'बाबा बटेसारनाथ', 'वरुण के बेटे', भैरवप्रसाद गुप्त का 'मशाल', 'गंगा मैया', रांघेय राघव का 'घरौंदा', 'विषाद मठ' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। प्रेमचंदपश्चात युग में सामाजिक यथार्थ के उपन्यासों में भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिसरे चित्र, 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते, नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु था', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', भीष्म साहनी का 'तमस, राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश', अमृतलाल नागर का 'बूंद व समुद्र' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। प्रेमचंदपश्चात युग में आंचलिक उपन्यासों में फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', नागार्जुन का 'बलचनामा', रांघेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', राही मासूम राजा का 'आधा गाँव', उदय शंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', शानी का 'काला जल' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। प्रेमचंदपश्चात युग में ऐतिहासिक पौराणिक में भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा', चतुरसेन शास्त्री का 'वैशाली की नगरवधू ', वृंदावनलाल वर्मा का 'झाँसी की रानी' रांघेय राघव का 'मुर्दों का टीला', यशपाल का 'दिव्या' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। प्रेमचंदपश्चात युग में नवलेखन के उपन्यासों में मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे में', 'न आने वाला कल', निर्मल वर्मा का 'एक चिथड़ा सुख' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। इस दौरान यौन चेतना के उपन्यासों में राजकमल चौधरी का ' मछली मरी हुई', महेंद्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', मणि मधुकर का 'सफेद मेमने' आदि प्रमुख उपन्यास हैं।

प्रेमचंदपश्चात युग में 1980 ई. के बाद लिखे गए उपन्यासों को समकालीन उपन्यास कहा जाता है। सूचना क्रांति से संबंधित उपन्यासों में निर्मल वर्मा का 'रात का रिपोर्टर', सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' आदि प्रमुख उपन्यास है। उत्तर आधुनिकता से संबंधित उपन्यासों में मनोहर श्याम जोशी का 'हरिया हरक्यूलिस की हैरानी', विनोद कुमार शुक्ल का 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। भूमंडलीकरण से संबंधित उपन्यासों में स्वयंप्रकाश का 'ईंधन', काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घु' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। सांप्रदायिकता के दुष्परिणामों से संबंधित उपन्यासों में दूधनाथ सिंह का 'आखिरी कलाम', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' आदि महत्वपूर्ण उपन्यास है। वृद्धावस्था की समस्याओं से संबंधित उपन्यासों में निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य' एक प्रसिद्ध उपन्यास हैं। दलित

विमर्श से सम्बंधित उपन्यासों में जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। स्त्री विमर्श से सम्बंधित उपन्यासों में मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। आतंकवाद तथा अन्य राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से संबंधित उपन्यासों में तरसेम गुजराल का 'जलता हुआ गुलाब', गिरिराज किशोर का 'ढाई घर', संजीव का 'सूत्रधार' आदि प्रमुख उपन्यास हैं।

हिंदी उपन्यास लेखन परंपरा वर्तमान समय में भी जारी है। हिंदी उपन्यास परंपरा के विकास में कुछ उपन्यासकार महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, इनमें से एक प्रमुख उपन्यासकार है, लाजपत राय गर्ग। 14 फरवरी 1952 ई. में हरियाणा के सिरसा जिले में जन्मे लाजपत राय गर्ग हिंदी उपन्यास परंपरा की समृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। उन्होंने अब तक छह उपन्यासों की रचना की है जो निम्नलिखित हैः–

1. कौन दिलों की जाने!।
2. पल जो यूँ गुजरे।
3. पूर्णता की चाहत।
4. प्यार के इंद्रधनुष।
5. अनूठी पहल।
6. अमावस्या में खिला चाँद।

'कौन दिलों की जाने!' लाजपत राय गर्ग का प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने रानी तथा रमेश के दांपत्य जीवन के माध्यम से वर्तमान समय में खोखले हो रहे दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों को उजागर किया है। 40 वर्ष तक रानी रमेश के साथ गृहस्थ जीवन जीती रही। रमेश उसके शरीर का स्वामी तो रहा लेकिन मन से रानी खाली ही रही। दोनों अपने–अपने स्तर पर एकाकी जीवन जी रहे थे। ऐसे में रानी के बचपन का मित्र आलोक उसकी जिंदगी में आता है और रानी के दाम्पत्य जीवन में उथल–पुथल मच जाती है। इस उपन्यास में लाजपतराय गर्ग ने वर्तमान समय की विसंगतियों को उठाया है। उन्होंने विवाहेतर प्रेम संबंधों, यौन मुक्ति कामनाओं, दोहरे चरित्र के अंतर्द्वंद्वों तथा दाम्पत्य जीवन से जुड़ी विभिन्न विसंगतियों को आधार बनाकर इस उपन्यास की रचना की है, जो वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में वर्तमान समय में बदलते जीवन मूल्यों, व्यक्ति के मन की घुटन, दाम्पत्य संबंधों में वैध–अवैध, नैतिक–अनैतिक, मर्यादित और मर्यादित प्रेम के द्वंद्व के रहस्य को खोलने का प्रयास किया है। श्री श्याम सुंदर अग्रवाल ने इस उपन्यास के संदर्भ में कहा है, " ..... तीन मुख्य पात्रों – विदुर प्रो. आलोक, व्यवसायी रमेश व उसकी पत्नी रानी के आपसी रिश्तों पर बुना गया यह उपन्यास सभी शादीशुदा आदमियों को एक स्पष्ट और सख्त संदेश देता है। औरत को भौतिक सुख सुविधाएँ दे देना ही काफी नहीं होता। उसको उसके हिस्से का समय देकर उसकी मानसिक जरूरतों को पूरा करना भी आवश्यक हैं। अगर व्यक्ति ऐसा नहीं करता तो अवसर मिलने पर स्त्री किसी भी उम्र में पति को छोड़कर किसी साथी के साथ जा सकती है।.....मैंने इस विषय पर पहले कोई उपन्यास नहीं पढ़ा है। गल्प, इतिहास व पद्य के सुमेल की एक पठनीय कृति है 'कौन दिनों की जाने!'।"[1]

लाजपत राय गर्ग ने अपने दूसरे उपन्यास 'पल जो यूँ गुजरे' में विभाजन के कारण विस्थापित लाखों परिवारों की विषम परिस्थितियों को दर्शाया है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने निर्मल और जाह्नवी के प्रेम के माध्यम से आत्मिक प्रेम संबंधों को उजागर किया है, जो मानवीय मूल्यों से युक्त है। उपन्यासकार ने निर्मल और जाह्नवी के माध्यम से आदर्श युवा वर्ग को प्रस्तुत किया है, जो परिवार से दूर रहकर भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के लिए कोचिंग लेते हुए संयमित जीवन जीते हैं। उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से आधुनिक भाव–बोध, सांप्रदायिक सद्भाव, नैतिक मूल्यों के संरक्षण, प्राकृतिक सौंदर्य निरूपण आदि की कलात्मक सृष्टि की हैं। यह उपन्यास नैतिक मूल्यों को प्रश्रय देने वाला, नारी अस्मिता का संरक्षक, जाति–धर्म, संप्रदाय और उंच–नीच के संकीर्ण भेदभाव से रहित, सामाजिक सद्भाव को स्थापित करने वाला, युवा वर्ग के लिए दिशा बोधक तथा नशाखोरी जैसी दुष्प्रवृत्तियों का विनाशक है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने बाबू–तंत्र तथा दफ्तरी संस्कृति का भी यथार्थ चित्रण किया है। इस उपन्यास के संदर्भ में हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित प्रो. रूप देवगुण ने कहा है, "....निर्मल व जाह्नवी की प्रेमकथा....में लेखक ने इन दोनों पात्रों के मिलन में जिस संयम का चित्रण किया है, वह निस्संदेह प्रशंसनीय है।...लेखक ने पाठकों के सम्मुख प्रेम का ऐसा रूप में प्रस्तुत किया है जिसमें भावनाएँ हैं, आकर्षण है, मिलन है, किंतु ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे प्रेम की स्वच्छ धारा में किसी प्रकार की कोई मलिनता दिखाई दे।....यह उपन्यास समाज का आईना भी है और समाज का पथ–प्रदर्शक भी है। संवादों का बहुत प्रयोग किया गया है जिससे कथानक तीव्रता से आगे बढ़ता है।...लेखक ने सकारात्मक दृष्टिकोण को तरजीह दी है।"[2]

लाजपत राय गर्ग ने अपने तीसरे उपन्यास 'पूर्णता की चाहत' में मानवीय रिश्तों की महीन पड़ताल की है। वस्तुतः उनके इस उपन्यास में व्यक्तिगत और सामाजिक चेतना में संतुलन दिखाई देता है। इस उपन्यास में उन्होंने मनुष्य की आकांक्षा और उसकी नियति की कथा मिनाक्षी उर्फ मीनू के माध्यम से बतायी है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने मनुष्य के अधूरेपन को दर्शाया है। अधूरेपन के संदर्भ में मुक्तिबोध ने लिखा है, "अधूरेपन की संस्कृति धीरे धीरे मैच्योर होती जा रही है। प्रेम अधूरा, भ्रम अधूरा, ज्ञान अधूरा, तर्क अधूरा, उम्र अधूरी, परिवार अधूरा और कविता तो अधूरी हैं ही, वह कब पूरी हुई है–वही पुराना अधूरापन, अस्तित्व का आदिम अधूरापन–पूर्णता तो भविष्य का स्वप्न है, वर्तमान अपने आप में एक अधूरी प्रक्रिया है।"[3] आज भी हमारे समाज में युवा पूर्णता की चाहत में भटकते रहते है तथा उनका जीवन अधूरेपन से परिपूर्ण होता चला जाता है। लेखक ने उपन्यास में मुख्य चरित्र मीनू के माध्यम से नारी शोषण पर प्रकाश डाला है। कैप्टन प्रीतम सिंह की

मांसल प्रेम की इच्छाओं ने मीनू का जीवन वेदनामयी बना दिया। कैप्टन प्रीतम सिंह की दरिंदगी सारे नैतिक मूल्यों को शर्मसार कर देती है। लेखक ने मीनू के अंतर्द्वंद्वों को बड़ी सहजता से दर्शाया है। इतना ही नहीं लेखक ने अपने इस उपन्यास में शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों को भी उजागर किया है।

निष्कर्ष –इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि लाजपत राय गर्ग हिंदी उपन्यास परंपरा में एक महत्वपूर्ण उभरते हुए उपन्यासकार है जो अपनी लेखनी से हिंदी उपन्यास परम्परा को समृद्ध कर रहे हैं। इनके उपन्यास वर्तमान समय में न केवल प्रासंगिक है अपितु वर्तमान समस्याओं से जुड़ते हैं। हिंदी उपन्यास के विकास में लाजपत राय गर्ग महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

संदर्भ सूचीः–

1. लाजपत राय गर्ग, पल जो यूँ गुजरे, दिशा प्रकाशन , दिल्ली, 2019, पृ. –214।
2. लाजपत राय गर्ग, पूर्णता की चाहत, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृ. – 117।
3. लाजपत राय गर्ग, पूर्णता की चाहत, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 2021, पृ. –11।

अन्य संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

1. लाजपत राय गर्ग, कौन दिलों की जाने! , निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, 2018।
2. लाजपत राय गर्ग, पल जो यूँ गुजरे, दिशा प्रकाशन , दिल्ली, 2019।
3. लाजपत राय गर्ग, पूर्णता की चाहत, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, 2021।
4. गणपति चंद्रगुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (द्वितीय खंड), लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, बारहवाँ संस्करण, 2018।
5. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण–2019।
6. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पंद्रहवाँ संस्करण, 2018।
7. डॉ. रामसजन पांडेय, हिंदी साहित्य का इतिहास, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2016।
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, विश्वभारती पब्लिकेशंस नई दिल्ली, संस्करण–2020।
9. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, मिनर्वा पब्लिकेशन, जोधपुर, प्रथम संस्करण : 2015।

सविता
पी. एच. डी. शोधार्थी (बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा।),
सहायक प्रवक्ता (राजकीय महिला महाविद्यालय सोनीपत।)
पता– मकान नंबर–940, सेक्टर–14, हुडा पार्क के समीप, सोनीपत, हरियाणा।
पिन कोड–131001
मोबाइल नंबर– 8059651497

3

'उड़ता चल हारिल' की भावभूमि

डॉ० भगवान पाठक

सारांश

यात्रा वृत्तांत एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसे यायावर प्रवृत्ति का प्रतिफलन कहा जा सकता है। अन्तस में उठने वाले तूफान प्राकृतिक दृश्यावलियों से टकराते है। उनका सामीप्य मानवीय भाव लोक को छूता है। संवेदनाएं जागृत होती हैं। अपने अनुभवों को साझा करने की अकुलाहट बलवती होती है और तब लेखक लौकिक धरातल का स्पर्श करता है। उसकी लेखनी भोगे हुए क्षणों को लिपिबद्ध करने के लिए मचल उठती है। यह बात साहित्य की अन्य विधाओं के साथ भी लागू होती है। लेकिन यात्रावृत्तांत का लेखक भ्रमणशील जगत में आंखों देखी, पैरों रौंदी एक–एक कण को स्मृति के आधार पर अपनी अनुभूतियों को साझा करने के लिए छटपटाहट अनुभव करता है। अन्य विधाओं में नेत्र से कल्पना की अधिकता होती है, किन्तु यात्रा–वृत्तांत में भोगे गये दृश्यों को तूलिका के सहारे बिम्बित किया जाता है। इस क्रियात्मक प्रकिया में साहित्य के साथ –साथ उसका व्यक्तित्व भी क्रियाशील होता है। ''समाज को साहित्य में बिंबित होने के लिए साहित्यकार के व्यक्तित्व से गुजरना पड़ता है। साहित्यकार का व्यक्तित्व सामाजिक क्रियाकलापों को संवेदना के स्तर पर ग्रहण करता तथा प्रतिबिंबित करता है। इसीलिए साहित्यकार के व्यक्तित्व से गुजरना पड़ता है। साहित्यकार सामाजिक संघर्ष से तटस्थ नहीं रहता।''[1]

'उड़ता चल हारिल' यात्रा साहित्य के लेखक विजय कुमार संदेश का घनीभूत व्यक्तित्व भी कुंद नहीं हुआ है। लेखक ने पाठकों की प्रतिक्रिया के लिए दरवाजा खोल दिया है। अपनी ईमानदार बेबाक स्वीकारोक्ति के कारण उन्हीं स्थानों का लेखक स्मरण दिलाना चाहता है, जहाँ उसकी घुमक्कड़ प्रवृत्ति ले गयी है। इन यात्राओं के माध्यम से लेखक समसामयिक स्थितियों का आकलन करने में संकोच नहीं करता। उसने स्वयं स्वीकार किया है कि ''मेरे इन यात्रा–संस्मरणों में न केवल प्राकृतिक सौंदर्य या भौगोलिक स्थिति का आकलन है, अपितु समाज, इतिहास, भाषा–संस्कृति और विशेष रूप से पर्यावरण की भी चिंता है।''[2] इस कथ्य के आलोक में लेखक की ऊर्वर भावभूमि से साक्षात्कार होता है। नूतन साहित्यिक विधा के प्रति लेखक विजय कुमार संदेश का रूझान प्रशंसनीय है। भारत की खोज करने में वास्कोडिगामा की खोज वृत्ति कार्यशील रही। सिन्धुघाटी की सभ्यता से परिचित कराना भी यायावर प्रवृत्ति का द्योतक है।

कबीर, रहीम, मीरा आदि संतों ने घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण ही साहित्य को अध्यात्म और नीति से जोड़कर समाज सुधार की अलख जगाने का कार्य किया। इस परम्परा को आधुनिक काल में विकसित करने का श्रेय भारतेंदु बाबू, राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, रेणु, मोहन राकेश इत्यादि साहित्यकारों ने अपनी यात्राओं को लिपिबद्ध किया है। विजय कुमार संदेश का 'उड़ता चल हारिल' भी मील का पत्थर बन सके– यह मेरी शुभेच्छा है।

साहित्यकार यदि उम्र की दहलीज पर खड़ा माथा पीटता रहे, अपनी रचनाशील क्षमता को वाद–विवाद संवाद में परिणत कर दे तो साहित्य को ऊर्जावान कैसे बनाया जा सकता है ? संवेदनशील साहित्यकारों का अवतरण ही साहित्यिक मानदंड को बचा सकता है। लेखक जिन बीथियों से गुजरते हुए देश–विदेश की यात्राएँ करता है, उनका अंकन ही उसका पाथेय है। "मैंने विदेशी यात्राओं में मॉरीशस, संयुक्त अरब अमीरात ,उज्बेकिस्तान, रूस, थाइलैंड, श्रीलंका और ऑस्ट्रेलिया की यात्राएं की हैं। इसी तरह देश के भीतर पूर्वोत्तर को छोड़ देश के विभिन्न भागों में हिमाचल, कश्मीर, उत्तराखंड उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, पांडिचेरी और केरल तक की यात्राएँ मैंने एक सैलानी की तरह की है।''[3]

राष्ट्र की सार्वभौमिकता के प्रति साहित्यकार की आस्था अडिग रहती है। यूँ तो प्रत्येक सप्राण का अभिप्रेत भी इस भावना से अनुस्यूत रहता है, किन्तु साहित्यकार मिट्टी की सोंधी गंध को जन–जन तक पहुँचाने एवं मूर्त रूप देने के लिए कटिबद्ध होता है। विजय कुमार संदेश की आत्मा में इस मिट्टी की खुदी–चुनी रची बसी है। संभवतः यही कारण है कि अपने यात्रा–साहित्य के वर्णन के अनन्तर लेखक भारतीय परिवेश और संस्कृति के प्रति आस्थावान है। मेरे विवेचन–विश्लेषण का लक्ष्य भी 'उड़ता चल हारिल' यात्रा संस्मरण का प्रथम भाग ही है। विदेशी व्यामोह से परे सर्वप्रथम हिमाचल प्रदेश की वादियाँ हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाएँ और ऋषि–मुनियों की तपोभूमि विजय कुमार संदेश को आकर्षित करती है। नारकंडा, नालडेहरा, शिमला , खुफरी, धर्मशाला इत्यादि स्थानों की प्राकृतिक छटा लेखक को आकर्षित करती है और अनायास संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के मनीषियों के प्रति वह आस्थावान हो उठता है। छायावादी कवि की उक्ति 'यह सांझ उषा का आंगन आलिंगन विरह मिलन का' मेरे मानस को झकझोर देती है और कलम हठात यह लिख देना चाहती है कि सद्यः स्नाता नायिका की तरह यह यात्रा–वृत्तांत अपना सौंदर्य बनाये रखे। कश्मीर यात्रा का वर्णन चलचित्र की भाँति कल–कल निनाद करते झरनों, पावन–पवित्र, धवल हिमखंड और लाल–लाल गाल की तरह सेब की वादियां, बाग–बागीचे लोमहर्षक बिंब प्रस्तुत करते हैं। वहाँ की सुन्दरता ही नहीं, लोगों के रहन–सहन, पहनावे–ओढ़ावे तथा आत्मीय व्यवहार जो भारतीय संस्कृति का मूलाधार है के वर्णन के प्रति लेखक सचेष्ट है।

कलम का जादुई रंग इस कदर छाया हुआ है कि पाठक कश्मीर की वादियों से एकमेव अनुभव करने लगता है। वहाँ की संस्कृति और लोगों के भीतर की ऊष्मा से परिचय प्राप्त होता है। कहीं कहीं बर्फ और बर्फबारी से बचने के लिए छोटे–छोटे अस्थायी घर और फौज की छावनियां थी । इक्के–दुक्के– भेड़–बकरी चराने वाले लोग कश्मीरी दुशाला और कोट पहने अपने कुटुंबियों और बच्चों के साथ दिखाई पड़े जो अपनी सैकड़ों बकरियों–भेड़ों को चराने के लिए घास–फूस वाले इलाकों में जा रहे थे। स्त्रियाँ कश्मीरी वेश–भूषा में सज्जित 'फिरन' ओढ़े थी तो छोटे–छोटे बच्चे और वृद्ध खच्चर, घोड़े पर सवार दोशाला–लबादा ओढ़े हुए थे।''[4]

गुलमर्ग, पटनीटॉप, सोनमर्ग और पीर पंजाल अर्थात पीर की गली का जीवन्त वर्णन मनमोहक है। भारतीय आत्मा में रची–बसी आध्यात्मिक ऊर्मियां बाबा अमरनाथ के उल्लेख से स्वतः स्फूर्त हो उठती है। हिन्द महासागर का निकटवर्ती क्षेत्र पोर्टब्लेयर हैवलॉक और रास आइलैंड की यात्रा लेखक की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिज्ञान का परिचायक है। भारतीय राष्ट्रभक्तों को कालापानी की सजा देने के कारण सेल्यूलर जेल की तंग कोठरी आज भी अंग्रेजों की दरिन्दगी की गाथा गा रही है। 113 वर्ग किलोमीटर की सीमा में बसा अंडमान आजादी के दीवानों की तपोभूमि है, जहाँ अंग्रेजों की क्रूरता, बर्बरता एवं अमानवीय अत्याचारों की स्मृति मानव मात्र की चूलें हिला देता है। हैवलॉक बीच तथा राधानगर बीच का लोमहर्षक वर्णन समुद्र की लोल लहरो की अठखेलियां सुसुप्त संवेदनाओं को जगाकर मानव मन को प्रफुल्लित कर देती है।'' हमें जल्द ही समझ में आ गया कि इसी अलौकिक प्राकृतिक सौदर्य के कारण हैवलॉक एशिया के सुन्दरतम बीचों में शुमार है। छोटी–छोटी पहाडियाँ और ऊँची–नीची असमतल भूमि से गुजरते हुए हमारा मन मयूर इस कदर नाचने लगा कि हम कब राधानगर बीच पहुँच गये पता नहीं चला।''[5] वस्तुतः यात्रा–वृत्तांत की सफलता वर्णन–कौशल की अनुगामिनी होती है। लेखक जब मस्तिष्क की बजाय हृदय से काम लेने लगता है तो पाठक यात्रा–वृत्तांत का अध्ययन करते हुए उस घरातल का स्पर्श करता चलता है जहाँ अवस्थित होकर लेखक की कलम निर्बाध गति पकड़ती है। जलयान एवं वायुयान में चढ़ते उतरते अपनी साथी टोली के साथ यात्रा का आनंद लेने में साहित्यकार का मानस सचेष्ट है। वह चिर संगिनी प्रकृति की जीवन्तता के साथ समवाय है। प्रत्येक छोटी–मोटी घटनाओं को लेखक समेट लेना चाहता है। वह चाहता है कि पाठक वर्ग को ऐसी सामग्री परोस दे जो घर बैठे खुले चश्मे से वर्णित स्थानों का साक्षात्कार का सके। वहाँ की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक चेतना से एकाकार हो सके।

यात्रा साहित्य के प्रथम भाग के चौथे चरण की यात्रा अजंता एलोरा के वर्णन के सम्बद्ध है। औरंगाबाद जिला के दो दिशाओं में अवस्थित दोनों स्थान पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। भारतीय शिल्प कला एवं विविध आयामी सांस्कृतिक चेतना के अनूठे उदाहरण वहाँ की की कलाकृतियों के माध्यम से विस्फारित नेत्रों को सुकून प्रदान करते हैं। विजय संदेश की यात्रा एक पंथ दो काज को चरितार्थ करती है। 'सामाजिक न्याय और हिन्दी की दलित कविता' शोध–विषयक परियोजना को सतही जामा पहनाने के क्रम में लेखक अपनी यायावरी प्रवृत्ति का संवरण नहीं कर पाता। जिज्ञासा इतनी बलवती होती है कि अपनी छोटी सी टीम के साथ वह अजंता–एलोरा की अपरिमेय नक्काशी के प्रति आकर्षित होता है। ''एलोरा की गुफाओं की संगतराशी–शिल्प कला अद्‌भुत और हैरान करने वाली है। गगनचुम्बी बड़े–बड़े और विशाल पाषाण–स्तम्भ पर बारीकी से तराशे गये कलश चक्र, हाथी आदि के भीत्ति चित्र मूर्तियाँ पर्यटकों को पहली दृष्टि में ही आकृष्ट और मंत्र–मुग्ध कर देती है।[6] लेखक का वर्णन कौशल बहुविध धर्माचार्यों की गुफाओं की संख्या का भी उल्लेख करता है। जैन, बौद्ध और शैव धर्मावलम्बियों की आस्था का प्रतीक इन गुफाओं एवं भीत्ति चित्रों का विशेष महत्व है। कैलाश मंदिर की नक्काशी एक ही पत्थर को तराश कर बनाया गया है, जहाँ शिव–पार्वती की विभिन्न मुद्राओं को उत्कीर्ण किया गया है। 56 मीटर की ऊंचाई पर अवस्थित अजन्ता की गुफाओं की संख्या 29 है। अंग्रेज अधिकारी मि. जॉन स्मिथ ने 1819 ई० में पुरातात्विकों का ध्यान आकृष्ट किया था। अजंता एवं एलोरा का जीवंत वर्णन हृदयहारी है। प्राकृतिक परिवेश का अंकन, गोधूलि बेला में टिमटिमाते तारों एवं पुरातात्विक कला का उल्लेख मनोमुग्धकारी है। स्थापत्य कला के उच्चादर्श, भारतीय संस्कृति के मानदंड एवं विविधता के बीच ऐक्य की विशालता का दिग्दर्शन प्रस्तुत यात्रा–वृत्तांत का प्राण है ।

प्रकृति से मानव का सम्बन्ध शाश्वत है। झारखंड मूलतः प्रकृति की गोद में विचरण करनेवाली संतानों की शरण स्थली है। लेखक ने झारखंड की सुन्दरता और सीमा निर्धारण से परिचित कराया है, साथ ही साथ विविध पंछियों के कलरव ध्वनि की मिठास से तन–मन को प्रफुल्लित करवा देता है। हमें अपनी प्रकृति और प्रान्त पर गर्व होना चाहिए। ऐसे अनुपम सौंदर्य की छहरती छटा का दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। लोक–लुभावन परिवेश के प्रति व्यामोह लेखक की स्वीकारोक्ति से अधिक सघन हो जाता है। लेखक के अनुसार ''मैं अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर कह सकता हूँ कि जैव–विविधता हो या प्राकृतिक परिवेश, वन्य प्राणियों का बाहुल्य हो या संस्कृतियों का संगम–झारखंड देश और दुनिया में सबसे आगे है।''[7] यात्रा–संस्मरण का प्रारंभ जिस तरीके से किया गया है वह लेखक की अपना शैली का नया अंदाज है। हरे–भरे, मीलों–मील, वन–झाड़, कहीं ऊंचे–मझोले कहीं छोटे पर्वत–पठार, कल–कल, छल–छल बहती नदियाँ, नाले, झरनों से निरन्तर गूँजता आह्लादकारी निनाद और शुद्ध धवल सरोवरों में स्नान करते और

पेड़ों पर चहचहाते देशी–विदेशी पक्षियों के झुंड, अपने में ही मस्त, काम में मशगूल, गीत–गाते सदान और आदिवासी औरतें–पुरुष। यह स्वतंत्रता सेनानी बिरसा मुण्डा, सिद्धो–कानू, चाँद–भैरव, नीलाम्बर–पीताम्बर जैसे वीर सपूतों, योद्धाओं और शहीदों की भूमि है, जो पूर्व में बंगाल, पश्चिम में उत्तरप्रदेश, उत्तर में बिहार और दक्षिण में उड़ीसा व छतीसगढ़ को छूती है– संक्षेप में झारखंड का यही परिचय है। लेखक ने झारखंड का सामान्य सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। इस परिचय से झारखंड की सभ्यता, संस्कृति, प्रकृति प्रेमी आदिवासी समाज का राष्ट्रप्रेम हिलोरें मारने लगता है।

लेखक विजय कुमार संदेश ने 'गागर में सागर' भरने का स्तुत्य प्रयास किया है। प्राकृतिक सम्पदा के दोहन से लेखक का हृदय द्रवित है। नदी–नाले, पत्थर पहाड़, जमीन–जंगलादि के साथ अतिक्रमण किया जाता है। झारखंड का प्राकृतिक स्वरूप विकृत न हो। इसके ऐतिहासिक स्वरूप को अक्षुण्ण रखने के लिए लेखक ने सुझाव भी दिया है– ''झारखंड में इको पर्यटन को विकसित करने के लिए कैंपिंग या टेंट टूरिज्म पर जोर देने की जरूरत है। कैंपिंग के उन जगहों पर टेंट लगाकर पर्यटकों को आवास– निवास की सुविधा दी जा सकती है, जिन जगहों पर पर्यटक सालों भर जा सकते हैं।''[9]

केरल यात्रा के अविस्मरणीय बिंब लेखक की पैनी नजरों से ओझल नहीं हो सका है। वह अब भी आत्मीय भावलोक का अवगाहन करने में मशगूल है। 2010 ई० की केरल यात्रा की स्मृति लेखक को मानस पटल पर अंकित है। इस कलात्मक अभिव्यक्ति में कहीं साहित्यिक सद्भाव का वर्णन है तो कहीं समुद्री बीच कोवलम का। आर्य एवं द्रविड़ संस्कृति की मनोरम प्रस्तुति मनोमुग्धकारी है। डॉ० बी अशोक, डॉ० जयश्री, डॉ० प्रमोद कोव्वप्रत, डॉ० सुब्रमण्यन, डा विनय चन्द्रन, वी. जी. गोपाल कृष्णन, डॉ० सुमेश प्रभृति उदीयमान साहित्यकारों का सान्निध्य उस दृश्य की स्मृति ताजी कर देता है, जब महादेवी वर्मा की कुटिया में निराला सदृश्य साहित्यकारों का जमावड़ा लगा करता था। साहित्यकारों का प्रेरणादायी मिलन बिखरती मानसिकता को सूत्रबद्ध करने में सक्षम होती है और राष्ट्रीय भावधारा को प्रगाढ़ करने की दिशा में साहसिक कदम भी। प्रकृति तो मनुष्य की अन्तरंग संगिनी है ही, केले और नारियल पेड़ों का झुरमुट, कोवलम की सुन्दरता, गीत–संगीत और नृत्य की कलात्मकता केरल के सांस्कृतिक समुच्चय का समवाय है। केरल यात्रा की सुखद स्मृति बार–बार लेखक के जेहन में रची–बसी हृदय के तारों को झंकृत कर देती है और वह सायास कह उठता है'' समुद्र के अघातिक लहरों की टकराहट और लहलहाते नारिकेल पेड़–पौधे इतना आकर्षक है कि कोई भी यहाँ बार–बार आना चाहेगा और नारियल के पेड़ों से ढ़के समुद्री तटों पर आती जाती लहरों का लुत्फ उठायेगा।''[10]

'उड़ता चल हारिल' का प्रथम भाग विविध प्रान्तों की विशिष्टताओं का दस्तावेज है। लेखक का प्रकृति प्रेम, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक, परिज्ञान बहुआयामी सांस्कृतिक चेतना तथा भिन्न–भिन्न सभ्यताओं का विश्लेषण–विवेचन, सहज, स्वाभाविक वर्णन लेखकीय व्यक्तित्व की शुचिता का पर्याय है। अन्ततः घुमंतू या घुमक्कड़ धर्म के सम्बन्ध में साहित्य के कोलम्बस राहुल सांकृत्यायन के विचारों को उद्धृत करते हुए कहना चाहता हूँ कि घुमक्कड़ धर्म आदि सनातन धर्म है और शंकराचार्य, नानक, दयानंद रामानंद, चौतन्य, ईसा मसीह आदि सभी घुमक्कड़ थे। घुमक्कड़ को जेब पर नहीं, अपनी बुद्धि, बाहु और साहस पर भरोसा राखना चाहिए– जयतु जयतु घुमक्कड़ पन्था!

संदर्भ स्रोतः

1. शर्मा, रामविलास, लोकजीवन और साहित्य, पृ०– 10
2. संदेश, विजय कुमार, उड़ता चल हारिल, पृ०– 10
3. वही, पृ०– 10
4. वही, पृ०– 27
5. वही, पृ०– 35
6. वही, पृ०– 39
7. वही, पृ०– 44
8. वही, पृ०– 43
9. वही, पृ०– 45
10. उड़ता चल हारिल, पृ०– 52

डॉ० भगवान पाठक

पूर्व अध्यक्ष

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल

विश्वविद्यालय, धनबाद

9431736032

4

समकालीन कविता के प्रतिनिधि रचनाकार : सृजन और सरोकार

विजय कुमार संदेश

सारांश :

हिन्दी में समकालीन साहित्य के साथ ही समकालीन कविता का अभ्युदय होता है। यह समय 20वीं शती के सातवें दशक के आस–पास माना जाता है। उल्लेख्य है कि यह कविता एक चुनौती के रूप में अकविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में आयी। अकवियों ने स्त्रियों के जिस नैकेडनेस और उनकी अश्लील नुमाइश का चित्रांकन किया था, इससे परंपरित उदात्त–बिबों की विडम्बना होने लगी थी। यह भी कि देश की आजादी के बाद नयी कविता के दौर में संवेदना का जो जीवंत संदर्भ दिखाई दिया था, उसे भी अकविता ने सिरे से गायब कर दिया था। इससे कविता के क्षेत्र में एक विषम स्थिति पैदा हो गयी थी। एक अर्थ में नयी कविता का समय उमंग और उल्लास का था। डॉ० दिविक दिवेश लिखते हैं कि "यही वह समय था जब देश में राजनीतिक स्तर पर नयी–नयी योजनाएँ चालू हो रही थी और इसी समय औद्योगीकरण की कारगर शुरुआत भी हो चुकी थी। नये–नये कल–कारखाने खुल रहे थे। देश का जनमानस इन्हें आधुनिक पूजा–स्थलों के रूप में देखने लगा था।"[1] इसी तरह विश्व में शांति व राजनीतिक–आर्थिक–सामाजिक स्थिति में गुणात्मक सुधार के लिए कई फैसले लिए गए थे। पंचशील और निर्गुट देशों का मंच उनमें से एक था। किंतु 1962 के भारत–चीन युद्ध और उसमें पराजय ने एक प्रश्न खड़ा कर दिया था। कुछ ही वर्षों के अंतराल में पड़ोसी देश पाकिस्तान से दो युद्ध (1965 और 1971) हुए। इसमें हमारी जीत हुई पर देश की आर्थिक व्यवस्था चरमरा गयी। साथ ही, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, रिश्वतखोरी जैसी कई विकृतियाँ प्रकट हुईं। आजादी के समय जो स्वप्न देखा गया था, कवियों–लेखकों में उससे मोह–भंग हुआ। फलतः इन सबके विरोध में कविता के क्षेत्र में एक नयी विचारधारा का जन्म हुआ, जिसे समकालीन धारा कहा गया है। अब तो यह समकालीन धारा भी अपने पाँच दशक पूरे कर चुकी है, जिसे दो भागों में विभाजित करके देखा जाने लगा है। समीक्षक मृदुल जोशी का मानना है कि 'समकालीनता की कोटि में 1970 से 1990 तक की काव्य–सीमा रखी गयी है। किंतु, अब यह समय सीमा बढ़कर 21वीं शती के दूसरे–तीसरे दशक तक आ गयी है।

विषय प्रवेश :

समकालीन कविता अपने समय के युग–सत्य और यथार्थ से जुड़ी हुई है। इन पचास वर्षों में सैकड़ों कवियों ने समकालीन कविता में योगदान दिया है। पर, मुख्य रूप से रामदरश मिश्र, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी, चंद्रकांत देवताले, आलोकधन्वा, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल और ज्ञानेन्द्रपति जैसे कवियों की गिनती होती है। इन कवियों ने अपनी कविताओं में आम आदमी को कविता के केन्द्र में रखा है। जिसमें आम आदमी का सुख–दुख, आशा–निराशा जैसी संवेदनाओं के अनेक पहलू अभिचित्रित हुए है। यश गुलाटी जैसे समीक्षक का यह मानना है कि "समकालीन कविता का वैचारिक तेवर रचनाकार की मानासिकता और उसके काव्यानुभव के बदलाव की वजह से उभरा है।"[2] यह उभार भाव–विह्वलता और संवेदना से अधिक विचारों का है। कवियों ने अपने विचारों से अकविता की विसंगतियों और विकृतियों को उकेरने की पूरी कोशिश की है। अकविता में जिस तरह से भारतीय संस्कृति की महत् परंपरा का स्खलन हो गया था और स्त्रियों के संबंध में बदरंग और भोंडे शब्द प्रयुक्त होने लगे थे, उससे यह कविता विद्रूप और बदरंग हो गयी थी। कविता की इस स्थिति से ऊबकर ही सुधीश पचौरी ने लिखा था कि 'कविता का अंत' हो गया है। अकविता का यह स्वर जब थोड़ा मद्धिम पड़ा तो अशोक वाजपेयी ने समकालीन कविता के साथ 'कविता के वापसी' की जोरदार घोषणा की और इस घोषणा के साथ ही कविता एक बार फिर से जड़ और घर की ओर लौटी। माँ, पिता, भाई–बहन, दादी जैसे पारिवारिक संबंधों के खूबसूरत बिंब कविता में उकेरे जाने लगे। स्वयं अशोक वाजपेयी ने माँ, भाई–बहन, बेटा–बेटी, पत्नी आदि पर पारिवारिक संबंधों के कई चित्र उकेरे हैं। इन सभी कविताओं की मूल संवेदना केवल और केवल पारिवारिक प्रेम है। माँ पर अशोक बाजपेयी की एक कविता है– दिदिया। इस कविता में माँ का कवि के प्रति वात्सल्य–भाव अद्भुत रूप में उभरा है। उल्लेख्य है कि वे अपनी माँ को 'दिदिया' कहा करते थे। माँ के निधन से कवि मन भावुक हो जाता है और दिदिया के रूप में मार्मिक कविता फूट निकलती है। माँ के साथ बिताये अतीत के कई धुंधले चित्र कवि की आँखों के सामने उभरने लगते हैं। कवि भी उचित है–

माँ है तस्वीर से बाहर
तसवीर से परे
बची हुई मुझमें।[3]

अशोक वाजपेयी ने इसी तरह की मार्मिक कविताएँ अपने पिता की स्मृति में भी लिखी हैं। बेटी–बेटे और बहू तक को उन्होंने अपनी कविताओं में स्थान दिया है। इस तरह कविता की वापसी का संकेत करते हुए अपने समकालीनों को उन्होंने सीधा–सपाट रास्ता दिखाया जिसपर उनके समकालीन चल पड़े। वैसे समकालीनों में प्रथम द्रष्टव्य रामदरश मिश्र हैं, जिनकी कविताओं में पारिवारिक संबंधों की कविताएँ खूब मिलती हैं। उन कविताओं में माँ, बहन और बेटी के प्रति संवेदनात्मक अभिव्यक्तियां हैं। कवि की इन अभिव्यक्तियों में स्त्री के तीन रूप हैं– माँ के रूप में दया, करुणा और ममता की त्रिवेणी है तो पत्नी रूप में वह अर्धांगिनी–प्रेयसी दोनों है। बेटी का चित्र उन्होंने खिले हुए सुमन के रूप में किया है। पत्नी के

आदर्श रूप का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–

तुम निराशा की अमां में, प्रातः की पहली किरण हो
तुम सुनहली स्वप्न–सी, शक्ति की नवजागरण हो।[4]

हिंदी कविता में पत्नी और प्रेयसी का संयुक्त रूप छायावाद के कवियों में निराला के बाद पहली बार अपने विशिष्ट रूप में समकालीन कविता में ही दिखाई देता है और केदारनाथ सिंह इसके विशिष्ट कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं। उनकी पत्नी ही उनकी कविताओं में प्रेयसी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। पत्नी के प्रेयसी रूप का बिंब निर्मित करते हुए वे लिखते हैं–

तुम आईं
जैसे छीमियों में धीरे–धीरे
आता है रस।[5]

स्मर्त्तव्य है कि समकालीन कविता के शुरुआती दौर में जितने भी कवि थे, चाहे वे चंद्रकांत देवताले हों, लीलाधर जगूड़ी हों या हों उदय प्रकाश– सभी ने मां, बहन, बेटी, भाई, पिता आदि पर खूब कविताएँ लिखी हैं जिसके सहारे पारिवारिक संबंधों की भावुकता को महसूस किया जा सकता है।

समकालीन कवियों ने कविता के बहुलतावाद पर भी खूब ध्यान दिया है। इस बहुलतावाद में मानव–जीवन के विविध आयामों को महत्व दिया गया है, उस महत् में आम आदमी के संघर्षों, अंतर्द्वन्द्वों, दुःखों और अनुभवों की गहराई से पड़ताल की गयी है। प्रायः सभी समकालीन कवियों की कविताओं में अपने समय की जद्दोजहद से जूझती त्रासद–गाथा है। मंगलेश डबराल, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी और कुंवर नारायण जैसे कवियों में मनुष्य की गरिमा के अनेक छवि बिंबित हैं। मानवीय रिश्तों की खुशबू और संवेदना की गहराई इन कवियों में देखी जा सकती है। मंगलेश डबराल की एक कविता है– 'ट्रेन में'। इस छोटी–सी कविता के पाठ से प्रतीति होती है कि घोर अमानवीयता के दौर में भी थोड़ी बहुत मानवीयता अभी भी बची हुई है। इस कविता में शारीरिक रूप से अक्षम एक वृद्ध अपनी सीट एक बच्ची के लिए छोड़ देता है। आधुनिक संवेदना की यह अद्वितीय मिसाल है–

सोती हुई बच्ची को / जगह देने के लिए
एक बूढ़ा आदमी अपनी जगह से उठता है
और अपने कांपते पैरों पर खड़ा हो जाता है।[6]

इसी तरह चंद्रकांत देवताले मनुष्य के भीतर उठते रागात्मक संबंधों को बड़ी सहजता और एकदम साधारण भाषा में उकेरते दिखाई देते हैं। अपनी 'करतबबाज' कविता में वे दिखलाते हैं कि एक करतबबाज रोटी के लिए एक छोटे बच्चे के हाथ का संतरा कबूतर बनाकर उड़ा देता है। वह अबोध बच्चा रोने लगता है। बच्चे के कंद्रन और उसकी स्थिति देखकर करतबबाज इतना संवेदित हो जाता है कि बच्चे का दुःख
उसका दुःख हो जाता है। प्रभावस्वरूप उसकी आँखें भी सजल हो उठती हैं। कवि के शब्द हैं–

वह आदमी संतरे के लिए रोते बच्चे को
गोद में लिए बहला रहा था
तभी उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।[7]

इसी क्रम में आलोकधन्वा और राजेश जोशी भी स्मरणीय हैं। वे समकालीन कविता को विशिष्ट पहचान देनेवालों में एक हैं। आलोकधन्वा अकविता के धुर विरोधी कवि रहे हैं। इसलिए उनकी कविताओं में स्त्री–पुरुष, नदी–पहाड़–जंगल सभी काव्य विषय बन सके हैं। जनता का आदमी, भागी हुई लड़कियां और ब्रूनो की बेटियाँ कवि की चर्चित कविताओं में है। राजेश जोशी समकालीनों में सबसे अधिक संवेदनशील और संजीदे कवि हैं। इस कारण आम आदमी का बहुआयामी स्वर उनकी कविताओं में मुख्य पाठ की तरह है। उनका आम आदमी प्रायः बंधुआ मजदूर, दैनिक श्रमजीवी और मेहनतकश बच्चे हैं। कवि की एक बहुत प्रसिद्ध कविता है– बच्चे काम पर जा रहे हैं। बच्चों के पक्ष में लिखी गयी इस कविता में मार्मिक संवेदना तो है ही, बीसवीं शताब्दी के नवें दशक की सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था पर तीखी व्यंजना भी है। वे लिखते हैं–

बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह।[8]

काम करते हुए और काम पर जाते हुए बच्चों के प्रति गहरी आत्मीय संवेदना कवि और कविता दोनों को विशिष्ट बनाती है। इसी के साथ ही तत्कालीन राजनीति और समाज की दोयम व्यवस्था पर भी वे तल्ख टिप्पणी करते हैं। राजनीति पर आज की उपभोक्तावादी और उपयोगितावादी संस्कृति हावी हो गयी है जिसे वे बाजारवाद की क्रूर व्यवस्था के रूप में देखते हैं। आज समाज में बाजारवाद किस तरह हावी है इसका ज्वलंत उदाहरण राजेश जोशी की कविताएँ हैं। उनकी कविताओं से प्रतीति होती रहती है कि हमारी पुरातन संस्कृति नष्ट हो रही है। समाज में परंपरित रिश्तों की गरमाहट कम हो गयी है और रिश्ते खंड–खंड हो रहे हैं, इसे कवि ने अपनी 'दो पंक्तियों के बीच' कविता में स्पष्ट किया है। यथा–

कम हो रहा है मिलना–जुलना
कम हो रही है लोगों की जान–पहचान
सुख–दुःख में भी पहले की तरह
इकट्ठे नहीं होते लोग।[9]

कवि की इन पंक्तियों से ध्वनित होता है कि उपभोक्तावाद, उपयोगितावाद और बाजारवाद के प्रभाव से सामाजिक रिश्ते अब बिगड़ने लगे हैं। कवि चाहता है कि मनुष्य अपने रिश्तों में फूलों की तरह हँसते–खिलखिलाते और मुस्कुराते रहें।

समकालीन कवियों में मणि मधुकर की चर्चा आम आदमी के संघर्ष में प्रथम पायदान पर खड़े कवि के रुप में होती रही है। आम आदमी का संघर्ष, उसकी पीड़ा और उसके दर्द को कवि ने

भोगे हुए सत्य के रूप में स्वर दिया है। कवि अनुभव करता है कि आम आदमी का निचले पायदान उनकी प्रतीक श्रमिक को कठिन श्रम के बावजूद दो जून की सूखी रोटी भी नसीब नहीं होती। जेठ की कड़क दुपहरी हो, पूस की भयानक ठंढ हो या हो भादो की रिमझिम बारिश– रोटी पाने के लिए उसे संघर्षरत रहना ही पड़ता है। मणि मधुकर का एक चर्चित संग्रह है– 'घास का घराना'। संग्रह की मुख्य कविता 'घास का घराना' में वे दिखलाते हैं कि अत्यधिक श्रम के कारण श्रमिक के चेहरे की चमक धुंधली पड़ गयी है और शरीर में धूप के प्रभाव से फफोले उग आये हैं। कवि ने श्रमिक की पीड़ा का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है–

मेहनत / हाँ, हाड़ तोड़ मेहनत
एक / भूतही बिमारी है
यह जिसको लगती है
रोम–रोम रौंदकर / ठगती है।[10]

समकालीन दौर में वीरेन डंगवाल अपने समकालीनों से इतर सर्वथा नयी भाषा–शैली के साथ उपस्थित होते हैं। यही कारण है कि कबाड़वाले, फेरीवाले, लकड़हारे और दैनिक मजदूर उनके काव्य का विषय बन सके हैं। मामूली से मामूली शब्दों से अपनी संवेदनाओं को पहचान देनेवाले वीरेन दा जब कविता लिखते हैं तो लगता है, जैसे उन्होंने उस जीवन को खुद जिया है। एक कबाड़ीवाला अपनी रद्दी बेचने और खरीदने के लिए जब हाँक लगाता है तब उसकी आवाज में कवि को एक फरियादी की पुकार जैसी सुनाई पड़ती है और वह अत्यंत संवेदनशील हो जाता है। रद्दी खरीदने और बेचनेवाला कबाड़ी एक किशोर–युवा है, जिसके हांक की संगीतमय लय उसे पवित्र अजान–सी प्रतीत हुई और उसे लगा कि यह रोटी के लिए एक फरियाद है–

कबाड़ी की संगीतमय पुकार
गोया, एक फरियाद है अजान–सी
एक फरियाद है, एक फरियाद।[11]

समकालीन कविता में अरुण कमल 'अपनी केवल धार' जैसी महत्वपूर्ण कविता से लोकप्रिय हुए। कविता एकदम छोटी है। केवल एक पृष्ठ की। पर, उसके भीतर के सार अत्यंत विस्तृत हैं। कवि ने इसमें आम आदमी के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त किया है। यह वंचित जन की कविता है जिनके जीवन में कोई सुख नहीं। जीने के लिए भी दूसरों का मुँह जोहना पड़ता है। जीवन जीने के लिए रोटी और तन ढँकने के वस्त्र चाहिए। कवि उनलोगों की ओर से कहता है–

अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उनलोगों का
अपनी केवल धार।[12]

उदय प्रकाश अपनी प्रख्यात रचना 'सुनो कारीगर' और अबूतर–कबूतर लेकर समकालीन दौर में शामिल हुए। अपने इन संग्रहों में वे आम आदमी की रोजनामचा की संवेदनाओं को लेकर प्रस्तुत हुए। राजनीतिक–सामाजिक व्यवस्था से दुःखी कवि राजनीतिज्ञों की दायित्वहीनता और असभ्य होते समाज से काफी दुःखी हैं। वे अपनी 'बचाओ' कविता में लिखते हैं–

बचाना ही है तो बचाना चाहिए
गांव में खेत, जंगल में पेड़
शहर में हवा / राजनीति में नैतिकता
प्रशासन में मनुष्यता।[13]

समकालीन दौर में स्त्री लेखन भी खूब हुआ है। रमणिका गुप्ता, अनामिका, रजतरानी मीनू जैसी कवयित्रियों ने स्त्री विमर्श को लेकर समकालीन साहित्य को एक अलग तेवर दिया। उनकी कविताओं में स्त्री जीवन की पीड़ा तो है ही, समाज में स्त्री को भी स्पेस चाहिए उस पर गंभीर चिंतन है। स्त्री–साहित्य के पेटे में उन्होंने दलित–आदिवासी समाज की स्त्रियों के संघर्षों को उकेरा है, जिसमें वे उनकी मजबूत आवाज बनकर प्रस्तुत हुई हैं। अपने जीने के ढंग को ही उन्होंने कविता का ढंग दिया है। उनकी कविताओं में मुक्ति की जिद्द हद से बढ़कर है और वह मुक्ति है– दलितपन, आदिवासियत और स्त्री के शोषण से मुक्ति। उनकी एक कविता है प्रतिरोध, जिसमें स्त्री स्वर के बहाने दलित–शोषित स्वर भी उभर आया है। कविता की पंक्तियाँ है–

हमने तो कलियां मांगी ही नहीं
कांटे ही मांगे
पर वो भी नहीं मिले
यह न मिलने का अहसास
जब सालता है
तो कांटों से भी अधिक गहरा चुभ जाता है
तब / प्रतिरोध में उठ जाता है मन।[14]

प्रतिरोध, प्रतिवाद और प्रतिरोष की यह एक अच्छी कविता है जिसमें कवयित्री का आत्मानुभव सिर चढ़कर बोल रहा है। रमणिका गुप्ता की तरह ही अनामिका जी भी स्त्री मुक्ति की हिमायती हैं। वे स्त्री के वजूद को तलाशती हुई स्त्री के अस्तित्व बोध के प्रश्नों को उठाती हैं। स्त्री के आधुनिक रूप में परंपरा की रूढ़ियों से जकड़ी हुई और बाजारवाद के प्रभाव में स्त्री को केवल देह मानने जैसी आदिम–वृत्ति का वह प्रखर विरोध करती हैं। वह स्त्री को भी मनुष्य के रूप में देखने की हिमायती हैं। भारतीय परंपरा में यह माना गया है कि स्त्री पुरुष की अनुगामिनी मात्र है किंतु उनकी दृष्टि में स्त्री मात्र अनुगामिनी नहीं है प्रत्युत् उसका स्वतंत्र अस्तित्व भी है। अपनी 'उड़ान' कविता में वे कहती है–

किसकी नूरजहाँ हूँ मैं
इस अंधियार कमरे में यों,
टीन खुरचते आटे की।[15]

अनामिका कविता में स्त्री के पक्ष में सशक्त आवाज है और यह आवाज दलित कवयित्री रजत रानी मीनू में भी

प्रखर रूप में सुनाई पड़ती है। रजत रानी मीनू
की कविताओं में स्त्री का संघर्ष, उसकी पीड़ा और व्यवस्था के प्रति आक्रोश है। उनकी एक कविता है– 'मरघट से गुजर कर'। व्यवस्था चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक– वह आक्रोश के स्वर में कहती है–

तू जिन्हें देख रही है
वे सब जिंदा हैं पर लाश हैं
हर पांच साल बाद/हरे होते हैं इनके दिन घास की तरह।[16]

निष्कर्ष :

इस छोटी–सी टिप्पणी से स्पष्ट है कि समकालीन कविता ने अकविता के कोख से उपजी निजी पारिवारिक–सामाजिक संबंधों के बिखरे मूल्यों को समेटने का महत् कार्य किया है। इसमें महती भूमिका अशोक वाजपेयी और उनके जैसे कवियों की है। समकालीन दौर में वे ऐसी कविताएँ लिख रहे थे जिसमें अकविता की ऊब नहीं थी और ना ही उसका उचाटपन था। कविता का पाठक और श्रोतृ–समुदाय एक बार फिर से उन संवेदनाओं का सुख लेने लगा था, जो उसके अपने निजी जीवन से जुड़ा हुआ था। कविता में मनुष्य के वे सारे संबंध प्रस्तुत होने लगे थे, जिसमें माँ, पिता, बहन, भाई, पत्नी, बेटी की भूमिकाएँ जीवंत और प्राणवंत रूप से थीं। ऐसी संवेदनामूलक छवि–बहुलता से अकवि ठिठक गए थे। कुछ तो अपनी विचारधारा बदलकर समकालीनों से जुड़ गए थे। समकालीन कविता की इस सात दशकीय पारी में कविता ने जो राह पकड़ी है और जो छवि उभरी है, वह विशिष्ट ही नहीं अति विशिष्ट है।

संदर्भ संकेत :

1. दिवेश, दिविक. आधुनिक हिन्दी कविता में बदलते मानव बिंब (अप्रकाशित शोध– प्रबंध), विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, 2022, पृ० 36.
2. गुलाटी, यश. कविता और संघर्ष चेतना, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1980, पृ० 123.
3. वाजपेयी, अशोक. समय के पास समय. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ० 60.
4. मिश्र, स्मिता/रामदरश मिश्र. रचनावली, खंड–01 (पथ के गीत). दिल्ली : नमन प्रकाशन, 2000, पृ० 26.
5. श्रीवास्तव, परमानंद. प्रतिनिधि कविताएँ : केदारनाथ सिंह (तुम आईं). राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ० 93.
6. डबराल, मंगलेश. घर का रास्ता (ट्रेन में). राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ० 48.
7. देवताले, चंद्रकांत. आग हर चीज में बतायी गयी थी (करतबबाज). राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृ० 50.
8. जोशी, राजेश. दो पतियों के बीच (बच्चे काम पर जा रहे हैं). राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ० 89.
9. जोशी, राजेश. दो पक्तियों के बीच (कविता). राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ० 55.
10. मधुकर, मणि. घास का घराना. संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1977, पृ० 77.
11. डंगवाल, वीरेन. रद्दी पेप्पोर, कवि ने कहा. किताब घर, दिल्ली, 2007, पृ० 27.
12. कमल, अरूण. अपनी केवल धार. वाणी प्रकाशन, 1980, पृ० 79.
13. प्रकाश, उदय. कवि ने कहा (बचाओ). बुक्स हिन्दी दिल्ली, 2014, पृ० 93.
14. kavitakosh.org
15. अनामिका, दूब–धान, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ० 37.
16. रामचंद्र एवं प्रवीण कुमार (संपा०). दलित चेतना की कविताएँ. स्वराज प्रकाशन, दिल्ली 2014, पृ० 164.

विजय कुमार संदेश
हिन्दी विभाग,
मार्खम कॉलेज, हजारीबाग, झारखण्ड
मो० : 9430193804
Email : sandeshvijay@gmail.com

5

हिन्दी गजल : दुष्यंत कुमार का अवदान

संतोष रविदास

सारांश :

हिन्दी में गजल का इतिहास भले ही आदिकाल से मिलने लगता है किंतु**ए** उसका आधुनिक रूप सर्वथा नया है। इस स्वरूप के व्याख्याकार हिन्दी गजल के राजकुमार दुष्यंत कुमार हैं। दुष्यंत कुमार का वास्ताविक नाम दुष्यंत नारायण सिंह त्यागी है। अपने लेखन की शुरुआत में वे दुष्यंत कुमार 'परदेशी' के नाम से लिखा करते थे। आगे चलकर उन्होंने दुष्यंत कुमार के नाम से लिखना शुरु किया और समय के साथ इसी नाम से साहित्य जगत में लोकप्रिय हुए। उनका जन्म बिजनौर नजीमाबाद तहसील के राजपुर नवादा गांव में वर्ष 1933 में हुआ था और हिन्दी साहित्य का यह दुर्भाग्य रहा कि मात्र 42 वर्ष की अल्पावस्था में 31 दिसम्बर 1975 को अचानक आये हृदयाघात से निधन हो गया।

दुष्यंत कुमार का साहित्यिक सफर कई विधाओं में रहा है। वे कवि–गजलकार हैं, कथाकार और नाटककार भी हैं। सूर्य का स्वागत, आवाजों के घेरे और जलते हुए वन का वसंत काव्यसंग्रह हैं तो छोटे–छोटे सवाल और आंगन में एक वृक्ष कथात्मक कृत्तियां हैं। इसी तरह मन के कोण और मसीहा मर गया तथा एक कंठ विषपायी जैसी नाट्य–कृतियां भी हैं। नाट्य–लेखन के क्षेत्र में उन्होंने नये–नये प्रयोग किये। मन के कोण एकांकी है, और मसीहा मर गया रेडियो नाटक है तो एक कंठ विषपायी गीतिनाटक या पद्यनाटक है। इन साहित्यिक कृतियों से उन्हें प्रसिद्धि तो मिली पर सबसे अधिक ख्याति गजल संग्रह 'साये में धूप' से मिली। इसका कारण यह है कि दुष्यंत की गज़लों में में कबीर की अक्खडता, दिनकर–सा ओज और निराला जैसी स्पष्टवादिता है। अपनी गजलों के संबंध में उन्होंने लिखा है कि हिन्दी में गजलें क्यों लिखी? अपनी स्वीकारोक्ति में उन्होंने कहीं लिखा था जिसे मई 1976 के अंक में स्थान दिया गया है। वे लिखते हैं– "मैंने सिर्फ पोशाक या शैली बदलने के लिए गजलें नहीं कही, उसके अनेक कारण है, जिनमें सबसे मुख्य यह है कि मैंने अपनी तकलीफ को, जिससे सीना फटने लगता है, ज्यादा से ज्यादा सच्चाई और समग्रता के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाने के लिए कही है।"[1] दुष्यंत की इस स्वीकारोक्ति और उनके गजलों की लोकप्रियता से स्पष्ट है कि उनमें गजल लेखन का अद्‌भुत सामर्थ्य था। उन्होंने अपनी गज़लों को प्रतीकात्मक भाषा–शैली में अपने समय की समस्याओं पर इस तरह लिखा कि वे न केवल हिन्दी साहित्य में प्रत्युत् दूसरी भाषाओं में भी काफी चर्चित हुई, जिसके कारण उनकी गजलें कम परिमाण में होते हुए भी कम समय में काफी लोकप्रिय हो गयीं। दुष्यंत कुमार के गजलों के वैशिष्ट्य पर टिप्पणी करते हुए सरदार मुजावर लिखते हैं कि "दुष्यंत कुमार के गजलों में एक जबरदस्त कशिश है। न जाने क्या बात है कि एक बार उसका शेर पढ़ लिया, तो वह दिमाग में कुछ इस तरह 'फिट' हो जाता है कि निकालने से भी निकल नहीं सकता। उसे दोबारा पढ़ने की भी कतई जरूरत नहीं होती है। बिहारी के दोहों की तरह दुष्यंत कुमार के शेर भी संजीदा बन जाते हैं।"[2]

दुष्यंत कुमार की गजलें अपने समय का साक्ष्य है। इसमें वे 'इश्क व मुश्क' की बात नहीं करते बल्कि अपने समय की राजनीतिक विद्रूपताओं के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों की प्रस्तावना करते हैं। समय और शब्द के शिल्प पर शासन और प्रशासन की कुटिल नीतियों और गर्हित व्यवस्था पर कटाक्ष तो करते ही हैं, उन घटनाओं का पर्दाफाश भी करते हैं, जिससे राजनीतिक आकाओं और सामाजिक महंतों के संरक्षण में भ्रष्टाचार और शोषण को प्रश्रय मिलता है। गजलों में अपनी बेबाक टिप्पणियों और अभिव्यक्ति की क्षमता के कारण ही वे हिन्दी साहित्य में गजलों के राजकुमार संज्ञा से संज्ञापित हुए। गाँव–शहर से लेकर देश–विदेश की विस्तृत भूमि पर उनके गजलों की धाक और धूम इसलिए है कि अपनी विशिष्ट शैली के कारण उनके शब्द और संवाद सीधे पाठक और श्रोता के हृदय में बैठ जाते हैं। हिन्दी साहित्य में उन्हें यदि गजल का राजकुमार कहा गया तो वे इसके हकदार हैं। देश की आजादी के बाद जिस राजनीतिक परिदृश्य का उभार हुआ और देश का आम आदमी उस परिदृश्य से जिस तरह हलकान हुआ उसकी सीधी–सच्ची तस्वीर दुष्यंत कुमार ने प्रस्तुत किया है। दुष्यंत के इन गजलों में उसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है[3]–

(1) कहाँ तो तय था चिरगां हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए। (पृ० 13)

(2) ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा,
मैं सजदे में था, आपको धोखा हुआ होगा। (पृ० 15)

(3) तू परेशान बहुत है, तू परेशान न हो,
इन खुदाओं की खुदाई नहीं जानेवाली। (पृ० 17)

दुष्यंत कुमार के राजनीतिक समय के परिदृश्य की ये कुछ बानगियां हैं, जिसमें समय की पीड़ा और व्यंग्य सिर चढ़कर बोल रहा है। इन बानगियों में देश में व्याप्त गतिहीनता, ठहराव और भटकाव पर तीखे और तल्ख टिप्पणियां हैं। इन टिप्पणियों में देश के आम–आवाम की पीड़ा और दुःख–दर्द के साथ आक्रोश भी है। यह आक्रोश आजादी के बाद के स्वप्नों से मोहभंग होने का है। उल्लेख्य है कि देश की आजादी के बाद इस देश के आम–आवाम ने 'अबुवा राज' का स्वप्न देखा था किंतु, आजादी के बाद राजनीतिक भ्रष्टाचार और सांप्रदायिकता का विस्फोटक रूप सामने आया। भ्रष्टाचार के कई रूप विकसित हुए तथा सांप्रदायिक हादसों ने आपसी संबंधों को तार–जार कर दिया। इसी के साथ ही भूख, बढ़ती बेकारी और राजनीतिक अंधेर–गर्दी ने विकास की प्रक्रिया को न केवल बाधित किया प्रत्युत

उसका भयावह रूप भी प्रस्तुत किया। इन सबके कारण गज़लकार का कोमल मन बेचैन हो उठा और वह कह उठे–

"कैसे मंजर सामने आने लगे हैं
गाते गाते लोग चिल्लाने लगे हैं।
अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।"[4]

राजनीतिक सत्ता के प्रति दुष्यंत कुमार के इस तल्ख आवाज ने आम–आवाम में भरोसा पैदा किया कि कोई है जो उनके दुःखों में साथ है। पर, सत्ता–विरोधी आवाज के कारण उन्हें कई बार सरकार के कोपभाजन का शिकार भी होना पड़ा। बावजूद इसके उन्होंने आम आदमी का भरोसा नहीं तोड़ा और राजनीतिक स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार, प्रशासनिक–तंत्र की संवेदनहीनता के विरुद्ध लिखते रहे। राजनीतिक विद्रूपताओं के साथ ही सामाजिक बुराइयों के प्रति भी उनकी दृष्टि थी। आम आदमी की सामाजिक विषमता को जिस तरह उन्होंने लिखा है वह अपने आप में बेमिसाल है। उन्होंने खुली आँखों से समाज की बदहाली और उनकी दुःस्थिति देखी थी। इसलिए सामाजिक पाखंड और विसंगतियों का प्रतिरोध भी उन्होंने उसी शैली में किया जिस शैली में अपनी राजनीतिक संदर्भित गजलों में। शशिकांत गोस्वामी का यह कथन सौ फीसद सही है कि "दुष्यंत कुमार के गजलों में सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश जिस तेवर और जिस मजबूती से हुआ है, वह हिन्दी गजल के सामाजिक संदर्भों से जुड़े होने का और वातावरण के प्रति सचेत रहने का ठोस प्रमाण है।"[5] सामाजिक परिवर्तन के लिए दुष्यंत कुमार क्रांतिकारी की भूमिका में आ जाते हैं और कह उठते हैं–

"हो गयी है पीर पर्वत–सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
आज यह दीवार परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।"[6]

इसी गजल में वे फिर आगे फिर अपनी क्रांतिकारी शैली का परिचय देते हुए लिखते हैं–

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।"[7]

निष्कर्ष

कवि के इन गजलों में जो तल्ख स्वर है, वह राजनीतिक विद्रूपताओं और सामाजिक वैषम्य से उपजा हुआ है। कवि हृदय इन परिस्थितियों से क्षुब्ध था, जिसकी परिणति समय–समय पर उनकी काव्यात्मक कृतियों में होती रही। समय के साथ ये कालजयी हुईं और 'साये में धूप' का हिस्सा बनीं। इन कालजयी गजलों के कारण आज भी दुष्यंत कुमार हिन्दी गजल के केन्द्र में बने हुए हैं। उनके गजलों के अवदान पर विमर्श किये बिना हिन्दी गजलों पर बातचीत प्रायः अधूरी लगती है।

संदर्भ संकेत :–

1. कुमार, दुष्यंत. सारिका. मई 1976, पृ० 36.
2. मुजावर, सरदार. दुष्यंत कुमार की गजलों का समीक्षात्मक अध्ययन. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2003, पृ० 09
3. कुमार, दुष्यंत. साये में धूप. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2023, पृ० 13, 15 और 17.
4. कुमार, दुष्यंत. साये में धूप. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2023, पृ० 14.
5. गोस्वामी, शशिकांत. हिन्दी गजल : बदलते हुए तेवर. मधुमती (संपा०) रमा सिंह, अप्रील 1979, पृ० 31.
6. कुमार, दुष्यंत. साये में धूप. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2023, पृ० 30.
7. कुमार, दुष्यंत. साये में धूप. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2023, पृ० 30.

संतोष रविदास
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
मार्खम कॉलेज ऑफ कॉमर्स,
हजारीबाग, झारखंड
मो० : 7992351668
Email : ravidas8763527791@gmail.com

6

भारतीय प्राच्य ज्ञान में पर्यावरण समाधान

संगीता

सारांश :

पर्यावरण प्रदूषण आज विश्व की सर्वाधिक ज्वलंत समस्या, जिसकी चपेट विश्व का प्रत्येक देश आता जा रहा है। भारत में तो यह समस्या प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही है। औद्योगिक एवं तकनीकी प्रगति, रसायनों के उपयोग में वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि एवं नगरीय करण आदि के कारण वर्तमान में पर्यावरण दूषित होता जा रहा है। इसके फलस्वरूप मानव अनेक मानसिक और शारीरिक गम्भीर बीमारियों से ग्रसित होता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण मात्र वर्तमान की समस्या ही नहीं है अपितु भविष्य में इसके और भी हानिकारक परिणाम होंगे। अब इस समस्या के वर्तमान स्वरूप को न केवल समझना होगा अपितु इसके लिए इस प्रकार प्रयत्न करने होंगे जिससे इसे नियन्त्रित कर सके, और भविष्य पर इसका कुप्रभाव ना पड़े। सामान्यतः पर्यावरण प्रदूषण से तात्पर्य है कि प्राकृतिक जलवायु जमीन का क्रमिक रूप से दूषित होते जाना। प्रकृति प्रदत्त ये तत्व जब दूषित होने लगते है, तो न केवल मनुष्य अपितु सम्पूर्ण जीव जगत के लिए संकट उत्पन्न हो जाता है। प्रदूषण का जहर कही अप्रत्यक्ष तो कही स्पष्ट रूप से हमारे चारों और नजर आ रहा हैं।

वेद एवं वेदकालीन समाज को प्रकृति की महत्ता का पूर्ण रूपेण बोध थाद्य प्रकृति को परमात्मा तत्व मानकर पूजित एवं संरक्षित करने का भाव ही तत्कालीन पर्यावरण संतुलन एवं समृद्धता का मूल मंत्र था। वैदिक संस्कृत साहित्य की प्रत्येक कड़ी में पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा का दायित्व निभाया गया है। अरण्यों में रहकर पर्यावरण के प्रति विशेष जागरूक रहने वाले ऋषियों ने आरण्यक साहित्य का सृजन कर विश्व में पर्यावरण के महत्व को रेखांकित किया हैं।

अंतरिक्ष और वायु से प्राण का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित हैं। पर्यावरण के जैविक और अजैविक तत्वों में भी वायु और अंतरिक्ष का विशेष योगदान रहता हैं। सृष्टि के सभी तत्वों में इन दोनों का समावेश हैं। इन्ही गुणों के कारण सृष्टि के सभी तत्वों को प्राणशक्ति मिलती हैं। जिसमे विकास की गति अग्रसर होती हैं।

सम्प्रति, पर्यावरण राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक चर्चित विषय है। बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण ने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित किया है वर्ष 1972 में स्टॉकहोम मे पर्यावरण पर आयोजित प्रथम अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में एकमत से पर्यावरण के संरक्षण को मानवता की मूल आवश्यकता स्वीकार किया गया था। गत वर्ष ब्राजील में हुए "पृथ्वी शिखर सम्मलेन '' में मौसम परिवर्तन, वन विनाश, टेक्नोलॉजी हस्तांतरण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर व्यापक चर्चा हुई। आज, जल, थल, और वायु की बात तो दूर अंतरिक्ष को भी प्रदूषण मुक्त करने की बातें चल रही है।

वेद जो मानव जाति के आदि ग्रन्थ है, वह प्रकृति चेतना से ओत प्रोत है। वेद ने मनुष्य और प्रकृति के बीच एक स्वस्थ सम्बन्ध को विकसित किया। यह रिश्ता माँ और बच्चे के बीच के रिश्ते जैसा पवित्र होना चाहिए। पृथ्वी को इस नजरिये से देखा गया कि जैसे वह सम्पूर्ण जगत की माता और समस्त जीव उनकी संतान हो।

"**माता पृथिवी पुत्रोऽहं पृथिव्याः।** (अथर्ववेद १२/१–१२) वेद ने हरियाली को एक महत्वपूर्ण दर्जा दिया है, और इस को देवांश माना है।

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'–अर्थात भगवान सूर्य सृष्टि की आत्मा हैं। उनकी असीम ऊर्जा से ही सृष्टि संचालित होती है। वे जगत के संचालनकर्ता हैं। उनके अभाव में सृष्टि समाप्त हो जाएगी। उनकी ऊर्जा से ही जगत ऊर्जावान होता है और विश्व का कल्याण होता है। सूर्य की महत्ता विश्व संचालन में समूचे पारिस्थितिकी चक्र को उर्जा प्रदान कर नियंत्रित करना हैं। साथ ही आज कीटनाशक सूर्य की किरणें, पीलिया क्षय व ह्रदय रोग के निदान में 'मील का पत्थर' साबित हुई है।

शुद्ध वायु को शान्तिदायक व आयुवर्धक माना गया है। वेदों में पवन देवता को विश्व भेषज कहा है। जो कि दूषित वायु को परिमार्जित व शुद्ध करता है –

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥३॥ ऋग्वेद 10.137

भारतीय संस्कृति के अनुसार वृक्षारोपण एक पवित्र धर्म, और पेड़ो का विनाश एक महान पाप हैं। वनस्पतियों और जीवों के लिए प्राचीन संस्कृत साहित्य का प्रेम उजागर करने के कई उदाहरण है।**"वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्य नमो नमः।''** अर्थात जो वृक्ष हरे भरे है हम उनकी वंदना करते है। रघुवंश के द्वितीय सर्ग में एक शेर एक पेड़ के महत्व को दिलीप को समझाने के लिए कहता है–

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः॥

अर्थात हे राजन आप दूर में जो पेड़ देखते हो वह एक देवदार वृक्ष है, जिस को भगवान शिव ने अपने पुत्र के भांति संरक्षण किया। माँ पार्वती ने जिस तरह अपने स्तनों का दूध पिलाकर अपने बेटे कुमार स्वामी का पालन पोषण किया, उसी तरह पार्वती जी ने इस वृक्ष को पानी से सींचा। यहाँ एक पेड़ के प्रति मातृत्व की भावना स्थापित की गयी है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु यजुर्वेद में वर्णित वृक्षारोपण, वैदिक – कृषि परम्परा का अनुकरण, पीपल, तुलसी, वड व ढाक जैसे वृक्षों को महनीयता आदि पर भी सविस्तार सुमधुर गुम्फन किया गया है। प्रकृति के साथ छेडछाड़ न करने व वन सम्पदा के संरक्षण व संवर्धन करने से

ही **'पश्येम शरदः शतम्, जीवमे शरदः शतम्'** पक्ष सार्थक हो सकता है।

वृक्षों को काटने से हमारा वायुमण्डल प्रभावित होता है। इसलिए वेदों में वृक्षों के काटने पर पूर्णतः प्रतिबंध लगाया गया है। इसी प्रकार 'रात्रि में सोते वृक्षों को मत जगाओ' का कथ्य सीधा – सीधा यह है कि वृक्ष (पीपल आदि के अतिरिक्त) रात्रि में बव$_2$ छोड़ते है। जो विषैली है तथा प्राणीजगत् के लिए पूर्णतः हानिकारक है। इसलिए तो वेद में पीपल के नीचे रहने व पारिवारिक आबादी बसाने का संकेत मिलता है – **अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता** । यजु–35.3 हम यह नहीं समझ पाए कि वेदों में जनहितैषी ऐसे वाक्यों की सुधावृष्टि से पग – पग पर हमारे निरोग, शतायु व आनन्दमय रहने की कामना की गई है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु चहुमुखी प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। भारत सरकार द्वारा पर्यावरण एवं वन मंत्रालय स्थापित किया गया है, जिसका दायित्व पर्यावरण को स्वच्छ व प्रदूषण मुक्त बनाने की दिशा में प्रयासों और कार्यक्रमों को शुरु करना है। सरकार ने पर्यावरणीय संरक्षण के लिए कुछ कार्य क्षेत्रों को अपनाया है, जिनमे प्रमुख है – भूमि का समन्वित उपयोग, वन विनाश को रोकना तथा भूमि को हरा भरा बनाना, नदियों में जल प्रदूषण का नियंत्रण, औधोगिक क्षेत्रों में वायु व जल प्रदूषण का नियंत्रण, पर्यावरणीय शिक्षा व जागरूकता आदि। लेकिन पर्यावरण संरक्षण केवल इस मंत्रालय की ही जिम्मेदारी नहीं है, वरन इसमें राष्ट्र के सभी जागरूक नागरिकों को यथाशक्ति योगदान करना होगां

पर्यावरण संरक्षण हेतु किए जा रहे प्रयासों को व्यापक रूप दिया जाना चाहिए। यह अच्छा होगा कि हम समय रहते ही समझ जाएं कि मानवीय अस्तित्व एवं स्थायी विकास के लिये प्राकृतिक संपदा का विवेकपूर्ण एवं अपव्यय रहित उपयोग किए जाने की आवश्यकता है। हमें एक नयी सभ्यता का विकास करना होगा, जिसमें भौतिक एवं सामाजिक उन्नति के साथ – साथ पर्यावरण संरक्षण की नैतिक चेतना भी विकसित हो। एक ऐसे नीति व्यवहार में लानी होगी जिसमें विकास तो हो विनाश न हो।

पर्यावरण एक विरासत है। हमारा वर्तमान, भविष्य एवं हमारा अस्तित्व सभी कुछ तो इस पर निर्भर है। आज के पर्यावरणवेता केवल भौतिक दृष्टि से जल एवं वायु, ध्वनि, भूमि के प्रदूषण को दूर करने के उपाय खोजने तक ही सीमित रह गए है। पर्यावरण संतुलन के लिए हमें आज विभिन्न घटकों – वायु, जल, भूमि, वन, वातावरण, नागरिक स्वास्थ्य, ऊर्जा, जीवन–संपदा, राज्य, समाज, जीव – जन्तुओ एवं वनस्पति का समग्र रूप से परस्पर समन्वय करने हेतु गंभीरता से चिंतन एवं मनन करने की महती आवश्यकता है।

आधुनिक समय में पर्यावरण संकट गहराता जा रहा हे। इसके साथ – साथ पर्यावरण की समस्या काफी हद तक जटिल एवं गम्भीर रूप धारण कर चुकी है। यह किसी एक की समस्या न होकर पूरे विश्व की समस्या बन चुकी है। विश्व के प्रभुत्व संपन्न देश अपनी भोगोलिक जरूरतो को नजर अंदाज करके, अपनी आर्थिक जरूरतों को पूरा करने में लगे हुए है। जिसके कारण ही पर्यावरण संकट का सामना करना पड़ रहा है। यह कम होने के बजाये दिन–ब–दिन बढती ही जा रही है। वर्तमान समय में पर्यावरण आपातकाल की स्थिति बनती जा रही है। देश का शासन चलाने वाली सरकारें इस समस्या से निजात पाने के लिए अनेक प्रयत्न कर रही है, पर वह पर्याप्त नहीं है, क्योंकि आज कल सम्पूर्ण विश्व आर्थिक उन्नति एवं विकास के नाम पर प्रकृति का दोहन करने की अंधी दौड़ में शामिल हो चुका है। अपनी आर्थिक लालसाओ को पूरा करने के लिए उनका मानना हे कि देश की उन्नति के लिए थोडा बहुत नुकसान सहन करना ही पड़ता है। हम अपने वर्तमान परिप्रेक्ष्य को सवारने के चक्कर में अपने भविष्य का अपने ही हाथो गला घोट रहे है।

पर्यावरण का संकट गंभीर दौर से गुजर रहा है, उसका परिणाम सभी के उपर दिखने लगा है। धरती पर होने वाले ऐसे बदलावों के सबसे खतरनाक स्तर से बचना अतिआवश्यक हो गया है, क्योंकि एक सीमा के उपरान्त पृथ्वी पर विविधता पूर्ण जीवन में आने वाली स्थितिया सदैव परिवर्तन कर सकती है। पृथ्वी और उसके जीवन की व्यवस्था जिस तरह से हो रही है। उसमें एक व्यापक बदलाव की आवश्यकता है अन्यथा पृथ्वी इतनी तहस नहस हो जायेगी कि उसे बचाया नहीं जा सकेगा।

निष्कर्षः

दुःख का विषय हैं कि आधुनिकता की आंधी ने पर्यावरण सरंक्षण की इस वैदिक परम्परा को भारी नुकसान पहुँचाया हैं। दोहन शोषण, वैभव एवं विलास की रीति नीति ने पर्यावरण को घोर संकट में डाल दिया हैं। समस्या के सार्थक निदान के लिए जरुरी हैं कि हम अपनी विरासत को संभाले। पर्यावरण संरक्षण की टूट – बिखर रही कड़ियों को पुनः जोड़े। हममे से प्रत्येक मन,वाणी, कर्म से वेदकालीन महर्षियों के इस मंत्र को आत्मसात साथ करें –'ॐ धौ शांति, अंतरिक्ष शांति, पृथ्वी शांति, आपः शांति'। जब हम अपने आचरण व्यवहार से माता प्रकृति के कोप को शांत करेंगे, तभी हमारा अपना जीवन भी शांत और सुखी होगा। वेदमंत्रो में व्यक्ति के मानसिक, आध्यात्मिक एवं चारित्रिक शुद्धि के बहुविध उपाय सुझाये गये हैं। सार्वभौम मानव संस्कृति के आदि स्त्रोत वेदों में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों की दृष्टियों से पर्यावरण की शुद्धि के ऐसे साधनों का विधान किया गया हैं, जिन्हें अंगीकृत कर संसार में एक सुखी एवं आनन्दमय वातावरण बनाया जा सकता हैं। पर्यावरण समस्या के साथ – साथ वर्तमान की विभिन्न समस्याएं अपनी संस्कृति एवं प्राचीन ज्ञान परम्परा से सम्बन्ध विच्छेद के कारण उत्पन्न हुई है। भारतीय ज्ञान परम्परा के आदि ग्रन्थ वेदों को अध्ययन, चिंतन, मनन अपरिहार्य है। क्योंकि इनके ज्ञान के बिना हम जड़ कटे वृक्ष की भांति है, जो कभी फलित हो ही नहीं सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. निर्मला गोदिका, पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर
२. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी
३. डॉ० शंकरलाल शास्त्री, संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण हंस प्रकाशन जयपुर
४. कुमार अरविन्द, "पर्यावरण संकट और विश्व" पेज
५. आहूजा राम (२०१६) "सामाजिक समस्याएँ" जयपुर रावत पब्लिकेशन
६. अपना पर्यावरण, एम के गोयल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
७. प्राचीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, डॉ० प्रभुदयाल अग्निहोत्री, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
८. पर्यावरण एवं सामान्य चेतना, एम के वेग, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
९. वैदिक परम्परा व आधुनिक संकट, आचार्य पुष्पेन्द्र कुमार, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
१०. चारों वेद, दयानन्द संस्थान, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

पत्राचार पता – संगीता w/o प्रवीण कुमार
ग्राम –मंडावरा, पोस्ट– सिकन्द्राबाद, जिला – बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश, पिन – 203205
स्थायी पता – संगीता w/o प्रवीण कुमार
ग्राम मंडावरा, पोस्ट– सिकन्द्राबाद, जिला – बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश, पिन – 203205
मोबाइल नम्बर – 9410812061,9457842011

7

भारत के अर्थव्यवस्था में मनरेगा की भूमिका

प्रिया कुमारी

सारांश :

हमारे देश भारत की अर्थव्यवस्था को विकासशील से विकसित की श्रेणी में आने में जो सबसे बड़ी बाधा है, वह है बेरोजगारी और गरीबी । 1950 के दशक से ही जितनी भी सरकार आई है उन सब का सबसे बड़ा लक्ष्य रोजगार सृजन करके बेरोजगारी और गरीबी खत्म करना रहा है। आज भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान पर है जिसमें से 70ः आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है।2011 में ग्रामीण गरीबी जो की 26.3 प्रतिशत थी। 2019 में घटकर 11.6ः हो गई। 2022–23 में भारत की गरीबी दर घट कर 4.5 से 5ः हो गई है, जिसमें ग्रामीण गरीबी 7.2 प्रतिशत रह गई है (स्रोत नीति आयोग एमपी) ।गरीबी दर में हुई गिरावट का श्रेय सरकारी कार्यक्रमों को दिया जाता है जो की निसंदेह ही सच है, चूकिं गरीबी और बेरोजगारी ज्यादातर ग्रामीण इलाकों में ही व्याप्त होती है इसलिए सरकार का लक्ष्य एक ऐसी योजना को लाने का था जो कि ग्रामीण स्तर पर गरीबी और बेरोजगारी को खत्म करके भारत की आर्थिक स्थिति को मजबूत आधार प्रदान करें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से ही सितंबर 2005 में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी एक्ट को अधिसूचित किया गया था। इस अधिनियम के अंतर्गत ग्रामीण इलाकों में रोजगार सृजन कर गरीब परिवारों को आजीविका मुहैया कराकर उन्हें आर्थिक सुरक्षा प्रदान किया जाता है।इस अकुशल अधिनियम में ऐसे प्रत्येक ग्रामीण परिवार जिनके वयस्क सदस्य श्रम करना चाहते हैं को किसी वित्त वर्ष में 100 दिन का रोजगार प्रदान करने की गारंटी देने का अधिदेश दिया गया है।

'भारत के ग्रामीण इलाकों में बसे लोगों को आत्मनिर्भर बनाने में तथा गरीबी खत्म करने के उद्देश्य में मनरेगा की भूमिका–रू

मनरेगा 2005 की अनुसूची (1)अनुच्छेद (3) के अनुसार इसके प्रमुख उद्देश्य और लक्ष्य इस प्रकार हैं–

ख्1, सभी इच्छुक ग्रामीण परिवार के वयस्क सदस्य को एक वित्त वर्ष के दौरान कम से कम 100 दिन की पारिश्रमिक की गारंटी वाले रोजगार और अकुशल और हाथ का काम देने का प्रावधान है ताकि गुणवत्ता भरी टिकाऊ और फलदाई सामुदायिक संपत्तियों का निर्माण हो सके।

2, गरीबों के लिए आजीविका के संसाधनों का आधार मजबूत करना,

3, सामाजिक समावेश सुनिश्चित करना और

4, पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करना।

मुख्य स्टेक होल्डर (भूमिकाएं एवं जिम्मेदारियाँ)–

1, मजदूरी मांगने वाले

2, ग्राम सभा या वार्ड सभा

3, ग्राम पंचायत

4, ब्लॉक स्तर पर कार्यक्रम अधिकारी (पी०ओ०)

5, जिला कार्यक्रम समन्वयक(डी० पी० सी०)

6,राज्य सरकार

7, ग्रामीण विकास मंत्रालय,

8, सिविल सोसाइटी

9, अन्य स्टेक होल्डर (लाइन विभाग, कन्वर्जेंस विभाग, स्व–सहायता समूह आदि)।

मजदूरी मांगने वाले को पहले जॉब कार्ड जारी किया जाता है। जॉब कार्ड एक मुख्य दस्तावेज है जिसमें मनरेगा के अंतर्गत मजदूरों की हकदारियों को रिकॉर्ड किया जाता है। इसमें कार्य के लिए आवेदन करने, पारदर्शिता सुनिश्चित करने और धोखाधड़ी से मजदूरों को बचाने के लिए पंजीकृत परिवारों को कानूनी रूप से अधिकार संपन्न बनाया जाता है। यदि कोई परिवार पंजीयन के लिए एक पात्र पाया जाता है तो ग्राम पंचायत आवेदन दिए जाने के 15 दिनों के भीतर परिवार को जॉब कार्ड जारी करेगा। अन्य स्टेक होल्डर का काम मनरेगा के तहत ज्यादा से ज्यादा लोग लाभान्वित हो इसके लिए इस अधिनियम को लागू करने में सरकार की मदद करना है।

मनरेगा क्रियान्वयन की स्थिति–

इस अधिनियम को 2 फरवरी 2006 के पहले चरण में 200 जिलों में अधिसूचित किया गया था और बाद में वित्त वर्ष 2007–08 में इसे और 130 जिलों में लागू कर दिया गया। अभी मनरेगा 754 जिलों के 2.65 लाख ग्राम पंचायत में लागू किया गया है। ग्रामीण विकास मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी एक्ट में देश के 25.80 करोड़ परिवार पंजीकृत है, जिनमें 14.33 करोड़ परिवार सक्रिय हैं, जिनमें बिहार के सभी 38 जिलों में मनरेगा को लागू कर दिया गया है। जिसमें सक्रिय श्रमिकों की संख्या 96,36,794 है। बिहार के सभी जिलों में 1,71,32,830 पंजीकृत श्रमिक है। जहां भी मनरेगा लागू हुआ वहाँ यह महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर रहा है। देश के दो केंद्र शासित प्रदेश और एक राज्य में 10 हजार से भी कम परिवार मनरेगा में कार्यरत है। मनरेगा की सरकारी वेबसाइट के अनुसार लक्ष्यदीप में 242 श्रमिक सक्रिय है, जबकि 16,646 श्रमिक रजिस्टर्ड है। इसी प्रकार दादर नगर हवेली और दमनदप में 1976 श्रमिक सक्रिय हैं जबकि 34,226 श्रमिक रजिस्टर्ड है। पूरे भारत में सक्रिय मजदूरों ने बीते 3 साल के दौरान कम से कम 1 दिन काम किया है। अप्रैल 23 से 1 फरवरी 24 तक कुल 85.6 4000 लाख जॉब कार्ड सिस्टम से हटा दिए गए हैं। वहीं अप्रैल 22 से फरवरी 2024 तक 311.119 जॉब कार्ड हटाए गए हैं। अब इन्हें मनरेगा मजदूरी का लाभ नहीं मिलेगा। जॉब कार्ड हटाने के पीछे की मुख्य वजहें फर्जी जॉब कार्ड धारक या वे परिवार हैं जो अस्थाई रूप से ग्राम पंचायत से

स्थानांतरित हो गए हैं।

केंद्र सरकार ग्रामीण इलाकों में मनरेगा पर एक बड़ी राशि हर साल खर्च करती है। मनरेगा योजना के तहत वित्त वर्ष 2024–25 में 86 हजार करोड रुपए खर्च किए जाएंगे। इस बजट में मनरेगा के लिए अनुमानित राशि पिछले 10 साल में सबसे ज्यादा है जबकि वित्त वर्ष 2023–24 में मनरेगा का बजट 60 हजार करोड रुपए था। मनरेगा के अंतर्गत न्यूनतम मजदूरी राज्य सरकारों द्वारा तय की जाती है। वित्तीय वर्ष के अनुसार न्यूनतम मजदूरी में फेरबदल किया जा सकता है। केंद्र सरकार ने वित्तीय वर्ष 24–25 के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 के तहत अकुशल श्रमिकों के लिए मजदूरी दलों में संशोधन को अधिसूचित किया। मनरेगा श्रमिकों की मजदूरी में नाम मात्र के आधार पर 30 से 10ः की वृद्धि हुई है। ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा 2005 की धारा 6 की उप धारा (1) के अंतर्गत अधिसूचित नई मजदूरी दरें 1 अप्रैल 2024 से लागू कर दी गई है। अधिसूचना के अनुसार गोवा में वित्तीय वर्ष 23–24 में मजदूरी दर 322 थी जो की 24–25 में 356 हो गई है। यानी कि 10.6ः की सबसे अधिक वृद्धि हुई है जबकि उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में सबसे कम 3.04ः की वृद्धि हुई है। तीन राज्यों कर्नाटक आंध्र प्रदेश और तेलंगाना में भी मनरेगा मजदूरी में 10ः से अधिक की वृद्धि हुई है। सबसे अधिक न्यूनतम मजदूरी दर देने वाले हरियाणा में वित्तीय वर्ष 23–24 में 357 की तुलना में 24– 25 में 374 मजदूरी करने से मजदूरी दर में नाम मात्र 4.8 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। हमारे राज्य बिहार में पिछले वित्त वर्ष में जहां न्यूनतम मजदूरी दर 228 थी जो कि अब 245 हो गई है।यानी की मजदूरी में 7.5ः की वृद्धि हुई है। श्रम मंत्रालय ने न्यूनतम मजदूरी दर 375 करने की सिफारिश की है। मनरेगा मजदूरी कभी भुगतान में विलंब तो कभी फर्जीवाड़ी के लिए चर्चा में रहा है। ऐसे में न केवल इसकी सफलता सवालों के घेरे में रहती है बल्कि इसमें व्याप्त भ्रष्टाचार भी इसे इसके उद्देश्य से भटकाता रहता है। इस कार्यक्रम की शुरुआत से अभी तक इसके तहत 550 लाख करोड़ की राशि खर्च की जा चुकी है। इसमें से 71 फ़ीसदी राशि श्रमिकों को भुगतान की गई है। इस कार्यक्रम के तहत 65 फीसदी से अधिक कार्य कृषि और इससे संबंधित गतिविधियों में हुआ है। मनरेगा के तहत किए गए कार्य दिवस में 20 फीसदी पर अनुसूचित जाति और 17 फीसदी पर अनुसूचित जनजाति की हिस्सेदारी रही है। इसमें महिला श्रमिकों की हिस्सेदारी भी 55ः से ज्यादा हो गई है जो कि निश्चित की गई 33ः की सीमा से कहीं अधिक है। मनरेगा के प्रभाव से ग्रामीण श्रम बाजार में मजदूरी में वृद्धि हुई है और श्रमिकों के द्वारा मोल भाव करने की क्षमता में भी इजाफा हुआ है जिससे गरीबी दर कम हुई है। मनरेगा से जुड़े लोगों द्वारा संगठित क्षेत्र से कर्ज लेने के दर में इजाफा हुआ है। जिस वजह से साहूकारों पर निर्भरता कम हुई है या यू कहें कि समाप्त के बराबर ही है। मनरेगा के तहत न केवल गरीब ग्रामीणों को रोजगार मुहैया कराया गया है बल्कि सतत् संपत्तियों का भी निर्माण हो रहा है। अभी तक कुल 8 करोड़ 28 लाख 54हजार601 परिसंपत्तियों मनरेगा के तहत निर्मित की गई हैं (स्रोत ग्रामीण विकास मंत्रालय) । बिहार में मनरेगा के तहत निर्मित परिसंपत्तियों की संख्या 54,86,526 है।बैंक खाता या डाकघर के जरिए मजदूरी का भुगतान करने से गरीबों के लिए वित्तीय समावेशन की राह आसान हुई है। हालांकि इसमें अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

मनरेगा के समक्ष चुनौतियाँ–

मनरेगा प्रारंभ से ही चुनौतियों का शिकार रहा है। छ६।म्त्(छंजपवदंस ब्वनदबपस वि ।चचसपमक त्म्मेमंतबी) के मुताबिक मनरेगा में ग्रामीण गरीबों की हिस्सेदारी महज 30ः है यानि कि 70 प्रतिशत अभी भी मनरेगा में हिस्सेदारी से वंचित है। लिहाजा यह कहना गलत ना होगा कि वित्तीय समावेशन का सपना पूरा होने में अभी समय लगेगा। फिर जो मजदूर इसमें कार्यरत है उन्हें सम्मानजनक मजदूरी देना भी एक चुनौती है। सवाल यह है कि 375 के वनिस्पत 250 रुपए की औसत मजदूरी जीवन स्तर को सुधारने के लिहाज से कैसे पर्याप्त हैं। चुनौती सिर्फ इतनी सी नहीं है। सही समय पर भुगतान न होना और फंड की निकासी में धांधली जैसे मामले मनरेगा के सामने बड़ी चुनौती साबित हो रहे हैं। कैग की रिपोर्ट में भी मनरेगा में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनियमितताओं का खुलासा किया गया है। बिचौलियों द्वारा मजदूरी का फर्जी हाजिरी, रजिस्टर बना कर धांधली करना इस कार्यक्रम को कमजोर बना रहा है। आए दिन हम समाचार पत्रों में भी मनरेगा में हुई गड़बड़ी को पढ़ते हैं। हाल ही के दिनों में बिहार में भागलपुर जिला हो जमुई जिला हो या फिर लखीसराय हर जगह मनरेगा में फर्जी वाले का खुलासा हो रहा है। नाला निर्माण,पशु शेड निर्माण ,सड़क निर्माण,फंड निकासी हर जगह का गड़बड़ी पाई गई है। मनरेगा आयुक्त द्वारा जांच के आदेश दिए गए हैं। बिहार वित्तीय नियमावली के अनुपालन की स्थिति की जांच होगी। छोटे और सीमांत किसानों द्वारा खेती छोड़कर मनरेगा में मजदूरी करने से कृषि उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। उद्योगों में भी साल भर मजदूरी करने के वनिस्पत मजदूर मनरेगा में 100 दिन की मजदूरी को ज्यादा महत्व दे रहे हैं। इससे भारत के कौशल विकास और मेक इन इंडिया जैसे कार्यक्रमों पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इस तरह देखा जाए तो न सिर्फ भ्रष्टाचार ही एकचुनौती है बल्कि मनरेगा के कारण जो उद्योग–धंधो पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, उससे भी बचना है। ऐसे में सवाल है कि आगे मनरेगा की राह क्या हो?

निष्कर्ष:

इसमें कोई शक नहीं है कि मनरेगा ने गरीबी उन्मूलन,रोजगार सृजन, श्रमिकों की सौदेबाजी क्षमता में वृद्धि कर समावेशी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मनरेगा संपत्ति संबंधी आंकड़ों को देखने उनका विश्लेषण करने और उनकी संभावनाओं के लिए ळमवडळछत्म्ळ। लागू किया गया है। धन का उचित और सही समय पर आवंटन हो इसके लिए ऐसे ही कई ठोस

कदम उठाने की जरूरत है। मनरेगा और कृषि के बीच बेहतर सामंजस्य बनाने के लिए प्रधानमंत्री सिंचाई योजना शुरू की गई है। भुगतान में विलंब की समस्या को दूर करने के लिए राज्यों द्वारा फंड ट्रांसफर आर्डर जेनरेट करने के 48 घंटे के भीतर ही ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा धन राशि राज्य रोजगार गारंटी कोष को निर्गत करने का प्रावधान किया गया है। हालांकि सरकार मनरेगा में और पारदर्शिता लाने और कार्यक्रम की व्यापकता बढ़ाने के लिए प्रयासरत है।न्यूनतम मजदूरी सुनिश्चित करने, परियोजनाओं की प्रभावी निगरानी, उचित जॉब कार्ड सत्यापन, कुशल शिकायत निवारण तंत्र सुनिश्चित करने आदि पर ध्यान देने की जरूरत है।निसंदेह ही मनरेगा भारत के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। मनरेगा के उचित कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए अगर ठोस कदम उठाए जाए तो मनरेगा महज एक कल्याणकारी कार्यक्रम बनकर रह जाने के बजाय ग्रामीण भारत के सामाजिक आर्थिक विकास का उचित सशक्त माध्यम बन सकता है।

संदर्भ सूची –

1, केंद्रीय बजट (2022–23),

2, केंद्रीय बजट (2023– 24),

3, केंद्रीय बजट 2024,

4, पॉवर्टी इंडेक्स आफ इंडिया 2023 ,

5, कुरुक्षेत्र (विभिन्न अंक 21 –24) प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली,

6, योजना (विभिन्न अंक 21–24) प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

Priya Kumari

D/o Sh. Sanjay Prasant Singh

Shri Jagdamba Trader's

Purani Bazar, Chittaranjan Road,

Lakhidarai (Bihar)

Pin - 811311

Mob. 9279796797

8

अज्ञेय और उनके समकालीनों की कथा–धारणा

डॉ0 उर्मिला कुमारी

सारांश

कथा साहित्य के संदर्भ में अज्ञेय एक अर्जित ख्याति प्राप्त कथाकार के रुप में प्रतिष्ठापित हैं। उनका कथा साहित्य मानसिकता से ओत–प्रोत है। उसमें कथा कम होती है, चिंतन, मनन, विवेचन अधिक। उनके कथा साहित्य में घटनात्मकता कम रहती है, घटनाओं के भीतर जो मार्मिकता होता है उसको चिंतन, विवेचन और कमेंट्स का क्रम मर्म को स्पर्श करने वाले वेग से अधिक अनुप्राणित करता है। उस वेग में गहराई अधिक होती है विवृति कम।

समकालीन कथा–साहित्य में एक कथाकार के रूप में अज्ञेय का विशिष्ट स्थान है। इनका व्यक्ति पर अटूट और एकनिष्ठ आस्था रही है। इसी कारण संभवतः वे अपनी रचनाओं में कृतित्व के माध्यम से व्यक्तित्व को ऊँचाई देने की चेष्टा करते दिखाई देते हैं।

अज्ञेय जी के अनुसार कहानी जीवन की प्रतिछाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी, अधूरी कहानियों का संग्रह, एक शिक्षा है जो आयु भर मिलती रहती है और समाप्त नहीं होती। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि उपन्यास किसी देश की साहित्यिक विचारों की प्रगति को समझने के लिए उत्तम साधन माने गए हैं, क्योंकि जीवन की यथार्थताएँ ही उपन्यास को आगे बढ़ाती है।

युग का यथार्थ यदि साहित्य की किसी भी विधा में मुखर हो उठता है तो वह है कथा साहित्य। कथा साहित्य में भी कहानी की अपेक्षा उपन्यास में जीवन का विस्तार अधिक होता है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक रॉल्फ फॉक्स ने उपन्यास को व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य कहा है।

अज्ञेय मुख्य रुप से रचनाकार हैं। उन्होंने स्वयं इस तथ्य को एक स्थान पर स्वीकार किया है ''मैंने आलोचक होना कभी नहीं चाहा, चाहा तो लेखक होना ही। लेखक में कभी उपन्यासकार होने की आकांक्षा प्रधान रही तो कभी कवि होने की, यह दूसरी बात है।''[1] वस्तुतः हिन्दी साहित्य में अज्ञेय मुख्यतः कवि और उपन्यासकार के रुप में ही जाने जाते हैं।

अज्ञेय के अनुसार '' उपन्यास मूलतः एक कालबद्ध रचना है। काल में घटित का ही रुपयुक्त वृतांत उपन्यास है। इसलिए अगर कालबोध भिन्न है तो उपन्यास का रुप भी भिन्न होगा। अगर उपन्यास रुप विशिष्ट है तो कालबोध भी विशिष्ट होगा।''[2]

अज्ञेय को हिन्दी कथा साहित्य में परम्परा के तौर पर कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों में समृद्ध परम्परा मिली है। अज्ञेय पर प्रसाद और जैनेन्द्र का प्रभाव दिखता है, परंतु फिर भी उनका लेखन उनसे अलग दिखता है। स्वचेतना, बौद्धिकता, वस्तुपरकता, भाशिक सर्जनात्मकता, मितकथन आदि पहली बार हिन्दी में अज्ञेय के कथा–साहित्य में ही प्राप्त होते हैं।

19वीं शताब्दी के प्रारंभिक युग में जो कथा–साहित्य मिलता है उसमें रानी केतकी की कहानी, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी उल्लेखनीय है। रानी केतकी की कहानी का हिन्दी कथा– साहित्य के विकास क्रम में विशेष स्थान है। यह रचना एक ऐसा प्रयोग था जिसमें हिन्दी खड़ीबोली अपने स्वरुप में उभरकर आई थी। हिन्दी में भारतेन्दु का एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती नामक आत्मकथात्मक उपन्यास महत्वपूर्ण है। भारतेन्दु के समकालीन परम्परावादी, प्रयोगमूलक उपन्यासों में कल्पना की प्रधानता, तिलिस्म, ऐय्यारी और दूसरे जीवन का यथार्थ उभरकर आया। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती कथा–साहित्य में एक निश्चित दृष्टिकोण के अभाव के कारण शिल्प की कोई निश्चित रुपरेखा सामने नहीं आ पाई। प्रेमचंद के आगमन के साथ ही उपन्यास के यथार्थ जीवन चित्रण को महत्व मिला।

प्रेमचंद और उनसे प्रभावित उपन्यासकारों ने कथा–साहित्य में कथा के महत्व, चरित्र– चित्रण की अनिवार्यता, भाषा की वास्तविकता और आदर्श जीवन सृष्टि की कामना को समाहित करने का भरसक प्रयत्न किया। प्रेमचंद ने समाज के विभिन्न पक्षों, वर्गों और उनकी मानसिकता को कथा के माध्यम से जीवित इतिहास का रुप दिया है, किन्तु इसके बाद की पीढ़ी ने व्यक्ति को इकाई मानकर, उसके मन में आंतरिक संसार को अपनी कथ्य वस्तु के रुप में चुना। चंद्रधरशर्मा गुलेरी की कहानी ''उसने कहा था'' शिल्प के स्तर पर परिपक्व था। इसका केन्द्रीय विषय मनोराग है। मन के इसी लगाव और रागात्मकता की रचना प्रसाद ने अपनी कहानियों में चमत्कार के स्तर पर की है। हिन्दी कथा में प्रेम का अवसाद त्रासदी के स्तर पर प्रसाद ही गूँथ सके हैं। इन तीनों के वस्तुचयन और रचना कौशल ने ही तत्कालीन कथा को रुपाकार प्रदान किया था।

जैनेन्द्र ने हिन्दी कथा साहित्य में अतीत और समाज को छोड़ व्यक्ति को उसकी कमजोरियों के साथ व्यक्त किया है– '' प्रेमचंद ने जहां पात्रों और उद्देश्य नामक तत्वों पर प्रहार कर हिन्दी कथा साहित्य को आधुनिकता के बीज प्रदान किए वहां मूलतः नामक वस्तु का बहिश्कार कर जैनेन्द्र हिन्दी कथा में आधुनिकता के और निकट ले आए।''[3]

इसके विपरीत डॉ0 देवीशंकर अवस्थी का कथन है– ''जैनेन्द्र की कहानियों में दार्शनिकता का पुट बराबर बढ़ता गया है और उसी के साथ निरसता की वृद्धि तथा कहानीपन का अभाव भी।''[4]

'' प्रसाद से अज्ञेय तक हिन्दी कहानी की एक और समवर्ती धारा है, जो प्रेमचंद के समानान्तर बहती रही है, कथ्य में कथानक से अधिक मर्म स्थितियों के चित्रण और मानसिक उद्घाटन पर बल देती रही है, शिल्प में काव्यात्मक प्रतीक व्यंजना पर।''[5]

अज्ञेय का हिन्दी कथा– साहित्य को परंपरा से संबंध बताते हुए डॉ0 परेश का कहना है कि – '' प्रसाद और अज्ञेय दोनों गहरी भारतीयता के उपासक हैं, यद्धपि प्रसाद में जितनी सांस्कृतिक व्याप्ति है, उतनी अज्ञेय में नहीं है। फिर भी दोनों रचनाकारों में कहीं न कहीं चीजें समान है। इसे हम गहनता भी कह सकते हैं और गरिमा भी।''[6] अज्ञेय ने कविता में प्रयोग किए हैं उसके साथ– साथ उनके कथा–साहित्य में भी प्रयोग दिखाई देते हैं। नवीन कथ्य सदा नवीन शिल्प की माँग करता है। कथावस्तु के शिल्प में होनेवाले प्रयोग इसी के परिणाम होते हैं। अज्ञेय ने अपनी परंपरा से बहुत कुछ लिया। उनके कथ्य पहले

के कथ्य से काफी भिन्न थे, जिस कारण उनका शिल्प भी परंपरा से भिन्न है। उनके इस नयेपन की पहचान उनके कथा– साहित्य के रुप कथ्य, शिल्प और भाषा से होती है।

प्रेमचंद के बाद का कथा–साहित्य प्रसाद के अलावा जैनेन्द्र से माना जाता है। ''प्रेमचंद के बाद उपन्यास की भाषा को नये ढ़ंग से गलाने का काम किया जैनेन्द्र ने। जैनेन्द्र शब्दों से उतना काम नहीं लेते, जितनी उनकी भंगिमा से।''[7]

जैनेन्द्र अपनी कहानी की घटना को जागतिक और सामाजिक न बनाकर मानसिक बनाने का प्रयास करते हैं। इसके लिए वह रूपक कथाओं या फैन्टेसी का प्रयोग करने से भी नहीं झिझकते।

अज्ञेय की व्यक्ति –केन्द्रित कथाएँ विशिष्ट व्यक्ति की ओर सधी कला की कथाएँ लगती हैं। जैनेन्द्र की अपेक्षा कहीं अधिक सावधानी से तराशी गई कला कृतियों का बोध जगाती है।

अज्ञेय का यह व्यक्ति ''मैं'' नहीं है। वह एक ऐसा अहं है जो अपनी रचना सामर्थ्य की समूची ही संभावनाओं के प्रति एकदम सजग सचेत है। जो कहीं चूक की गुंजाइश नहीं छोडना चाहता। जो भाषा को संयत गरिमा शैली को परिनिष्ठित भंगिमा शब्दों को सूक्ष्म अर्थ– संस्कार देता है। इस विशिष्ट को गढ़ने के लिए अज्ञेय जिस शैली को अपनाते हैं वह अन्ततः उनके लिए साधन न रह कर साध्य होने लगता है।

डॉ0 निर्मला जैन का कहना है कि जैनेन्द्र, प्रेमचंद और यशपाल की तुलना में अज्ञेय इसलिए अलग हैं क्योंकि ''शिल्प और कला श्रेय की बात है। अज्ञेय गहरे जाते हैं और सूक्ष्मता को हस्तगत करना चाहते हैं लेकिन कला मानो उनके निकट साध्य हो जाती है और कथ्य कथन की मीनाकारी में गौण और झीना पडने लगता है।''[8]

अज्ञेय के समकालीनों में जैनेन्द, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, मुक्तिबोध आदि प्रमुख कथाकार हैं। इन सभी ने एक तरह से परंपरा से चली आ रही विधाओं में प्रयोग को महत्व दिया। इनका ये प्रयोग कथ्य और शिल्प दोनों पर दिखाई देता है। असल में ये सभी प्रयोग में विश्वास रखने वाले रचनाकार हैं। प्रयोग का महत्व निर्विवाद है। प्रयोग जीवन और साहित्य में अत्यंत आवश्यक होते हैं। कथा के तत्वों के अंतर्गत कथावस्तु को प्रथम और अनिवार्य तत्व के रुप में प्रायः सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। ''जबसे कहानी में मनोवैज्ञानिक अनुभूति और विश्लेशण का प्रादुर्भाव हुआ है तब से इसका रुप अत्यंत सूक्ष्म हुआ।'' [9]

स्वरुप की दृष्टि से कथा– वस्तु को तीन प्रकार से विभाजित करके देखा जा सकता है। 1. घटना प्रधान 2. चरित्र प्रधान 3. भाव प्रधान। इसमें दैवी संयोग और मानवीय शक्तियां भी कार्यरत होती है। गोपालराम गहमरी, वृंदावनलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी आदि की जासूसी कथाओं की कथा–वस्तु इसका सुंदर उदाहरण है।

चरित्र प्रधान में घटना और संयोग गौण हो जाता है। कथा– सूत्र किसी मुख्य पात्र के चरित्र की रेखाओं में अपना विकास पाता है। इसका रुप अपेक्षाकृत सूक्ष्म और पूर्ण कलात्मक होता है, क्योंकि ऐसे कथानकों के निर्माण के बाह्य घटनाएं कार्य व्यापार बिल्कुल नहीं प्रयुक्त होते, वरन् चारित्रिक अंतर्द्वद पात्रों की मानसिक उहापोह और विभिन्न परिस्थतियों में व्यक्त होने वाली उनकी समस्त चरित्रगत विशेषताएं उनके निर्माण में चरितार्थ होती है।

अज्ञेय और जैनेन्द्र का कथा संसार उसमें भी मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियां हैं। जैसे पुरुश का भाग्य, पुलिस की सीटी, छाया, रोज (अज्ञेय) और इस रात, मास्टर जी (जैनेन्द्र) इनके अच्छे उदाहरण हैं।

भावप्रधान कथावस्तु में स्थूल पात्र से भी आगे उनकी अनुभूति और भाव ही उसके मुख्य सूत्र के रुप में आते हैं। यहां कथावस्तु का रुप सबसे अधिक सूक्ष्म और अमूर्त हो जाता है। न इसमें वर्णनात्मकता रहती है, न इतिवृतात्मकता। बल्कि कथा– सूत्र की स्थापना केवल व्यंजना और संकेतों द्वारा की जाती है। ऐसे कथानक मूलतः मनुश्य के हिन्दी शाश्वत भावों जैसेः– प्रेम, घृणा, करुणा और निर्वेद आदि के धरातल से निर्मित है।

अज्ञेय का प्रसिद्ध कहानी कोठरी की बात में कथा–सूत्र अथवा कथा– तत्व का रुप पूर्णतः यही है और यह कहानी इस दिशा में पूर्ण रुप से सफल है।

प्रेमचंद के बाद कथाकार वर्णनात्मकता की परिधि से निकलकल विश्लेषणात्मकता की ओर अग्रसर हुए। पात्र की अंतर्यात्रा कथा का प्रतिवाद बन गयी। बहिर्मुखी प्रवृत्ति को त्यागकर कथा अंतर्लोक के सूक्ष्म मानसिक घटकों पर आ टिकी। इसलिए कथा आरंभ पात्र की जीवनी से शुरु न होकर कभी मध्य तो कभी अन्त से प्रारंभ होती है। शेखर एक जीवनी के अज्ञेय शेखर के जीवन को मध्यावस्था में उसकी कथा आरंभ करते हैं। इसमें कथाकार ने कथानक का सूत्र पात्र के हाथ में सौंप दिया। शेखर अपने जीवन का प्रत्यावलोकन करता है।

अज्ञेय के समकालीन कथा–साहित्य में एक ओर सन्यासी, त्यागपत्र, शेखरः एक जीवनी, चाँदनी के खंडहर, गुनाहों का देवता आदि कथाएं हैं जिनके कथानक मानवीय संवेदना से भरपूर हैं तो दूसरी ओर अपने खिलौने, सितारों का खेल, गिरती दीवारें, बड़ी–बड़ी आँखें, पतवार, भूदान, यथार्थ से आगे, उदयास्त, आभा, जन–प्रवाह, विश्वास की वेदी पर आदि रचनाएँ मानवीय संवेदना से दूर है।

जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा अपनी वैचारिक दृष्टियों की भिन्नता और रचना– प्रवृत्तियों के अंतर के साथ स्त्री– पुरुष के बीच मानवीय रिश्तों का आग्रह करते हैं। ये सभी समान रुप से स्त्री की एक आदर्श प्रतिमा का निर्माण करते हैं। जैनेन्द्र की स्त्री पात्र आत्मत्याग का आदर्श प्रस्तुत करती है। अज्ञेय के ''शेखर'' और ''भुवन'' की कला–चेतना के लिए वह (स्त्री) प्रेरणा स्रोत है, इलाचन्द्र जोशी उसे अहं प्रत्याख्यान करने वाली विद्रोहिणी शक्ति का रुप देते हैं।

यशपाल के क्रांतिकारियों को वह शक्ति देती है और भगवतीचरण वर्मा में उसके प्रति एक भावुकतामयी दृश्टि मिलती है। ये सभी मध्यवर्गीय जीवन के कथाकार हैं। इनकी कृतियों में जीवन के बुनियादी अभावों से ग्रस्त भारतीय मनुष्य की नियति का प्रभावपूर्ण चित्र नहीं मिलता। क्रांतिकारी मार्ग की विफलता का एहसास इन लेखकों में तीव्र है इसके साथ ही स्त्री–पुरुष संबंधी सामाजिक विधान भी इन्हें निराशा देता है। परिणामस्वरुप ये नियतिवाद, आत्मपीड़ावाद या रोमांटिक विद्रोह में पलायन करते हैं। आजादी के बाद अपने देश काल के मनुश्य के प्रति चिंता की दृष्टि से उनकी सर्जनात्मक अनुचेश्टाओं में पर्याप्त अंतर है।

जैनेन्द्र ने राजनीतिक परिकल्पना को लेकर एक भविष्यवादी उपन्यास की रचना की, किन्तु उसमें राज्य संबंधी सैद्धांतिक और ब्रह्मचर्य संबंधी नैतिक प्रश्न ही उनकी चिंता के विशय अधिक हैं अपने समय की विसंगतियों और आम आदमी की हालत की तस्वीर वे नहीं देते। अज्ञेय ने मनुष्य के अस्तित्व से संबंधित मृत्यु के सत्य को लेकर लिखा, लेकिन उसके माध्यम से वे जीवन की महत्ता का प्रतिपादन नहीं करते। इलाचन्द्र जोशी ने जहाज के पंछी में आम आदमी के सुख– दुःख के प्रति अपनी प्रतिबद्धता झूठा– सच में एक महत्वपूर्ण सर्जनात्मक उपलब्धि के रुप में प्रकट हुई है। भगवतीचरण वर्मा ने निकट अतीत और तत्कालीन सामाजिक–राजनीतिक जीवन पर लिखा, परंतु उनका नियतिवादी दृष्टिकोण उन्हें गहरी मानवीय सम्पृक्ति नहीं देता।

रचना प्रवृत्ति की दृष्टि से अज्ञेय को छोड़कर अन्य किसी कथाकार ने माध्यम को नए अन्वेशण के रुप में अपनी सर्जनात्मक वैशिष्ट्य का अतिरिक्त परिचय नहीं दिया है। अज्ञेय की ही समकालीन पीढ़ी में राहुल सांकृत्यायन और उपेन्द्रनाथ अश्क भी दो महत्वपूर्ण कथाकार हैं। राहुल सांकृत्यायन के कृतित्व में कथात्मकता मार्क्सवादी विचारधारा के प्रचार का उपकरण दिखाई देता है।

इसी दौर का एक प्रसिद्ध उपन्यास हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित ''बाणभट्ट की आत्मकथा'' है जो शिल्प और कथ्य दोनों ही दृश्टियों से उत्कृष्ट है। संस्कृत परंपरा के संबंध के वैशिष्ट्य के साथ यह धर्मदृश्टि को लोक के आत्यंतिक कल्याण की दृष्टि के रुप में प्रस्तुत करता है। रांगेय राघव, अमृतलाल नागर और नागार्जुन के लेखन का गरिमा भी इसी दौर से जुड़ा हुआ है। कथा– साहित्य का जो रुप आज उपलब्ध होता है, वह एक सतत् गतिशील ऐतिहासिक परंपरा का ही विकसित रुप है।''[10]

कथा साहित्य अपने आप में स्वतंत्र और पूर्ण कला है और वह जीवन के गंभीरतम क्षणों को आकर्षक ढ़ंग से प्रस्तुत करने की क्षमता रखती है। इस कला में जीवन की अद्भूत पकड़ होती है। कथा में कहने की विशेषता बराबर महत्वपूर्ण रही है।

कथा साहित्य में विषय की भी प्रधानता रहती है। कथाकार समाज के समस्त परिवेश और संदर्भों के साथ तादात्मय स्थापित करता है और अपनी विभिन्न मनः स्थितियों का भिन्न– भिन्न परिस्थितियों में विश्लेषण करती है। तात्पर्य यह है कि कथा और कथाकार दोनों अंत तक गतिशील रहते हैं।

निष्कर्ष:

अज्ञेय ने जिस नई प्रतिबद्धता और सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक अभिरुचि के साथ हिन्दी साहित्य में पदार्पण किया यह व्यक्ति मन की अतल गहराईयों में डूबने वाले उस गोताखोर की निश्ठा का पर्याय कही जा सकती है जो समुद्र की भीतरी सतह तक जाकर रत्न ढूंढने का दुस्साहस करता है। यह ठीक है कि अज्ञेय की रचनाएँ किसी बहुत बडे उद्देश्य की पूर्ति नहीं करती किन्तु साहित्य के प्रचलित प्रतिमानों को तोड़ती हुई नए और अछूते प्रतिमानों की संभावनाएं अवश्य देती है जो हिन्दी कथा साहित्य में अलग तथा विशिश्ट स्थान की अधिकारिणी है। मानव मन के आंतरिक स्तरों का उद्घाटन करने में पूर्ण समर्थ उनकी विचारधारा वास्तव में एक नई परंपरा की नींव डालती है जिसका व्यापक अध्ययन उनके योगदान को सही ढ़ंग से परखने में सार्थक सिद्ध होती है।

संदर्भ– संकेत

(1) अज्ञेय : भवन्ती 1972 पृ0 – 42

(2) अज्ञेय : आलवाल पृ0 – 49

(3) हिन्दी कहानी का परिदृश्य– डॉ0 परेश पृ0 – 21

(4) कहानी विविधा– डॉ0 देवीशंकर अवस्थी पृ0 – 12

(5) कथा साहित्य (संकलन) साहित्य अकादमी पृ0 – 22

(6) अज्ञेय : वही पृ0 – 35

(7) हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकासः डॉ0 रामस्वरुप चतुर्वेदी पृ0 – 247

(8) जैनेन्द्र की सर्वश्रेश्ठ कहानियाँ : डॉ0 निर्मला जैन पृ0 – 17

(9) हिन्दी कहानियों के शिल्प विधि का विकास – लक्ष्मीलाल पृ0 – 326

(10) हिन्दी कहानी का शिल्प विधान – डॉ0 राधेश्याम गुप्त पृ0 – 76

डॉ0 उर्मिला कुमारी

मो0 – 9572474739

इमेल – urmilakumari0870@gmail.com

c/o मुकेश कुमार

ग्राम – भुड़वा (मिडिल स्कूल के पास) पोस्ट– शोले, थाना–पाटन, जिला– पलामू (झारखण्ड), पिन– 822123

9

कलाओं के विकास में योगदान– एक अध्ययन

डॉ0 पवन

सारांश

कलाओं के विकास को बढ़ाने में बहुत से महत्वपूर्ण तथ्यों का योगदान रहा है। इससे पूर्व कला के उद्भव और विकास का वर्णन इस प्रकार से है।

कला का उद्भव एवं विकास

कला के उदय तथा विकास की गाथा अनंत रही है। मानव जीवन के आरंभ के साथ ही कला का उदय हुआ है। जब से मानव का जन्म हुआ है, उसी दौरान से ही कला अस्तित्व में आई। मानव जीवन के विकास के साथ–साथ कला का विकास भी आगे बढ़ रहा है।

प्रागैतिहासिक काल को ही कला के उदय का समय माना जाता है। इसी काल में सभ्यता का विकास हुआ है। मनुष्य ने कलात्मक कार्य–पत्थरों से औजार व हथियार अपनी सुरक्षा के लिए बनाए, हजारों वर्षों के बाद मनुष्य ने अपनी सुरक्षा के लिए गुफाओं की शरण ली। जिनकी दीवारों पर पशुओं के चित्र तथा उस समय के अपने जीवन से संबंधित मधुर, खुशहाल और कठिन समय को भी खुरदरी चट्टानों और फर्शो पर रंगों के माध्यम से चित्रित किया।[1] इसी प्रकार 'मानव सभ्यता' और कला का विकास निरंतर चलता रहा है। इस विकास क्रम में मानव ने मिट्टी को भी अपनी कला का माध्यम बनाया, जिसमें बर्तन ,खिलौने व मूर्ति आदि निर्मित हैं।[2]

भारतवर्ष में 'पाषाण कालीन' चित्रकला के उदाहरणों में 'बेलारी', 'होशंगाबाद', 'रायगढ़', 'मिर्जापुर', 'सिंघनपुर', 'बुंदेलखंड' आदि स्थान प्रमुख हैं।[3]

इस बदलते समय की परिस्थितियों के अनुसार मानव में भी काफी परिवर्तन देखने को मिला हैं। मानव ने धीरे–धीरे खेती करना आरंभ कर दिया और गांव बसाने लग गया। नगरों के साथ–साथ लोकक्रिया जैसे– लोक नृत्य, छोटे–बड़े पूजा गृह आदि के कारण नगर सभ्यता का विकास हुआ, जिसके साथ–साथ ही कलाओं के विकास को भी प्रगति मिली। जो आज भी विकासरत है। इन सभ्यताओं से संबंधित कला के उदाहरण– 'नुबिया', 'मिस्र', के 'पिरामिडों', यूनान आदि पूजा स्थलों के भवनों में मिलते हैं।

भारत में सिंधु घाटी की सभ्यता के अवशेषों से पता चला है कि मानव ने कला अभिव्यक्ति के लिए 'पत्थर' तथा 'धातु' का प्रथम बार प्रयोग किया। जिससे उसने 'मनुष्य' व 'पशुओं' की 'आकृति' व 'मोहरे' आदि निर्मित की।

हड़प्पा की खुदाई में योजनाबद्ध तरीके से निर्मित 'नगर', 'अनाजभंडार', 'स्नानघर' और बलुआ पत्थर में निर्मित एक पुरुष धड़ भी प्राप्त हुआ है। जिसकी ऊंचाई 3.3/4 इंच है। जो मूर्तिकला के इतिहास में प्रमुख उदाहरण है।[4]

वास्तुकला में उभारदार शिल्पों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिसके उदाहरण हमें हवेलियों, मंदिरों, मस्जिदों व विभिन्न प्रकार की कलात्मक इमारतों पर देखने को मिलते हैं।

वैदिक काल– वैदिक काल का उद्भव धातु शिल्प के साथ हुआ। उस समय में आर्यो ने धातु के कार्यो में महारथ हासिल करके उसे आगे बढ़ाया है। ऋग्वेद में लोहार भट्टी में धातु को इस तरह से पिंगलता है। जिस प्रकार प्रजापति ने सभी देव रूपों को बनाया है। इसी प्रकार एक लकड़ी के खंभे पर तांबे रूपी पतली चादर बनी हुई है। जिस पर बहुत सुंदर कार्य किया गया है। खुदाई के दौरान गंगा की घाटी से प्राप्त तांबे में बने हथियार, तीर, कांटे, ताम्रशिल्प से बनी आकृतियों को पीट–पीट कर बनाया गया है। जिसमें हाथ गोल मुड़े हुए और पैरों को फैलाए हुए मानव आकृति दिखाई देती है।[5]

जनपदकालीन मूर्ति कला– इस काल में बौद्ध धर्म को व बुद्ध के विचारों को मानकर उनकी मानव मूर्तियां व स्तूप बनवाकर पूजा करना आरंभ किया। राजमहल में शिल्प के आकर्षक उदाहरण देखने को मिलते हैं। जिसमें महल के 80 भारी भरकम दरवाजे बने हुए हैं– जिन्हें यंत्रों के माध्यम से खोल व बंद किया जाता है। इसके प्रत्येक कमरे में पलंग के नजदीक एक स्त्री की मूर्ति हाथों में धूप दान लिए हुए खड़ी हुई दिखाई देती है। जो दिखने में बहुत ही सुंदर है। जिसे छुए बिना पता नहीं चल सकता कि वह वास्तविक में जीती जागती महिला है या कोई मूर्ति है।[6]

मौर्यकालीन मूर्ति कला– मौर्य काल में वास्तुकला के अद्भुत शिल्प को देखने को मिलते हैं, जिन्हें पत्थरों से तराशकर बनाया गया है। खदानों से प्राप्त पत्थरों को परिवर्तन में लाना, कार्विंग करके फिनिशिंग करना, पोलिश करके सुंदर शिल्प बनाना एक अच्छे कारीगर की पहचान है। प्रत्येक शिल्प व स्तंभ बलुआ पत्थर में निर्मित है। इसी काल में निर्मित यक्ष–यक्षिणी की मूर्तियां वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

सारनाथ स्तंभ– सम्राट अशोक द्वारा सारनाथ स्तंभ का निर्माण करवाया गया था। जहां पर सर्वप्रथम भगवान बुद्ध ने बोधी प्राप्त करके उपदेश दिया था। इस घटनाक्रम को ही धर्म चक्र प्रवर्तन कहा गया है। इस स्तंभ को सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। स्तंभ में चार शेर चारों दिशाओं में निर्मित है, जो एक दूसरे की पीठ से जुड़े हुए हैं। इनके नीचे एक चौकी बनी हुई है। जिस पर चार चक्र निर्मित हैं और इन पर चार पशु वृषभ (बेल), हस्ती (हाथी), अश्व (घोड़ा) तथा सिंह (शेर) की गतिशील मुद्राएं पत्थर को कार्विंग करके बनाई गई हैं।[7]

शुंग युगीन मूर्तिकला– शुंग वंश की स्थापना पुष्यमित्र ने 187 ईसवी पूर्व की थी। इस काल में अधिकतर पत्थर शिल्पों का प्रयोग हुआ, इसके प्रमुख केंद्र भरहुत, बोधगया तथा सांची रहे हैं।

भरहुत स्तूप मध्य प्रदेश के सतना जिले में स्थित है। जिसका निर्माण ईटों से किया गया था। इस स्तूप के चारों तरफ लाल पत्थर में वेदिका निर्मित है। जिस पर तोरण द्वार भी बनाए गए थे।[४] इसी काल में सम्राट अशोक द्वारा बोधगया का निर्माण करवाया गया था। यहीं बोधि वृक्ष के नीचे बैठकर गौतम बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था। सम्राट अशोक द्वारा भोपाल में एक और सांची स्तूप बनवाया गया था, जिसे महास्तूप भी कहा जाता है।

कुषाण युगीन मूर्तिकला– कुषाण वंश के शासनकाल में भारतीय मूर्तिकला तथा वास्तुकला अपने उच्चतम स्तर पर पहुंच चुकी थी। इसी काल में गांधार तथा मथुरा कला शैली का अत्यधिक विकास हुआ। गांधार शैली में यूनानी तथा रोमन शैली का मिश्रण व मथुरा शैली पर देशी शैली का प्रभाव देखने को मिलता है। इन दोनों शैलियों में बुध से संबंधित मूर्तियां निर्मित की गई व उनके जीवन से संबंधित प्रत्येक विषय को निरूपित किया गया। विभिन्न भारतीयों का मानना था कि सर्वप्रथम बुद्ध की मूर्तियां मथुरा में निर्मित की गई थी। जबकि प्रारंभिक यूरोपियों का कहना है कि सबसे पहले बुद्ध की मूर्ति गांधार में निर्मित की गई है।

अमरावती मूर्तिकला– कुषाण कालीन मूर्तिकला का अमरावती तीसरा केंद्र रहा है। दक्षिणी भारत में कृष्णा, गोदावरी नदी के किनारों पर 'सातवाहन काल' में 'बौद्ध कला' का विकास हुआ था। यह शैली पूर्णतया भारतीय शैली थी। जिसका मुख्य केंद्र आंध्र प्रदेश था। इसमें जातक कथाओं से संबंधित मूर्तियां बनाई गई, जो एक आकृति में ना होकर समूह में बनी हुई हैं। बुद्ध के अलावा स्त्री तथा पुरुषों की मूर्तियां भी निर्मित है। जो की सफेद संगमरमर में बनी हुई है। यह कला शैली बाद में 'श्रीलंका' तथा 'दक्षिण पूर्व एशिया' के देशों में विकसित हुई थी।[५]

मध्यकालीन वास्तुकला– मध्यकालीन भारत का इतिहास राजपूत शासन के अंत और तुर्कों के आक्रमण के साथ शुरू हुआ। भारत में मुस्लिम वास्तुकला का उदय तराइन के तीसरे युद्ध के बाद 'कुतुबुद्दीन ऐबक' के काल में हुआ। मध्यकालीन भारत के इतिहास की शुरुआत में प्राचीन वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलते हैं। जिनमें 'कोणार्क का सूर्य मंदिर', 'जगन्नाथ का पुरी मंदिर' शामिल है।

सल्तनत काल– इस समय की वास्तुकला में 'मुस्लिम वास्तुकला' के झलक दिखाई देती है। इस काल में मीनार निर्माण, गुंबद निर्माण, मस्जिद निर्माण वास्तुकला में प्रमुख रहे हैं। भारत में सर्वप्रथम 'इल्तुतमिश' द्वारा गुंबद बनाने का कार्य करवाया गया। इस काल में वास्तुकला के विभिन्न उदाहरण देखने को मिलते हैं। जिसमें अढाई दिन का झोपड़ा, कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद, बदायूं की जामा मस्जिद है। यह अपने समय की सबसे बड़ी मस्जिद रही हैं।

मुगल वास्तुकला– मुगल काल में वास्तुकला का अत्यधिक विकास हुआ है। शाहजहां के समय में वास्तुकला अपनी चरम सीमा पर थी। इस काल को वास्तुकला का स्वर्ण काल भी कहा गया है। बाबर द्वारा 'संभल की जामा मस्जिद' व पानीपत की 'काबुली बाग की मस्जिद' बनवाई गई। बाबर के सेनापति मीरबाकी द्वारा राम मंदिर को ध्वस्त करके बाबरी मस्जिद का ढांचा बनवाया गया। अकबर द्वारा दिल्ली में हुमायूं का मकबरा, जिसमें संगमरमर के पत्थर का प्रयोग पहली बार किया गया। अकबर ने 'आगरा का लाल किला', 'फतेहपुर सीकरी में बुलंद दरवाजा', 'पंच महल', 'दीवाने–ए–आम', 'दीवाने–ए–खास', 'मरियम की कोठी', 'सलीम चिश्ती का मकबरा', 'फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद' निर्मित करवाई।

आधुनिक कला– आधुनिक कला यानी वर्तमान कला, नई कला, आज के लोगों की कला आदि को आधुनिक कला कहते हैं।

जब हम आधुनिक कला के विषय में चर्चा करते हैं, तो हमारे मन में अनेकों सवाल व विचार उत्पन्न होते हैं कि आखिरकार आधुनिक कला क्या है, किसको कह सकते हैं, या किसे कह सकते हैं। कई बार हम लोग 'आधुनिक कला' या 'समकालीन' या 'नई कला' को एक जैसी कला मानने में भ्रमित हो जाते हैं। वैसे तो ये कला परंपरागत कलाएं हैं, जो सदियों से गुरु–शिष्य परंपरा पर आधारित रही हैं। जिन्होंने हमें धरोहर के रूप में वास्तुकला तथा मूर्तिकला के साथ–साथ लघु चित्र शैली तथा अजंता के भित्तिचित्रों जैसी कला प्रदान की है और कुछ परंपरागत तथा लोक शैलियां भी हमारे समाज में प्रचलित रही हैं।

यदि हम आधुनिक कला की बात करते हैं तो कई बार भ्रम की स्थिति बन जाती हैं। इस विषय में कलाकारों तथा कला समीक्षाको तथा कला इतिहासकारों के बीच मतभेद होता रहा है। कुछेक का कहना है कि आधुनिक कलाकार, 'राजा रवि वर्मा' से लेकर अंग्रेज अधिकारी 'ई० वी० हवेल' तथा 'अवनीद्रनाथ टैगोर' के प्रत्येक प्रयासों से कला में जो नया रूप सामने आया है, कुछेक कलाकार बंगाल स्कूल के जन्म के साथ–साथ 'अमृता शेरगिल' के भारत आगमन तक, तो कुछ कलाकार 1940 ई० के दशक में कोलकाता 'कला ग्रुप', 'मुंबई प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप' (पैग) तथा 'दिल्ली शिल्पी चक्र' कला आंदोलन से तथा 1857 से भी जोड़ा गया है।

वर्तमान युग की कला में पूरे मानव समाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 'विज्ञान' और 'तकनीकी' आविष्कारों में कलाओं की 'रचना पद्धति' में विशेष प्रयोजन किए गए हैं। कलाओं की विषयवस्तु ने 'समाजवादी जीवन दर्शन' में क्रांति की लहर ला दी है। वर्तमान युग में कला का विकास क्रम निरंतर चलता आ रहा है

जो कभी न रुकने वाला है।

निष्कर्ष– कलाओं के विकास में बहुत से महत्वपूर्ण पहलुओं का योगदान रहा है। मानव जीवन के साथ–साथ कला का भी विकास हुआ है।

निष्कर्ष:

प्रागैतिहासिक काल को कला के उद्भव का समय माना गया है। प्रारंभ में मनुष्य ने अपनी सुरक्षा के लिए पत्थरों से हथियार और औजार बनाने शुरू किये, जिनके उदाहरण गुफाओं की दीवारों पर बने चित्रों व कला कृतियों से मिलते हैं। जैसे–जैसे 'मानव सभ्यता' का विकास हुआ। वैसे–वैसे कला का भी विकास होता रहा है। इस विकास क्रम में मानव ने मिट्टी को भी कला को माध्यम बनाया है। बदलते समय के अनुसार मानव में भी काफी बदलाव हुए। उन्होंने खेती करना आरंभ कर दिया और धीरे–धीरे नगर सभ्यता का विकास हुआ। साथ ही कलाओं के विकास को भी प्रगति मिली। जो आज भी विकासरत है। इन सभ्यताओं से संबंधित कला के उदाहरण– नुबिया, मिस्र के पिरामिडों, यूनान आदि पूजा स्थलों के भवनों से मिलते हैं। कला के विकास में सिंधु घाटी सभ्यता व हड़प्पा कालीन अवशेष विशेष उदाहरण है। वास्तुकला में उभारदार शिल्पों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। वैदिक काल में आर्यों ने धातु शिल्प में महारत हासिल करके इसको आगे बढ़ाया। जनपद काल में बौद्ध धर्म व बौद्ध के विचारों से संबंधित कलाकृतियां, मानव–मूर्तियां व स्तूप का निर्माण किया गया। मौर्य काल में निर्मित यश–यक्षिणी मूर्तियां वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। सम्राट अशोक द्वारा सारनाथ स्तंभ का निर्माण करवाया गया था। जहां पर सर्वप्रथम भगवान बुद्ध ने बोधि प्राप्त करके उपदेश दिया था। शुंग काल में अधिकतर पत्थर शिल्पों का प्रयोग हुआ। इसके प्रमुख केंद्र भरहुत, बोधगया तथा सांची रहे हैं। गांधार तथा मथुरा कला शैली का अत्यधिक विकास कुषाण युग में हुआ। इस काल में मूर्तिकला तथा वास्तुकला अपने उच्चतम शिखर पर थी। अमरावती मूर्तिकला में बौद्ध की जातक कथाओं से संबंधित मूर्तियां निर्मित की गई। बुद्ध के अलावा स्त्री और पुरुषों की मूर्तियां सफेद संगमरमर में निर्मित है। मध्यकालीन वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरणों में 'कोणार्क का सूर्य मंदिर', 'जगन्नाथ का पुरी मंदिर' शामिल है। सल्तनत काल की वास्तुकला में मुस्लिम वास्तुकला की झलक दिखाई देती है। मीनार निर्माण, गुंबद निर्माण, मस्जिद निर्माण वास्तुकला में प्रमुख रहे हैं। शाहजहां के काल में वास्तुकला अपने चरम पर थी। मुगल काल को वास्तुकला का स्वर्ण युग भी माना गया है। इस काल में सेनापति मीर बाकी द्वारा राम मंदिर को ध्वस्त करके बाबरी मस्जिद का ढांचा बनाया गया। अकबर द्वारा 'आगरा का लाल किला', 'बुलंद दरवाजा', 'पंच महल' 'दीवाने–ए–आम' आदि इमारतें निर्मित करवाई। आधुनिक कला यानी समकालीन कला, वर्तमान कला, नई कला, आज के लोगों की कला आदि को आधुनिक कला के नाम से जाना जाता है। आधुनिक कलाकार 'राजा रवि वर्मा' से लेकर अंग्रेज अधिकारी 'ई वी हवेल' तथा 'अवनींद्र नाथ टैगोर' के प्रत्येक प्रयासों से कला में एक नया रूप सामने आया है

संदर्भ सूची

1. प्रताप, डॉक्टर रीता (वैश्या), भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, प्रकाशकः राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्लॉट नंबर 1, झालाना संस्थानिक क्षेत्र, जयपुर– 302004, 36वां संशोधित संस्करणः 2021
2. सिंह, कुमार, अरविंद, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला (पाषाण काल से गुप्त काल तक)
3. अग्रवाल, डॉ० आर० ए०, भारतीय चित्रकला का वैभव (प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान तक) रूपसार–रससार, प्रकाशकः स्वाति पब्लिकेशन्स 34, सेंट्रल मार्केट, अशोक बिहार, दिल्ली–110052, प्रथम संस्करणः 2019
4. गुप्त, डॉ० शिवकुमार, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला, प्रकाशकः कला निधि प्रकाशन, C–312 हरीमार्ग, मालवीय नगर जयपुर–302017, द्वितीय संस्करणः 2003

Address:-
Dr. Pawan
S/o Shri. Raj Singh
V.P.O. Bohar, Pana Melwan,
Near Ravidass mandir,
Tehsil & District-Rohtak, State-Haryana, Pin code:- 124021
Mobile no.:- 9728627038

10

राष्ट्रीय आंदोलन में उग्र राष्ट्रवादियों का योगदान

गीता

सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में भारतीयों के अंदर राष्ट्रीयता की भावना तेजी से विकसित हो रही थी। भारतीयों के अंदर पनपने वाली इस राष्ट्रवादी विचारधारा के परिणाम स्वरूप 28 दिसंबर 1885 ई को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव डाली गई। आगे चलकर इसी के नेतृत्व में भारतीयों ने विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए लंबा संघर्ष किया। 1885 से 1905 ई के दौर को उदारवादी दल या नरमदलीय चरण के रूप में जाना जाता है क्योंकि इस समय के दौरान कांग्रेस का नेतृत्व उदारवादी नेताओं के हाथो में रहा था। ये नेता अपनी उदारवादी नीतियों, अहिंसक विरोध प्रदर्शन, अंग्रेजों की न्याय प्रियता में विश्वास रखते थे। और अपनी बातें मनवाने के लिए सरकार को प्रार्थना पत्र, शिष्ट मंडल, स्मरण पत्र आदि भेजते रहते थे। लेकिन फिर भी ब्रिटिश सरकार ने इनकी मांगो की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जिसके चलते एक युवा वर्ग का उदारवादियों की विचारधारा से विश्वास उठने लगा। क्योंकि भारतीय जनता उदारवादी नेताओं की राजनीतिक भिक्षावृत्ति से तंग आ चुकी थी। कांग्रेस में आए युवा वर्ग ने दूसरा तरीका अपनाने का निर्णय किया जो उग्र राष्ट्रवाद पर आधारित था। इस नए युवा वर्ग को अंग्रेजों पर बिल्कुल भी विश्वास नहीं था। यह नया वर्ग ही उग्र राष्ट्रवाद कहलाया।

प्रस्तावनाः–

1906 से 1919 तक का राष्ट्रीय कांग्रेस का कार्यकाल उग्र राष्ट्रवाद के नाम से जाना जाता है। कांग्रेस में आए नए और युवा वर्ग ने उदारवादियों के साधनों, आदर्शो, विचारधारा और भीखमंगी की कुटू आलोचना की थी। उग्र राष्ट्रवादियों का नेतृत्व करने वालों में मुख्यत महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक , बंगाल के विपिन चंद्र पाल, अरविंद घोष और पंजाब के लाला लाजपत राय प्रमुख थे। और उग्रवादी विचारधारा समर्थको ने विदेशी वस्तुओं तथा विदेशी शासन का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल एवं राष्ट्रीय शासन की स्थापना आदि पर जोर दिया। तिलक का विचार था कि "भारत की राजनीतिक मुक्ति अनुनय एवं विनय और निवेदनों से न होकर दृढ़ कथन एवं प्रत्यक्ष कार्यवाही से ही संभव है। अतः राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा"। वही लाला लाजपत राय का कहना था कि "भारतीयों को अब भिखारी बने रहने में संतोष नहीं करना चाहिए और न ही उन्हें अंग्रेजों की कृपा पाने के लिए गिडगिडाना आना चाहिए"। उग्र राष्ट्रवादी दल के उदय होने में बहुत सी परिस्थितिया उत्तरदायी थी जैसे उदारवादियों की असफलताएं, 1892 की अधिनियम से जनता में असंतोष, अंग्रेजों द्वारा अपनाई जाने वाली षड्यंत्रकारी आर्थिक नीतियां,देश में बढ़ते अकाल व प्लेग से भारतीयों की दयनीय दशा, और अंतरराष्ट्रीय घटनाओं का व्यापक प्रभाव आदि ऐसे कारण रहे हैं जिनके कारण भारतीयों ने अपनी नीतियों में परिवर्तन किया और उन्होंने संघर्ष का रास्ता अपनाना पड़ा। इस विचारधारा के नेताओं ने भारतीयों में अपने धर्म, संस्कृति, इतिहास और राष्ट्र के प्रति चेतना लाने में हिंदू पुनरुत्थान वाद का सहारा लिया।

उग्र राष्ट्रवादियों के सिद्धांतः–

उग्र राष्ट्रवादियों के मुख्य सिद्धांत थेः–

स्वराजः

उग्र राष्ट्रवादियों का प्रमुख सिद्धांत स्वराज था। तिलक ने सर्वप्रथम कहा था कि "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे मैं लेकर रहूंगा"। उग्र राष्ट्रवादी शासन में सुधार के पक्ष में नहीं थे बल्कि वे तो पूर्ण स्वराज प्राप्त करना चाहते थे।

आत्म शक्ति पर बलरू–

उग्रराष्ट्रवादी याचना,प्रार्थना पत्रों, शिष्टमंडलो आदि पर विश्वास नहीं रखते थे । वे आत्मविश्वास व आत्म शक्ति पर बल देते थे। भारतीय जनता में भी आत्म शक्ति का संचार करने के लिए उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी, आत्मनिर्भर, और उत्सव आदि का सहारा लिया। इन्होंने त्याग व बलिदान को अपनी पूर्ति का साधन बनाया ।

धार्मिक राष्ट्रवाद में विश्वासरू–

उग्र राष्ट्रवादी नेताओं का हिंदू धर्म में अपार विश्वास था। उन्होंने जनता को जागृत करने के लिए धर्म का सहारा लिया। उन्होंने दुर्गा पूजा, गणेश व शिवाजी उत्सव, काली पूजा आदि उत्सव मनाने शुरू किया।वेदों की प्रमाणिकता पर जोर दिया। वहीं पंजाब में लाला लाजपत राय ने आर्य समाज के माध्यम से जनता में राष्ट्रवाद की भावना पैदा की।

जनशक्ति में विश्वासः–

उग्र राष्ट्रवादियों का जनशक्ति में अधिक विश्वास था। वे मानते थे कि अगर जनता हमारे साथ है तो हम कुछ भी कर सकते हैं क्योंकि साधारण जनता में बहुत शक्ति होती है। लाजपत राय ने कहा भी था कि " हम अपने मुंह को राजभवन की ओर से हटाकर जनसाधारण की झोपड़ियां की ओर मोड़ना चाहते हैं ..... हम चाहते हैं कि हम सरकार से अपील करने के लिए अपना मुंह न खोलें वरन् अपने जनसाधारण से अपील करने के लिए खोलें"।

उग्र राष्ट्रवादियों के मुख्य साधन :–

तिलक कहते थे कि, " अपने उद्देश्य के कारण नहीं वरन् उसे प्राप्त करने के साधनों के कारण हमें उग्र राष्ट्रवादियों की उपाधि

मिली है"।

निष्क्रिय प्रतिरोधः–

निष्क्रिय प्रतिरोध का अर्थ है कि सरकार का सहयोग न करना अर्थात सरकार के उस प्रत्येक कार्य का विरोध करना जो जनता के हित में न हो। अरविंद घोष के अनुसार," वर्तमान परिस्थितियों में प्रशासन चलाना असंभव बना दो"। और निष्क्रिय प्रतिरोध सभी भारतीयों को एक साथ मिलकर करने के लिए तैयार किया गया।

बहिष्कारः–

बहिष्कार से तात्पर्य हमारे द्वारा प्रयोग की जा रही प्रत्येक विदेशी वस्तुओं, शिक्षण संस्थानो, उपाधियां और अंग्रेजों द्वारा दी गई नौकरियों को त्याग देना था। बंगाल विभाजन के विरोध में सबसे अधिक इसी साधन का प्रयोग किया गया था। बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि,"हमारे पास हथियार नहीं है तथा ना ही हमें हथियारों की आवश्यकता है। बहिष्कार ही हमारा जबरदस्त राजनीतिक हथियार है"।

स्वदेशीः–

स्वदेशी यानी अपने देश में बनी वस्तुओं का प्रयोग करना। जब विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया तो स्वदेशी पर बल दिया गया । भारतीयों द्वारा अपने कुटीर,लघु शिल्प उद्योगों को पुनर्जीवित किया गया। ताकि भारतीयों को आर्थिक रूप से लाभ पहुंचे और वे आत्मनिर्भर बन सके।

राष्ट्रीय शिक्षाः–

जब भारतीय छात्र छात्राओं ने कॉलेज, विद्यालय में जाना बंद कर दिया तो भारतीयों ने राष्ट्रीय शिक्षण संस्थान खोलने शुरू कर दिए। और इन राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों में भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास और रीति–रिवाजो की शिक्षा दी गई। और एक डॉन सोसाइटी की स्थापना की गई। राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की देखरेख में अनेक स्कूल,कॉलेज खोले गए।

उग्रवादी आंदोलन की प्रगतिः–

उग्रराष्ट्रवादी आंदोलन की गतिविधियों का मुख्य केंद्र पंजाब, बंगाल और महाराष्ट्र था। इसके बावजूद समूचे देश के लोगों ने इस आंदोलन में अपनी रुचि दिखाई।

बंगालः–

कर्जन द्वारा बंगाल विभाजन की घोषणा के बाद उग्र राष्ट्रवादियों ने बंगाल विभाजन के विरोध में आंदोलन शुरू कर दिया। 16 अक्टूबर 1905 को बंगाल विभाजन वाले दिन को शोक दिवस के रूप में मनाया गया। अनेक वकीलों ने विरोध प्रदर्शित करते हुए वकालत करनी छोड़ दी। विद्यार्थियों ने स्कूल में कॉलेज का बहिष्कार कर दिया। महिलाओं ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। आनंद मोहन बोस ने फेडरेशन हाल की स्थापना की।

महाराष्ट्रः–

महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। उनके द्वारा प्रकाशित अपने दो पत्रों केसरी और मराठा के द्वारा भारतीय नवयुवकों में आत्मविश्वास, बलिदान और राष्ट्रीय चेतना की भावना पैदा की। तिलक के विचारों से ही प्रभावित होकर चापेकर बंधुओ ने रैंड और लेफ्टिनेंट आयर्स्ट की हत्या कर दी थी। तिलक को भी इस घटना का दोषी ठहराया गया को और उनको 18 महीने की कठोर सजा दी गई। आगे चलकर 1908 में ऐसे ही अंग्रेज विरोधी लेख लिखने के कारण 6 साल की सजा दी गई।

पंजाबः–

पंजाब में उग्र राष्ट्रवादियों का नेतृत्व लाला लाजपत राय और अजीत सिंह कर रहे थे। लाला लाजपतराय ने अपने समाचार पत्र केसरी के माध्यम से अपने विचारों को पंजाब में फैलाया। वही अजीत सिंह ने भारत माता समाचार पत्र के माध्यम से पंजाब के लोगों को जागृत किया। सरकार ने इनका दमन करने के लिए 9 मई 1907 को गिरफ्तार करके मांडले जेल भेज दिया गया। और अजीत सिंह पर भी किसानों को भड़काने का आरोप लगाकर काले पानी की सजा दे दी गई।

उदारवादियों और उग्र राष्ट्रवादियों में बढ़ता विरोधः–

कोलकाता अधिवेशन 1906–

1906 में जब कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कोलकाता में हुआ तो वहां पर अध्यक्ष पद को लेकर उदारवादियों और उग्र राष्ट्रवादियों के बीच एक बार फिर मतभेद देखने को मिला था। क्योंकि उग्र राष्ट्रवादी तिलक को बनाना चाहते थे। वही उदारवादियों ने चतुरता दिखाते हुए दादाभाई नौरोजी को अध्यक्ष पद के लिए आमंत्रित किया। और इस प्रकार कांग्रेस का विभाजन होने से बच गया।

कांग्रेस का विभाजन तथा सूरत अधिवेशन 1907ः–

सूरत के अधिवेशन में फिर से उदारवादी और उग्र राष्ट्रवादियों में अध्यक्ष पद को लेकर मतभेद पुनः उत्पन्न हो गए। उग्र राष्ट्रवादी लाला लाजपत राय को वही उदारवादी रासबिहारी बोस को अध्यक्ष बनना चाहते थे। एक और मुख्य कारण था वे चार प्रस्ताव बॉयकॉट, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और बंगाल विभाजन विरोधी को अधिवेशन में बहस करने की सूची वाले विषय से बाहर कर दिया गया था। इस प्रकार इन मतभेदों के बढ़ते हुए कांग्रेस का विभाजन हो गया। और ब्रिटिश सरकार ने इसका लाभ उठाते हुए अनेक उग्र राष्ट्रवादी नेताओं को जेल में डाल दिया।

उग्र राष्ट्रवादियों का योगदानः–

उग्र राष्ट्रवादियों का आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ जिसको कभी भी बुलाया नहीं जा सकता। और इन्होंने बहुत सी उपलब्धियां प्राप्त की।

राष्ट्रीय आंदोलन को संघर्षशील बनानाः–

उग्र राष्ट्रवादियों ने शुरुआती दौर से ही संघर्ष का रास्ता अपनाया था। और जनता को भी स्वराज प्राप्त करने के लिए संघर्ष का रास्ता चुनने का सुझाव दिया था। और इन्होंने लोगों को त्याग, बलिदान और कष्टो को जेल कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जागृत किया था।

जनता की भागीदारी को बढ़ानाः–

उग्र राष्ट्रवादियों ने साधारण जनता की शक्ति को पहचाना और उनको साथ में लेकर संघर्ष करके अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास किया। और प्रथम बार बड़ी संख्या में किसी आंदोलन में भारतीय जनता ने भागीदारी दिखाई थी। इसमें आम नागरिक से लेकर उच्च वर्ग, सभी वर्गों के लोगों ने इसमें हिस्सा लिया था।

स्वदेशी और बहिष्कार रूपी शस्त्र का प्रयोगः–

उग्र राष्ट्रवादियों ने पहली बार अंग्रेजों को कमजोर करने के लिए उनकी आर्थिक नीति पर प्रहार करने के लिए स्वदेशी और बहिष्कार जैसे शस्त्रों का प्रयोग किया गया। जिसमें साधारण जनता ने भी बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। और भारतीय उद्योगों को फिर से पनपने का अवसर प्रदान किया। भारतीयों को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया।

प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के गौरव में वृद्धिः–

पहली बार भारतीय जनता में आत्मविश्वास पैदा करने के लिए अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति को जनता के सामने रखा गया। तिलक ने लोगों को कर्म योग का पाठ सिखाया। हिंदू धर्म को स्वतंत्रता प्राप्ति का आधार बताया। और भारतीय संस्कृति को पश्चिमी संस्कृति से बहेतर साबित किया।

स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित करनाः–

तिलक ने पहली बार स्वायत्त स्वराज की बात की। और उग्रराष्ट्रवादियों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण ही दादाभाई नौरोजी ने स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया। और आगे चलकर इसी स्वराज के आधार पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था।

निष्कर्षः

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन में उग्र राष्ट्रवादी दल ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जनता को संघर्ष के रास्ते पर चलकर स्वराज प्राप्त करने के लिए तैयार किया। जनता के अंदर आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीयता की भावना का सृजन किया। भारतीयो को स्वराज, स्वदेशी और बहिष्कार रूपी शस्त्र प्रदान किया जिससे अंग्रेजों का आर्थिक ढांचा हिल सके। इन्हीं शस्त्रों का आगे चलकर प्रयोग महात्मा गांधी ने भी व्यापक रूप से किया किया। हालांकि उग्र राष्ट्रवादी अपने सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाए। क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने उग्र राष्ट्रवादियों को बलपूर्वक कारागारों में डाल दिया तथा उग्र राष्ट्रवाद का कठोरता से दमन किया गया।

संदर्भः–

1. Miglani K-L & Juneja M-M Freedom Movement In India] Kapoor Publications Karnal]1978
2. Chandra Bipan Adhunik Bharat Ka Itihas Orient Blackswan 2020
3. अहिर राजीव , आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स पब्लिकेशन न्यू दिल्ली, 2021
4. गुप्ता डॉ मोहनलाल, आधुनिक भारत का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, 2014
5. शुक्ल रामलखन , आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यं कार्यालय निदेशाल्य, 2017
6. सरकार सुमित, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, 2019
7. पांडे एस.के , आधुनिक भारत, प्रयाग अकादमी, 2019
8. बंदोपाध्याय शेखर, प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड न्यू दिल्ली, 2015
9. कुमार जितेंद्र, आधुनिक भारत, लक्ष्मी बुक डिपो

गीता

सहायक प्रोफेसर (यू.जी.सी. नेट)

हिंदू कन्या महाविद्यालय जींद

पिन कोड –126110

मोबाइल न.– 7082098875

11

संतराम बी.ए. के साहित्य में जातिवाद

सुषमा

सारांश

जातिवाद से तात्पर्य "किसी विशेष जाति को बढ़ावा देना तथा अन्य जातियों को निम्न समझना जातिवाद कहता है।"जातिवाद मानव समाज में व्याप्त प्रमुख बुराइयों में से एक है। जातिवाद की भावना मनुष्यों के बीच घृणा, द्वेष एवं प्रतिस्पर्द्धा को जन्म देती है। जातिवाद की भावना के विकसित होने से मनुष्य अपनी ही जाति के सदस्यों के हितों को सर्वोपरि समझने लगता है फिर समाज, देश, राष्ट्र का हित उसके लिए नगण्य हो जाता है। यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो जातिवाद रूपि विष भारत में लगभग 3000 वर्ष पुराना होकर समाज को निगलता जा रहा हैं। एम0 सी0 राजा का कथन है–

"जातिवाद देश की प्रगति में रोड़ा है। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह इस हानिकारक जातिभेद को जड़ से उखाड़ डाले। जब तक ऐसा नहीं किया जाता हमारे राष्ट्र का उत्थान नहीं हो सकता।" 1.

संतराम बी. ए. का जन्म 4 फाल्गुन सम्वत 1943 विक्रमी अर्थात् 14 फरवरी सन् 1887 को पंजाब के होशियारपुर जिले के अंतर्गत प्रकृति की गोद में अवस्थित एक छोटे से गांव 'पुरानी बसीं' में हुआ था। संतराम बी0 ए0 अपने समय के एक बहुत विराट व्यक्तित्व रखने वाले लेखक, साहित्यकार, समाज–सुधारक व जात–पात तोड़क थे। संतराम बी0 ए0 जी ने अपनी कृतियों में जातिवाद का यथार्थवादी दृष्टिकाण प्रस्तुत किया है। वर्ग संधर्ष तथा जातिवाद की समस्याएं उनकी रचनाओं का मूल स्वर रही है। संतराम बी0 ए0 की अंतदृष्टि बहुत ही गहन थी उन्होने अपनी महत्वपूर्ण कृति हमारा समाज, जाति तोड़ो, हिदुंत्व जो हिंदुओ को ही ले डूबा, जाति आखिर क्यों नही जाती, जातिवाद का जनाजा, अगर किश्ती डूबी तो डूबोगे सारे में जाति–भेद, अस्पृश्यता, छुआछूत जैसी अनेक समस्याओं को मानव जाति के समक्ष लाकर रखा।

जब कोई उंची जाति का व्यक्ति नीची जाति के व्यक्ति के साथ दुर्व्यवहार करता है तो निम्न जाति के व्यक्ति को बहुत अपमान का सामना करना पड़ता है। संतराम जी ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में फैली इन कुरीतियों, भेदभावों को मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत कर इनका समाधान करने का प्रयास किया है। भारत में यथास्थिति जातिवाद के रूप बदलते रहे है। इसकी तीव्रता मे कमी पेशी भी आयी है परन्तु इसका जनाजा (अर्थी) आज तक नहीं निकल पाया है जनाजा तब निकाला जाता है जब किसी की मृत्यु हो जाती है। भारत में जातिवाद की मृत्यु अभी तक नहीं हुई है। सवर्ण कहलाने वाला हिंदु 'जाति' को बना कर रखना चाहता हैं। उसमें व्याप्त श्रेणीबद्ध तिरस्कार को बनाए रखना चाहता है। संतराम बी0 ए0 की 'जातिवाद का जनाजा' नामक पुस्तक का एक द्रष्टांत देखिए,

"ताजा उदाहरण पिछड़ो को सरकार द्वारा नौकरियों में आरक्षण देने का मुद्दा है। हम प्रतिदिन समाचार–पत्रों, पत्र–पत्रिकाओं तथा दृष्य–मीडिया के द्वारा यह जानकारी लेते रहते है कि हिंदू समुदाय के तथा कथित सवर्ण लोग आरक्षण का विरोध बड़े जोर–शोर से करते हैं किंतु उनमें से कोई एक भी भलामानुस ऐसा नहीं दिखता जो जातिवाद का विरोध करता हो। सबको विदित है कि आरक्षण का आधार 'जाति' और उसका वाद (सिंद्धात) ही है। यदि जाति और उससे जुड़ी हेय दृश्टि का उन्मूलन हो जाए तो आरक्षण स्वतः निर्मूल हो जायगा।"2.

भारत में सदियों से ही इस जातिवाद रूपी विश को अमृत बनाने वाले महात्मा उत्पन्न होते रहे है। ये मनीशीगण वर्ण–व्यवस्था की परम्परा के चलते ऊंच–नीच का भेदभाव किए बिना किसी भी गृहस्थ का दिया हुआ भोजन ग्रहण कर लेते थे। बुद्व के आगमन से जाति– भेद में परिवर्तन आया। सामाजिक स्तर पर जातिवाद का खण्डन विकसित हुआ। बुद्ध ने जातिवाद को मिटाने के लिए अनेक अवसरों पर अपने समकालीन ब्राहणों से जो अपने आप को ऊंची जाति का मानते थे तथा अन्य जातियों को नीचा समझते थे से शास्त्रार्थ किया और यह स्थापित किया कि संसार के सभी व्यक्ति चाहे वे किसी भी गांव, क्षेत्र विशेश में उत्पन्न हुए हो सब की जाति एक ही है। सभी मनुष्य एक ही योनि, एक ही प्रक्रिया से तथा एक ही प्रकार का आकार लेकर, समान संवेदनाएं लेकर इस संसार में अपनी जीवन लीला का आरम्भ करते है। बुद्ध ने अपनी ज्ञान रूपी ज्योति के माध्यम से ब्राह्मणों को समझाया कि जन्म से कोई भी ब्राह्मण या शुद्र नहीं होता। मनुष्य अपने आचरण से, सतकर्मो से ब्राह्मण कहलाता है ना कि जाति से। जाति से ब्राह्मण माता–पिता की संतान यदि चोरी करती है तो वह चोर ही कही जाएगी न कि ब्राह्मण कहलाएगी। संतराम बी0 ए0 बुद्ध के एक शिष्य आनन्द के विषय में लिखते है– "बुद्ध के शिष्य आनन्द से संबंधित एक विशेश घटना का परिदृष्य भी आंखे खोलने वाला है आनंद द्वारा चारिका के समय एक चांडाल कन्या से पानी पिलाने का आग्रह और कन्या द्वारा जातीय हीन भावना के कारण आनन्द को पानी पिलाने से इन्कार तथा आनन्द द्वारा यह कहना – " मैने तुमसे पानी मांगा है जाति नहीं पूछी।" बुद्ध धर्म की करनी–कथनी की एकरूपता को ही उद्घाटित करता है।"3.

बुद्ध धर्म ने अपने उपदेशो और ज्ञान से जातिवाद का जनाजा निकाल दिया था परन्तु यह जातिवाद रूपी कोढ़ समाज में बहता ही रहा। कारण यह रहा कि बुद्ध ने अपने धम्मशासन को व्यक्ति की स्वेच्छा पर छोड़ दिया। यदि वे आदेश देने और राज्य–शासन में

इसे सख्ती से लागू करते तो जनता अवश्य उनकी बात मानती। बुद्ध यदि अपने प्रतिदिन के संभाशणों में जातिवाद को प्रमुख मुद्दा बनाते तो जनमानस में आन्दोलन की लहर दौड़ पड़ती। यदि बुद्ध समाज से जातिवाद को पूरी तरह खत्म करने में असफल रहे तो भी बुद्ध को दोशी नहीं माना जा सकता। क्योंकि बुद्ध एक करूणामय व्यक्तित्व के स्वामी थे वे किसी पर भी अपनी बात लादना नहीं चाहते थे। उनका मानना था कि मनुष्य का इतना मानसिक विकास होना चाहिए कि वह स्वंय इस संकीर्ण विचारधारा से बाहर निकल जाए। बुद्ध लगभग 45 वर्षो तक समाज की मानव जाति की रक्षा, सुख–शांति, सुरक्षा के उपाय बताते रहे फिर भी जातिवाद की समस्या भारत में बनी ही रही। जातिवाद नामक रोग कोई सौ–दो–सौ वर्ष पुराना नहीं सहस्त्रों वर्ष पुराना है। महाभारत में पढ़ा गया एक उदाहरण देखिए – " राजा द्रुपद अपनी पुत्री द्रौपदी का स्वंयवर रचते है। स्वंयवर में मत्स्य–वेध करने के लिए महावीर कर्ण धनुशबाण लेकर आगे आते हैं। परंतु द्रौपदी चिल्ला उठती है कि मै इस सूत–पुत्र के साथ विवाह नहीं करूगी। इस पर कर्ण विश का घूंट पीकर रह जाता है। वे जैसे–तैसे इस अपमान और तिरस्कार को सहन करके चुप बैठ जाते हैं। इसी प्रकार एक दूसरे अवसर पर जब अश्वत्थामा ने कर्ण को सूत–पुत्र कहकर अपमानित करने की चष्टा की थी, तो महाबली कर्ण ने कहा था–

सूतो वा सूत–पुत्रो वा को वा को वा भवाम्यहम्
दवायत्तं कुले जन्म महायत्त्सं तु पौरुशम्।।

'मैं सूत हूं या सूत–पुत्र हूं इससे क्या मतलब किसी कुल में जन्म होना देव के अधीन है, मेरे अधीन तो पुरुषार्थ करना है, सो हमारा पुरुषार्थ देखो। जन्म पर ध्यान न दो। कर्ण इस तिरस्कार को अपने जन्म भर नहीं भूल सके थे।"4.

जाति–भेद को मानने वाला एक छोटे से जन–समूह को ही अपना पूरा संसार समझता है। उसी छोटे से जन–समूह के भीतर ही उसके खान–पान, शादी–व्याह, रहन–सहन, जीवन–मरण होता रहता है। ना तो वह दुसरी जाति में खान–पान पसन्द करता है और ना ही शादी–ब्याह। जातिवाद हिंदू समाज पर कलंक है। दूसरे देशो में भी समाज वर्गो में बंटा हुआ है परन्तु वहां के वर्ग भारत के जाति–भेद से भिन्न है। विदेशों में धनी–निर्धन, स्वामी–सेवक शिक्षित–अशिक्षित, पूंजीपति–मजदूर, किसान–अध्यापक आदि वर्ग है जिनका समाज के विकास पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। भारत में जाति और गौत्र को सर्वोपरि रखा जाता है। मनुश्य पीड़ा में रह सकता है परन्तु अपनी जाति और गौत्र नहीं छोड़ सकता। बौद्ध साहित्य के अनुसार, "किसी मनुष्य की छाती में बाण लग गया। उससे वह आहत होकर चिल्लाता हुआ धरती पर गिर पड़ा। कुछ लोग दौड़ कर उसके निकट पहुचे। वे उस बाण को खींच कर घाव में से निकाल डालना चाहते थे। पर उस आहत व्यक्ति ने उनको ऐसा करने से रोक दिया। वह बोला, मै यह बाण तब तक न निकालने दूंगा जब तक मुझे यह न बता दिया जाएगा कि यह किधर से आया, किसने चलाया यह किस पेड़ की लकड़ी से और कब बना, किसने इसे बनाया और इसमें जो लोहा लगा है वह किस खान से निकाला गया था और उसे किस लौहार ने ढ़ाल कर बाण की अनी तैयार की थी उन लोगो ने उसे बहुतेरा समझाया कि तुम पीड़ा से व्याकुल हो रहे हो, इन बातों के जानने से तुम्हारा दुःख कैसे दूर होगा? बाण किसी ने भी और कभी भी बनाया हो, तुम्हारी पीड़ा तो उसे निकालने से ही शांत होगी। पर उसने हठ न छोड़ी।5.

रूढ़िवादी लोगों का मानना है कि जाति–प्रथा के द्वारा मनुश्य में खून की पवित्रता बनी रहती है। परंपरागत रूढ़िवादी लोगो का विचार है कि ऊँची जातिवाले व्यक्तियों का खून बढ़िया होता है और नीची जाति वालो का घटिया होता है। इस बात में कितनी सच्चाई है यह विज्ञान ने प्रमाणित कर दिया है। विज्ञान ने रक्त का विश्लेषण करके साधारण जनता को बताया कि रक्त में कौन–कौन से तत्व, कौन–कौन से कीड़े होते है और किन कीड़ो के बनने से कौन सा रोग उत्पन्न होता है। रक्त में कीड़ो के बनने की मात्रा जाति के आधार पर नही वरन् रोग के आधार पर होती है। "हर जाति के रोगियों के रक्त में एक रोग में एक समान रोग के कीड़े होते है। ऐसा नहीं है कि ब्राह्मण के रक्त में किसी और प्रकार के कीड़े हो और अछूत के रक्त में किसी और प्रकार के। यह समानता स्त्री–पुरूष के रक्त मे भी पूर्ण रूप से है।"6.

संतराम बी0 ए0 ने भारत में ब्राह्मणवाद को जातिवाद की जड़ माना है। चूंकि ब्राह्मण जन्म से ही समाज में पूजनीय माना जाता है इसलिए वह अन्य जातियों को कोठरियो में कैद करके रखता है। यदि जातिवाद को समाप्त करके मानवतावाद लाने का प्रयत्न करना है तो ब्राह्मणवाद को मिटाना होगा। ब्राह्मण तथा राजपूत जैसी जातियां अपने आप को ऊंचा समझती है वे यह भूल जाती है कि–

"अगर किश्ती डूबी तो डूबोगे सारे।
न तुम ही बचोगे न साथी तुम्हारे।।" 7.

भारत में राजनीतिक परिवर्तन के साथ–साथ समाज के ताने–बाने में कुछ–कुछ अंतर आता रहा। जब मुसलमानों के आक्रमण हुए तब यह अंतर ओर अधिक बढ़ गया। जिस समय भारत में मुस्लिम राज्य स्थापित हुआ। उस समय को इतिहास में मध्यकाल के नाम से जाना जाता है। मध्यकाल में संतो की संख्या अधिक मिलती है। इसका कारण था जब मुस्लिम साम्राज्य ने जड़ पकड़ी तब सत्ता ब्राह्मणों के हाथ से छुटकर मुल्ला–मौलवियों तथा काजी के हाथों में आ गई जो एकेश्वरवादी, मूर्तिभंजक, तथा ढ़ोग विहीन थे। मुस्लिम शासनकाल में इन संतो को न्याय की बात कहने की स्वतन्त्रता मिल गई। अधिकतर संत निम्न जाति से आए थे। ब्राह्मण अपनी सत्ता खोते जा रहे थे इसलिए सत्य तथा न्याय की बात कहने पर भी ब्राह्मण इन संतो की जीभ नहीं कटवा सकते थे। अतः ब्राह्मण

नीच जाति से आए संतों की वाणी को रोक न सके। उक्त तथ्यों की वाणी को रोक न सके। उक्त तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 अम्बेडकर ने कहा, "संत आए और संत गए किंतु अछूतों की दशा तो वैसी की वैसी ही रही।"8.

अंग्रेजी शासन अपने अंत समय में जब वह थकान की स्थिति में था, संसार के बदलते हालात एवं वैश्विक स्वतंत्रता की लहर का आंकलन करके भारत में अपने नैतिक मूल्यों की परछाई छोड़ने के लिए डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के तर्को के आधार पर नागरिकों को अधिकार देने के लिए सहमत हो गया। कुछ समाज सुधारक ऐसे हुए है जिन्होने अंग्रेजो की अच्छी नीतियों की प्रशंसा भी की है, "महाराश्ट्र में ज्योतिबा फुले नाम के एक प्रसिद्ध समाज– सुधारक हो गए है। उनका जन्म माली जाति में हुआ था। द्विजों के हाथों सामाजिक तिरस्कार के कारण वे कहा करते थे कि ब्रिटिश शासन भारत की शूद्र जातियों के लिए वरदान है। भगवान करे कि यह शासन यहां सदा बना रहे जिससे ब्राह्मणवाद फिर से उठकर हमें कुचल न सकें।"9.

डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर ने जातिवाद को खत्म करने अर्थात इसका जनाजा अपने घर से निकालने का एक मात्र उपाय सोचा कि जातिवादी शैतान की जान हिन्दू धर्म में है तो इस धर्म को ही त्याग दिया जाए। इससे जातिवाद का जनाजा कम से कम हमारे दलित समाज से तो निकल ही जाएगा। "अतः जातिवाद का जनाजा डॉ0 अम्बेडकर द्वारा दिनांक 14 अक्टूबर सन् 1956 को नागपुर दीक्षा भूमि पर से लगभग दस लाख लोगों द्वारा भगवान तथागत सम्यक् सम्बुद्ध की शरण लेकर निकाला गया। तब से अब तक करोड़ो लोगो ने अपने घरों, समुदायों तथा पंचायतों से जातिवाद का जनाजा निकाल दिया है तथा सतत प्रयत्न में है कि भारत को बौद्धमय बनाकर इस जातिवाद के शैतान का जनाजा निकाल फेंके तथा मानवमात्र में मैत्रीभाव भ्रातृभाव जगाकर देश को समाज को घर–घर को समतामय समरस बनाए।" 10.

अखण्ड भारत के पंजाब प्रान्त में लाहौर में प्रगतिशील आर्यसमाजियों ने जातिवाद के दुश्परिणामों को देखकर "जात–पात तोड़क मण्डल, की स्थापना की। इस मंडल के प्रधान भाई परमानन्द जी थे तथा महामंत्री संतराम थे। संतराम बी0 ए0 इस मंडल के सबसे सक्रिय तथा जातिवाद से पीड़ित संवेदनशील व्यक्ति थे। इस मण्डल ने जातिवाद को खत्म करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। तथा समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया।

यदि हम जाति–पाति को न माने तो इससे धर्म की कोई हानि नहीं होती। हमारे प्राचीन ग्रंथो में ऐसे वचन मिले है जिससे प्रमाणित हो जाता है कि पूर्वकाल में जाति के कोई भी रूढ़िवादी व कड़े नियम नहीं थे। उदाहरणार्थ–

"समानी प्रपा सह वे अन्नभागः
3समाने योक्त्रे सह वो युनीज्म।
सम्यञ्चो अग्नि सपर्यतारा नाभिमिवाडभितः।।
(अथर्ववेद 3–30–6)

अर्थः हे मनुष्यो, तुम लोगो की पानी पीने और भोजन करने की जगह एक ही है। समान धुरा में मैंने तुम सबको समानता से जोत दिया है। जिस प्रकार चक्र के बीच अरे जमे रहते है, उसी प्रकार तुम भी एक जगह एकत्र होकर अग्नि में हवन करो।" 11.

जात–पात का रोग हिंदुओ की ही सामाजिक बुराई नहीं बल्कि यह तो राष्ट्रीय महारोग है इस महारोग को मिटाना सरकार का परम कर्त्तव्य बनता है। इसके लिए संतराम बी0 ए0 ने निम्ननिखित सुझाव दिए है–

1. जो युवा जात–पात तोड़कर विवाह करते है उन्हें और उ न की संतान को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता दी जाए।
2. स्कूलो और कॉलेजों में जो पाठ्य पुस्तके पढ़ाई जाती है उनमें जातिवाद के विरूद्ध पाठ लगाए जाए।
3. लोगों को चाहिए कि वो वर्ण– व्यवस्था छोड़कर अपने को सिर्फ भारतीय समझे।
4. व्यक्ति के नाम के साथ शर्मा, चौधरी, वर्मा, लाला, पंडित, गुप्त आदि जातिसूचक शब्दों का प्रयोग निशिद्ध कर दिया जाना चाहिए।
5. लोगों को जागृत करने के लिए भारत सरकार तथा राज्य सरकारों को चाहिए कि जात–पात के विरूद्ध छोटी–छोटी पुस्तको को विभिन्न भाशाओं में छपवाकर जनता में बांटे।
6. जात–पात के विरूद्ध लिखी शिक्षाप्रद पुस्तकों पर सरकार द्वारा पारितोशिक दिया जाना चाहिए।
7. जन–संपर्क विभाग और आकाशवाणी के द्वारा लोगों को जाग्रत करना चाहिए।
8. स्कूल, कॉलेजो, अदालती कागजों से जाति का खाना हटा देना चाहिए। किसी से उसकी जाति लिखने को नहीं कहना चाहिए।
9. सरकार द्वारा पिछड़ी जातियों को आर्थिक व शैक्षणिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए। ताकि पिछड़ा वर्ग उपर उठ सके और उच्च वर्ग के साथ शादी व्याह आसान हो जाए।

भगवान बुद्ध जनता को अपना उपदेश देते हुए कहते है 'अपना दीपक आप बनो। और किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि दूसरे लोग इस बात को मानते है, या हमारे पूर्वज इस बात को मानते थे, या हमारे गुरू ने ऐसा कहा है या किसी धर्मग्रंथ में ऐसा लिखा है, बल्कि तर्क की कसौटी पर कसकर देखो, विचार करो, चिंतन, मनन करो यदि वह सत्य व उपयोगी लगे तो मानो अन्यथा छोड़ दो। तुम पर कोई बन्धन नहीं है।

निष्कर्षतः

संतराम बी0 ए0 का कहना है कि जात–पात को समाज में स्थिर रखते हुए हम उन्नति नहीं कर सकते। जातिवाद स्वतन्त्रता, समानता, बंधुता, लोकतंत्र का विरोधी है। यह मनुष्यों में आपसी घृणा तथा फूट का कारण बनता है। जातिवाद के रहते भारत एक संगठित राष्ट्र नहीं बन सकता। यहाँ जितनी जातियां उतने ही राष्ट्र

बन जाते है। इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक जाति के आर्थिक, सामाजिक हित दूसरों के मार्ग में बांधा बनते है, उनमें टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अपनी ही छोटी सी जाति के दायरे में विवाह करने से मनुश्य का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता। अपनी ही जाति में सुयोग्य वर न मिलने से अनमेल विवाह तथा दहेज की कुप्रथा का विकास होता है जात–पात के इस भेद ने शुद्रो में हीन भावना तथा उच्च वर्ग में घमंड तथा श्रम से घृणा का भाव भर दिया है। जातिवाद के इस कोढ़ को हमें जितना जल्दी हो सके समाज से निकाल देना चाहिए इसी में मानव का कल्याण निहित है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

1. संतराम बी0 ए0, जाति तोड़ो, पृ0 स0 –10
2. संतराम बी0 ए0, जातिवाद का जनाजा, पृ0 स0–3
3. संतराम बी0 ए0, जातिवाद का जनाजा, पृ0 स0–4
4. संतराम बी0 ए0, जातिवाद का जनाजा, पृ0 स0 – 29
5. संतराम बी0 ए0, हमारा समाज, पृ0 स0–18
6. संतराम बी0 ए0, जाति आखिर क्यों नहीं जाती? पृ0 स0–76
7. संतराम बी0 ए0, अगर किश्ती डूबी तो डूबोगे सारे, पृ0 स0–17
8. संतराम बी0 ए0, जातिवाद का जनाजा, पृ0स0–6
9. संतराम बी0 ए0, जातिवाद का जनाजा, पृ0 स0–30
10. संतराम बी0 ए0, जातिवाद का जनाजा, पृ0 स0–6
11. संतराम बी0 ए0,हिंदुत्व जो हिंदुओं को ही ले डूबा, पृ0स0–29

सुषमा
शोधार्थी पी.एच.डी.
(हिन्दी विभाग)
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
रोहतक (हरियाणा)

12

संत परम्परा और नितानंद का दर्शन

अनुराधा

सारांश

43भारतवर्ष प्राचीन समय से ही आध्यात्मिक ज्ञान की अत्यंत उर्वरा भूमि रही है। वैदिक काल से ही हमारे ऋषियों ने आत्मा और परमात्मा के रहस्यों के साथ–साथ जगत और जीव के रहस्यों का सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन वह मानव जीवन का उद्देश्य पुरूशार्थ का चतुश्टय–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष निर्धारित किया, साथ ही उस पुरूशार्थ चतुश्टय को प्राप्त करने हेतु जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। जीवन की इस सर्वश्रेश्ठ अनुशासित व्यवस्था में रहकर आत्मा–परमात्मा, जीव–जगत, जीव–ब्रह्म आदि सभी तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने पर ही व्यक्ति जीवन के परम पुरूशार्थ 'मोक्ष' का अधिकारी बन सकता है। ऐसा संदेह हमारी सांस्कृतिक विरासत है जो पग–पग पर मिलती है।

भारतवर्ष को आज भी 'विश्वगुरू' की संज्ञा प्राप्त है। हमारे देश ने राजनैतिक उत्थाान–पतन के अनेक कालखण्ड देखें है। विश्व की सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत के समृद्ध ज्ञान–विज्ञान का वह स्वर्ण युग पीछे छूट गया। नालन्दा तथा तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों को आक्रमणकारियों ने अपनी भोर से भारतीय ज्ञान–विज्ञान पर पूर्ण विराम लगा दिया किंतु अपने पूर्वजों से संस्कार रूप में प्राप्त ज्ञान की ज्वालाएं सदैव यत्र–तत्र प्रज्वलित होती रहीं। आध्यात्मिक ज्ञान की यह धारा कभी विरल तो कभी अविरल रूपप में सतत प्रवाहवान रही। यह किसी स्कूल, कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय की शिक्षा की मोहताज नहीं थी। अपितु यह धरा तो उन साधकों के जीवन का अंग थी, जिन्होनें अनुभव रूपी ज्ञान अर्जित या और जिन्होंने अपना जीवन समाज के हित समर्पित किया था। धर्म–जाति, ऊंच–नीच, शिक्षा–अशिक्षा की दीवारें इनके मार्ग की बाधक नहीं बन सकी। जीवन के क्षेत्र में साधना के इन सोपानों को छूने वाले ये साधक ही आगे चल कर 'सन्त' कहलाये।

भारतीय संत परम्परा में हजारों संत हुए हैं जो अखण्ड भारत के कौने–कौने में विद्यमान थे। किंतु हमारा अध्ययन और शोध का विशय हिंदी भाशा के संत है इसी नाते हम हिन्दी भाशी संतों की परम्परा को अपने केन्द्र में रखेंगे। हिन्दी साहित्य श्र्वमध्यकाल (भक्तिकाल) तो था ही संतों का काल, जहां एक ओर कबीरदास, रविदास, संत सुन्दरदास, बाबूदयाल जैसे निर्गुण (ज्ञानाश्रमी) संतों का स्थान मूर्धनय है, तो दूसरी तरफ तुलसी दास, अग्रदात, सूरदास नंददास जैसे संतों का स्मरण भी बड़ी श्रद्धा से किया जाता है।

सनातन की संत परम्परा प्राचीन ऋषि–मुनियों से आरम्भ होकर अद्यावधि निर्बाध रूप से चल रही है। सनातन की इस संत परम्परा के प्रवाह में अनेक राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथाा मत–मतान्तरों के विवादों की बाधाएं आती–जाती रही किंतु परम्परा का प्रवाह चलता रहा। कभी क्षीण से क्षीणतर हो गया, पुनः पुष्टि को प्राप्त कर प्रबल हो गया। ऋषि मुनियों की परम्परा के द्वारा के बाद जगतगुरू शंकराचार्य के प्रयास से मानव मात्र के कल्याण के हितार्थ यह सन्त–परम्परा अविरल गति से आगे बढ़ती रही।

समस्त अखण्ड भारत इन संतों का कार्यक्षेत्र रहा है। सम्पूर्ण भारत में वर्तमान समय में भी सनातनी डेरे, मठ, सम्प्रदाय व गदिदयाँ इसका प्रमाण है। इस देश के सभी भागों में संत साधना हो रही है तो उत्तर भारत का हृदय–प्रदेश 'हरियाणा' इस स्पर्श से कैसे वंचित रह सकता था? हरियाणा प्रदेश में अनेक संत, महात्मा यहाँ सरस्वती नदी के तटों पर आश्रयों में रहते थे। उन्हीं संत महात्माओं ने ग्रंथों की रचना की। सांख्य दर्शन के रचयिता कपिल मुनि की कर्मस्थली 'कपिलामत' आज भी कलायत नाम से विद्यमान है श्रीमद्भगवद्गीता की जन्म स्थली कुरूक्षेत्र भूमि के आस–पास उस ऋशि–संत परम्परा के तीर्थस्थान आज भी विद्यमान है।

निर्गुण संत परम्परा के शिरोमणिा संत कबीरदास के शिश्य संत गरीबदास, संत गरीबदास के शिश्य संत जैतराम के नाम तो प्रमुख हैं ही साथ संत नितानन्द, संत निश्चलदास, घीलादास, दण्डी स्वामी भैय्या राम, संत साधुराम, संत ब्रह्मानन्द सरस्वती, संत हिरदेदास, स्वामी बालकृष्णानन्द आदि प्रमुख संत हुए हैं।

संत नितानन्द हरियाणा के सन्त–कवियों की परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है। संत नितानंद हरियाणा के समाजोद्धारक, ब्रह्मनिष्ठ, प्रतिभाशाली संत है। संत नितानंद का सम्पूर्ण काव्य ज्ञानाश्रमी काव्य–धारा की मूल चेतना से सम्पृक्त है। संत नितानन्द एक चिन्तक मनस्वी संत थे। संत नितानन्द के काव्य की दार्शनिक प्रासंगिकता अन्य संतों के समान ही दिखायी पड़ती है। उनके दर्शनिक चिंतन में ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष के बारे में सूक्ष्मता से विचार व्यक्त किये गए है।

संत नितानन्द के दर्शन की प्रासंगिकता के संदर्भ में कृष्णा कुमारी लिखती हैं– ''संतों के दार्शनिक–चिंतन की प्रासंगिकता तो मानवीय समाज की अनिवार्य शर्त है। यदि उसे सुख शान्ति में रहना है। इनका दर्शन तो दैनिक जीवन में काम आने वाली व्यावहारिक रहनी है। सन्तों ने अपनी रहनी को ही वाणी रूप में प्रयुक्त किया है। इस रहनी को प्रत्येक सामान्य व्यक्ति अपने जीवन में उतार सकता है। सन्त जन तो समाज के भीतर रहने वाले और इसके हर पहलू से परिचित होते हैं।[1] इनका लक्ष्य मुख्यतः मनुष्य की भौतिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति का ही रहा है। ये चाहते थे कि समाज

से छल, कपट और दम्भ के साम्राज्य का अन्त हो और भाईचारे का राज्य स्थापित हो।

संतों की जो ब्रह्म सम्बन्धी धारणा है उसका उद्देश्य मानवतावाद का पोषण करना ही है। अपने दार्शनिक निरूपण में संतों ने समस्त जगत् की उत्पत्ति एक ब्रह्म से ही मानी है, वही ज्योति स्वरूप, अन्तर्यामी, गुणातीत गोविन्द सब प्राणियों का पिता है। फिर यह सारा संसार अलग–अलग क्यों बंट जाता है। नितानन्द जी का दर्शन सभी धर्म और सम्प्रदायों को मिथ्या बतलाकर, एक परम–पुरूष में विश्वास रखने की सलाह देता है। आज की परिस्थितियों को देखते हुए इस प्रकार के भाव अनिवार्य भी हैं। ब्रह्म कण–कण में विद्यमान है यह कहने के पीछे एक ही उद्देश्य है कि मनुष्य बाह्य धार्मिक कर्म काण्ड़ों में पड़कर अपना धन, बल और समय नष्ट न करे। आज का पढ़ा–लिखा समाज भी इन आडम्बरों में अपने जीवन को नष्ट कर रहा है। स्वामी जी का दर्शन कहता है कि अगर मनुष्य का मन साफ है तो उसे कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है।

माया को मिथ्या और ब्रह्म को सत्य करने के पीछे भी उनका यही उद्देश्य है। आधुनिक समय में तो मनुष्य को माया से दूर करना अति आवश्यक है क्योंकि समाज में जितने भी बुरे काम हो रहे हैं वे सब इस माया की ही देन हैं। धन–उपार्जन की अंधी दौड़ आज मानव को ही नष्ट कर रही है। मानव की इस अतृप्त तृष्णा को शांत करने के लिए ही स्वामी जी ने कहा है कि ब्रह्म है जो सबका पोषण करता है। उन्होंने बात आध्यात्मिकता का सहारा लेकर कही है, लेकिन कही तो समाज के हित के लिए। उनकी वाणी का सामाजिक महत्त्व पहले है और आध्यात्मिक बाद में। मनुष्य के जीवन को सुधारने के लिए ही उन्होंने अध्यात्म और धर्म का सहारा लेकर अपनी वाणियों को प्रस्तुत किया, क्योंकि वे जानते थे कि धर्म में तर्क के लिए कोई स्थान नहीं होता और देव–भय के साथ ही सही समाज का उत्थान तो किया जा सकता है। उनकी हर वाणी का व्यावहारिक महत्त्व अधिक है, इसलिए कोई कैसे कह सकता है कि आज उनके दर्शन की प्रासंगिकता नहीं है।

नितानन्द जी की जीव विषयक अवधारणा में उन्होंने जीव को अज्ञान का पुतला दिखाया है, जो केवल विषय–विष का ही पान करता है। नितानन्द जी की वाणी जीव को इस संसार के विष में डूबने से बचाती है। वे जीव को समझाते हैं कि तेरे जीवन का वास्तविक उद्देश्य विषय–विकारों में डूबना नहीं है प्रत्युत विकारों को त्याग कर ब्रह्म को प्राप्त करना है। नितानन्द जी कहते हैं ऐसे व्यक्ति खाक में मिल जाते हैं–

''पान फूल के भोगिया, खीर खांड खाहिं।
नितानन्द अदली घने, मिलैं खाक के माहिं।।[2]

आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य के मन में किसी के प्रति स्नेह और सहानुभूति नहीं है। आज व्यक्ति अपने स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए दूसरों के अनिष्ट में ही लगा रहता है। वह दूसरों का उत्कर्ष और वैभव देखकर जलता है। परिणाम स्वरूप समाज से मानवता समाप्त होती जा रही है और समाज पतनोन्मुख होता जा रहा है। इसी कोढ़ को दूर करने के लिए संत नितानन्द प्रयासरत थे। उन्होंने अपने ज्ञानोपदेश से समाज के अंधकार को दूर करने का सार्थक प्रयास किया है। उनका दर्शन लोक मंगलकारी है।

निष्कर्षः

नितानन्द जी के मोक्ष सम्बन्धी वाणियों में जो आत्मा और परमात्मा के मिलन की बात कही गई है वह कोई काल्पनिक नाटकीय दृश्य या घटना नहीं है अपितु इसके मूल में जीवन है। उनका उद्देश्य है मनुष्य की अन्तरात्मा को निर्मल बनाना, उसके मन से विषय–विकारों के मैल को साफ करना। इसके लिए स्वामी जी ने 'सुरत शब्द–योग' पद्धति का सहारा लिया है उन्होंने अपनी इन्द्रियों को काबू में कर मन को शांत करने का तरीका बताया है।[3] आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में मनुष्य के पास मानसिक शान्ति नहीं है। वह हर समय त्रास और कुंठा की अवस्था में रहता है। अपनी चिंता को कम करने के लिए कभी वह पहाड़ों पर जाता है, कभी धार्मिक स्थानों पर जाता है, लेकिन मन को नियंत्रित नहीं कर पाता। वह इस अवस्था तक नहीं पहुँच पाता जहां उसके मन को शांति का अहसास हो। स्वामी जी ने मनुष्य को इस मानसिक शांति को प्राप्त करने का मार्ग दिखाया है। इसी शांति को उन्होंने मुक्ति कहा है, मोक्ष कहा है।[4] जब जीव और पीव का मिलन होता है अर्थात् जब मनुष्य सांसारिकता को त्याग जीवन यापन करता है। इस अवस्था में संसार के सारे बैर–भाव उसके मन से हट जाते हैं और वह परम आनंद प्राप्त कर लेता है। संत नितानन्द का दर्शन मनुष्य को इसी स्थिति में ले जाता है। इसी संदर्भ में कृष्णा कुमारी लिखती हैं– ''जिस भक्त साधक की अपने–पराए की भावना समाप्त हो गई, जिसका मान–अभिमान समाप्त हो गया, जिनकी विषय–वासना समाप्त हो जाती है, जिनकी खुदी–बदी गिर जाती है, जिनका मन मर जाता है तथा देह का लगाव समाप्त हो जाए वही जीवन–मुक्त है।''[5] लेकिन इस सब का उद्देश्य मनुष्य को संसार से विमुख करना नहीं है, अपितु सुखद जीवन का मंत्र देना ही संत जी का उद्देश्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- कृष्णा कुमारी, हरियाणा की निर्गुण काव्य परम्परा और संत नितानन्द, पृ 156
- (सं.) भोलादास प्रज्ञाचक्षु, सत्य सिद्धांत प्रकाश, पृ० 111
- (सं.) भोलादास प्रज्ञाचक्षु, सत्य सिद्धांत प्रकाश, पृ. 238
- (सं.) भोलादास प्रज्ञाचक्षु, सत्य सिद्धांत प्रकाश, पृ. 69
- कृष्णा कुमारी, हरियाणा की निर्गुण काव्य परम्परा और संत नितानन्द, पृ० 151

अनुराधा
पीएच०डी० शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक
हरियाणा, भारत
डॉ० जयकरण यादव
शोध निर्देशक हिन्दी विभाग,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक,

13

अप्रतिम व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनीः जैनेन्द्र कुमार

श्रीमती सपना कुमारी

सारांश

आधुनिक हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में कहानी एक प्रमुख विधा है। आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य का प्रथम अध्याय प्रेमचंद से प्रारंभ होता है, द्वितीय अध्याय जय शंकर प्रसाद से और तृतीय अध्याय जैनेन्द्र कुमार से।भाषा,रूप विधान और विचार धारा –तीनो दृष्टियों से जैनेन्द्र कुमार प्रेमचंद और जय शंकर प्रसाद से एक विशिष्ट स्थान रखते हैं और सामूहिक दृष्टि से देखा जाए तो आज के कहानीकारों में जैनेन्द्र कुमार सर्वोश्रेष्ठ मालूम पड़ेंगे।

जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 जनवरी 1905 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिलांतर्गत कौड़ियागंज कस्बे में हुआ था और निधन 24.12. 1988 को दिल्ली में हुआ।इनका बचपन का नाम आनंदी लाल था और इनका जन्म एक साधारण जैन परिवार में हुआ था।जैनेन्द्र कुमार का संपूर्ण जीवन संघर्षों से परिपूर्ण था। प्रारंभिक शिक्षा गांव के पाठशाला में हुई और उच्च शिक्षा के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी गये लेकिन कांग्रेस के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के उद्देश्य से वे दो वर्षों में ही काशी छोड़कर दिल्ली आ गये।वे लाला लाजपत राय के राजनीतिक विचारों से काफी प्रभावित थे। अतः कुछ दिनों तक उनके संपर्क में रहे। जीवन संघर्षों के कारण उन्हें भी शीघ्र ही छोड़ दिया। आर्थिक संघर्ष के साथ साथ अस्तित्व की पहचान का संघर्ष भी चलता रहा। जैनेन्द्र कुमार ने अपनी आत्मकथा में कहा है कि ृमैं दुनिया में आ पड़ा लेकिन दुनिया से मेरी किसी तरह की पहचान न थी। समुद्र की लहरों पर तिनका तैरता है, क्योंकि हल्का होता है। मुझमें भी कहीं इसी तरह का वजन नहीं था और वर्षों लहरों पर मैं इधर उधर उतराया किया। 1

संघर्ष के समय वे व्यापार से भी जुड़े, फिर राजनीतिक पत्रों में संवादाता के रूप में कार्य किया। सरकार का कोप भाजन बनने पर गिरफ्तार हुए और जेल गये।घोर आर्थिक संकटों से गुजरे। मानसिक यातना के क्षणों में आत्महत्या का विचार भी कौंधता; ऐसे बेबसी के क्षणों में उन्होंने लेखन की ओर रूख किया और लेखन ने उन्हें जिलाया।

जैनेन्द्र कुमार बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी साहित्यकार हैं। उन्होंने प्रायः साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई, परंतु मूलतः वे कथाकार हैं।उनकी प्रमुख रचनाएं निम्नांकित हैंः–

1 उपन्यासः–परख, तपोभूमि,सुनीता, त्याग–पत्र,कल्याणी, सुखदा,विवर्त,जयवर्धन, मुक्ति– बोध,अनंतर,अनाम स्वामी।

2 कहानी संकलनरू–फांसी, वातायन,नीलम देश की राज कन्या,एक रात,दो चिड़ियां, पाजेब,जय संधि, जैनेन्द्र की कहानियां भाग 1 –10, जैनेन्द्र की प्रतिनिधि कहानियां।

3 निबंध और आलोचनारू–जैनेन्द्र के विचार, प्रस्तुत प्रश्न,जड़ की बात,पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेय,मंथन,सोच– विचार,काम प्रेम और परिवार, राष्ट्र और राज्य, कहानीरूअनुभव और शिल्प, परिप्रेक्ष्य,इतस्ततरू, प्रेमचंद एक कृती व्यक्तित्व,काल पुरुष गांधी, सूक्ति संचयन,समय और हम,समय समस्या और सिद्धांत,वृत विहार,प्रश्न और प्रश्न, बांग्लादेश एवं यक्ष प्रश्न।

4 यात्रा संस्मरणरू–ये और वे,तब और अब, काश्मीर की वह यात्रा, गांधी कुछ स्मृतियां।

मुक्ति बोध उपन्यास के लिए 1965 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ तथा 1972 में भारत सरकार ने जैनेन्द्र कुमार को पद्मभूषण से अलंकृत किया।कथा के क्षेत्र में जैनेन्द्र कुमार की महत्वपूर्ण देन मनोविज्ञान का प्रवेश है।डा कुमुद शर्मा ने अपनी पुस्तक हिंदी के निर्माता में जैनेन्द्र कुमार के संदर्भ में लिखा है किरू–ृउन्होंने मनोविज्ञान के चित्रण की प्रवृत्ति का सूत्रपात कर उपन्यासों की संरचना को नवीन रूप दिया। उन्होंने अपने कथा साहित्य को न तो लंबे चौड़े कथानकों के जाल में उलझाया,न उसे समकालीन यथार्थ की कार्बन कापी बनाया और न ही उसके जरिये समाज सुधार का अभियान चलाने का बीड़ा उठाया।वे तो इस क्षेत्र में नये वैयक्तिक अध्ययन के अग्रदूत बनकर उभरे।2

जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता है –स्त्री के अस्तित्व की पहचान का आग्रह। डा कुमुद शर्मा ने लिखा है कि रू– ृउन्होंने नारी मन की तहों को खोलकर रख दिया। आधुनिक आनुभूतिक संवेदना एवं मानवीय संस्कारों को नवीनीकृत किया।स्त्री पुरुष संबंधों तथा नैतिक मूल्यों में पराम्परागत भाव के स्थान पर नवीन संवेदना का सृजन हुआ। जैनेन्द्र कुमार की कथा चेतना ने भी प्रथानुगामी अनुभव से टकराने के कारण प्रण्य रोमानीयत आदि प्रसंगों में संकोच का अनुभव नहीं किया। प्रेम को उन्होंने धर्म माना।शरत् चंद्र के उपन्यासों में प्रेम की प्रधानता देख उन्हें धर्म ग्रंथ की संज्ञा दी। हिंदी के शरत् चंद्र कहे जाने वाले जैनेन्द्र ने भी प्रेम को मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति मानकर प्रासंगिकता के साथ अभिव्यक्त किया। सामायिक युग के तनावों के बीच स्त्री के हृदय के संघर्ष को उसके संवेगों को दर्शाया।–3

हिंदी कथा सम्राट प्रेमचंद कहे जाते हैं, परंतु मनोवैज्ञानिक कथा सम्राट तो जैनेन्द्र ही हैं। आचार्य केशरी कुमार ने लिखा है किः– प्रेमचंद समाज के कथाकार थे, जैनेन्द्र व्यक्ति के चित्रकार हैं। प्रेमचंद में चेतना प्रवाह है, जैनेन्द्र में आत्म चेतना है, प्रेमचंद समाज के माध्यम से व्यक्ति को देखते हैं, जैनेन्द्र व्यक्ति के माध्यम से समाज को देखते हैं। व्यक्ति को केंद्र मानकर समुदाय का अध्ययन करने वाली इस दृष्टि में हिंदी कथा साहित्य में एक नयी परंपरा को जन्म दिया। प्रेम चंद की तरह जैनेन्द्र भी एक स्कूल के विधाता हैं,पर जहां प्रेमचंद और प्रसाद के

मार्ग पर चलने वाले अनेक हुए, वहां जैनेन्द्र अपनी डगर पर आज भी अकेले हैं।ष4

सुनीता की प्रस्तावना में जैनेन्द्र लिखा है कि रू–ष कहानी कहना हमारा उद्देश्य नहीं है।इस विश्व के छोटे से छोटे खंड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य का दर्शन पा सकते हैं। ष–5

जैनेन्द्र ने सृजनात्मक साहित्य को चिंतन की अभिव्यक्ति का साधन बनाया।अपने भीतर के दार्शनिक व्यक्तित्व को आकार दिया। जीवन के अनुभवों में सृजित प्रेम विवाह, स्त्री तथा धर्म संबंधी निश्चित अवधारणाओं को वे आक्रामक रूख अपनाए बिना, आतंकित किये बिना और बिना किसी दुराग्रह के अपने कथा सूत्रों में पिरोते रहे। दार्शनिक चिंतन में वैचारिक संघर्ष भी साथ साथ चलता रहा। प्रेम, ब्रह्म चर्य, विवाह,काम विज्ञान पर अपनी टिप्पणियां दर्ज करते करते वे रहस्य वाद की तरफ भी उन्मुख हुए।

निष्कर्षः

उन्होंने हिंदी निबंधों को नया कलेवर दिया। साहित्य, संस्कृति और दर्शनादि पर लिखे उनके विचारात्मक निबंधों में उनका सजग चिंतक रूप सामने आया है।उनके चिंतन की विशिष्टता है कि–वह भारतीयता से संबद्ध है।वे भारतीय परंपरा के व्याख्याता बनकर हमारे सामने आए। गांधी वादी विचार धारा से प्रेरित जैनेन्द्र ने गांधी जी की तरह सत्य के साथ प्रयोग किये।अखंड और अद्वैत सत्य को ही साहित्य का परम श्रेय माना और उसका व्यावहारिक रूप समस्त चराचर जगत के प्रति प्रेम अनुकंपा और अहिंसा माना।

जैनेन्द्र कुमार की भाषा अत्यंत सरल और सहज है।वे भाषा के घरेलू पथ के हिमायती हैं।उनकी दृष्टि में गद्य को पाठशाला के अनुशासन से घर के घरेलूपन की ओर आना चाहिए।वे भाषा की जीवंत शक्ति के कायल थे।उनकी अवधारणा है कि वह भाषा दरिद्र है–जो जिंदगी का साथ देने के बजाय उस पर सवारी कसती हो। निष्कर्षतरू हिंदी के मूर्धन्य विद्वान डा दीनानाथ सिंह ने कहानी पर लिखी अपनी आलोचनात्मक पुस्तक हिन्दी कहानी के सौ वर्ष में लिखा है कि ष जैनेन्द्र कुमार हिंदी के सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं। ष6 उपर्युक्त विश्लेषण एवं विवेचन के आधार पर मेरी अवधारणा है कि जैनेन्द्र कुमार हिंदी साहित्य में अप्रतिम व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी मनोवैज्ञानिक साहित्यकार हैं।

संदर्भ ग्रंथः–

1. जैनेन्द्र कुमार –कहानी अनुभव और शिल्प–पूर्वोदय प्रकाशन नई दिल्ली 1967
2 डा कुमुद शर्मा,–हिंदी के निर्माता –भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ,नई दिल्ली 1990
3 उपरिवत
4 आचार्य केशरी कुमार संपादक–प्रतिनिधि कहानियां –मोती लाल बनारसी दास,पटना 1960
5 जैनेन्द्र कुमार –सुनीता, पूर्वोदय प्रकाशन,न ई दिल्ली 1960
6. डॉ0 दीनानाथ सिंह –हिंदी कहानी के सौ वर्ष–मीनाक्षी प्रकाशन नई दिल्ली 2009

श्रीमती सपना कुमारी
एम ए हिंदी (नेट उत्तीर्ण)
शोध छात्रा, हिंदी विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची
चलभाषः–7667564177

14

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का रचनात्मक औदात्य

डॉ0 सुरेश साहु

सारांश

अपने रचनात्मक औदात्य एवम् वैशिष्ट्य के कारण जिन कवियों ने हिंदी साहित्याकाश में अपना विशिष्ट स्थान बनाया हैं,उनमें आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री प्रथम पांक्तेय हैं। आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री ऐसे ही विलक्षण वैदुष्य और पारदर्शी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं,जिन्होंने युग जीवन के संपूर्ण विस्तार को गीतों के सुकुमार पदों से मापने का दुस्साहस किया और इसमें बहुत दूर तक सफलता पायी है।

किसी सरस्वती पुत्र की सुदीर्घ सारस्वत साधना का आकलन करना आसान कार्य नहीं है, विशेषतरू उस सरस्वती पुत्र की साधना का आकलन करना तो और भी कठिन कार्य है, जिसका व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी हो, जिसके चिंतन का आकाश विस्तृत एवं व्यापक हो और जो एक साथ कई भाषाओं और विधाओं में निष्णात हो, ऐसे वाणी साधक का बहिरंग जितना व्यापक और विस्तृत होता है ,अंतरंग उससे कहीं अधिक गहरा। आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री ऐसे ही वाणी के साधक और सरस्वती के वरद् पुत्र हैं।

कविता करना कठिन कार्य है और कविता में स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति तो और भी कठिन है। महर्षि वेद व्यास प्रणीत अग्नि पुराण के काव्य शास्त्रीय भाग में लिखा हुआ है कि रू–

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्भारू।
कवित्वं तत्र दुर्लभं,शक्तिरूतत्र सुदुर्भारू।

अर्थात इस संसार में मनुष्य योनि में जन्म लेना कठिन है विद्या की प्राप्ति उससे कठिन है ,कविता करना उससे कठिनतर और कविता में स्वाभाविक अभिव्यक्ति की उपस्थिति एवं शक्ति तो कठिनतम है ;यही कारण है कि हिंदी के मूर्धन्य समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता को मनुष्यता की उच्च भूमि स्वीकार किया है। कविता को परिभाषित करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि– ष जिस प्रकार आत्मा की मुक्ता अवस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्ता अवस्था रस दशा कहलाती है ,हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को भाव योग कहते हैं और कर्मयोग एवं ज्ञान योग के समक्ष मानते हैं।

आचार्य शुक्ल की यह भी स्थापना है कि कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भाव भूमि पर ले जाती है ;जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है ।इस भूमि पर पहुंचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता ,वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किए रहता है ।उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। कविवर आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री का रचना संसार इसका ज्वलंत उदाहरण है।

आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री का जन्म 18 जनवरी 1916 ई. को गया जिले के सुरहरि के तट पर अवस्थित मैगरा गांव में एक सामान्यवित्त ब्राह्मण परिवार में हुआ था ।शास्त्री जी के पिता पंडित रामानुग्रह शर्मा संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। शास्त्री जी ने प्रारंभिक शिक्षा गांव के पाठशाला में अपने पिता के श्री चरणों में बैठकर पाई, फिर 1931 में वे हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी भेजे गए। वहां से उन्होंने शास्त्री, शास्त्राचार्य और वेदांताचार्य की परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में पास कीं। इस बीच बिहार उड़ीसा की साहित्याचार्य और ढाका (संप्रति बंगला देश) की साहित्य रत्न परीक्षाओं में भी उनका स्थान सर्वोपरि रहा।

शिक्षा समाप्त करते न करते आजीविका की समस्या सामने आई, इसीलिए शास्त्री जी ने कुछ काल तक लाहौर के एक महा विद्यालय में अध्यापन कार्य किया, फिर 1938 में रायगढ़ मध्य प्रदेश में राज्य कवि होकर चले आए। 1940 से 44 तक उन्होंने मुजफ्फरपुर में ट्यूशन आदि कर जीवन निर्वाह किया ।तदुपरांत उनकी नियुक्ति संस्कृत महाविद्यालय में हो गई। 3 जनवरी 1953 ई. को शास्त्री जी राम दयालु सिंह कॉलेज मुजफ्फरपुर में संस्कृत के प्राध्यापक नियुक्त हुए, जहां से उन्होंने 1978 ई. के प्रारंभ में अवकाश ग्रहण किया। तब से मुजफ्फर को ही मृत्यु –पर्यंत (7.4.2011) गौरवान्वित करते हुए एक स्वतंत्र साहित्यसेवी के रूप में जीवन यापन करते रहे। 1988 में बिहार सरकार के राजभाषा विभाग ने उन्हें 100000 के राजेंद्र प्रसाद पुरस्कार से सम्मानित किया। शास्त्री जी का आवास निराला निकेतन गायों, कुत्तों और बिल्लियों की एक लघु प्रदर्शनी है ,जहां इन पशुओं से महाकवि की आत्मीयता देखते ही बनती है।

उनका रचना संसार निम्नवत् हैरू–

(क)काव्य – 1रूप–अरूप,2 तीर– तरंग 3 शिप्रा 4 मेघ –गीत 5 अवंतिका 6 संग 7उत्पलदल 8 आधुनिक कवि (भाग 14) 9, बाल –लता 10 धूप तरी 11 श्यामा –संगीत 12 सुनें कौन नगमा 13 राधा महाकाव्य सात खंडों में,(प्रणव पर्व, पुरुषार्थ पर्व, दर्शन पर्व, विनोद पर्व, निर्वेद पर्व ,प्रभास पर्व, एवं उत्सर्ग पर्व.) 14 उत्तम पुरुष 101 कविताओं का चयन.

(ख) गीति नाट्य – 14 पाषाणी 15 तमसा 16 इरावती

(ग) उपन्यास 17 एक किरणरू सौ झाइयां 18 दो तिनको का घोंसला 19 कालिदास।

(घ) कहनीरू 20 कानन 21 अपर्णा 22 लीला –कमल 23 बांसों का झुरमुट।

(च)कथा काव्य 24 गाथा

(छ) नाटकरू25 अशोक –वन 26 सत्य काम,27 जिंदगी 28 आदमी 29 प्रतिध्वनि 30 देवी 31नील –झील

(ज) ललित निबंधरू32 मन की बात 33 जो न बिक सकी

(झ) संस्मरण –आत्मकथारू34 स्मृति के वातायन,35 निराला के पत्र 36 नाट्य सम्राट पृथ्वीराज कपूर 37 हंस बलाका 38 कर्मक्षेत्रेरू मरूक्षेत्रे, 39 एक असाहित्यिक की डायरी 40 अष्टपदी।

(ट)समीक्षारू 41साहित्य– दर्शन 42 चिंता–धारा 43 प्राच्य–साहित्य 44 त्रयी 45 महाकवि निराला (संपादित) 46 मानस चिंतन (संपादित)

(ठ) पत्रिका संपादनरूराका,बेला

शास्त्री जी की संस्कृत रचना काकली हो या हिन्दी की कृतियाँ रूप–अरूप, तीर–तरंग, मेघगीत या उत्पल दल,सब विशुद्ध गीतिकाव्या त्मक हैं।यहाँ तक कि उनके प्रबंधात्मक महाकाव्य राधा में भी गीति तत्व की प्रधानता है।गीतिकाव्य आत्मानुभूति –व्यंजक हुआ करता है।शास्त्री जी ने लिखा है कि रू– श्कविता मेरे जीने की शर्त सी रही है।क्या क्या न पढ़ा,पर वह फूटी मेरी जिंदगी से।होठों पर जो बोल थिरके हैं,वह मेरे सरल गहन मन के स्याह–सफेद सायों से होकर ही आलोक –लोक की तलाश में बाहर घुमड़े घहरे हैं।श्(आधुनिक कवि 14 पृ.15)

इसीलिए दर्शन की जटिलतम गुत्थियां भी उनके गीतों में बड़े सहज–सुकुमार ढंग से ढली हैं।उदाहरणार्थ आत्मा और परमात्मा की तात्विक एकता अद्वैत दर्शन की आधार भूमि है।आत्मा तत्वतः परमात्मा से अभिन्न है,पर माया के पंचकुंचको के कारण बद्ध और सीमित।दोनों की इस मौलिक अभिन्नता और रूपगत भिन्नता का आख्यान कबीर से लेकर निराला और महादेवी वर्मा तक अनेक कवियों ने किया है।शास्त्री जी ने भी इस भेदाभेद का निरूपण एकाधिक गीतों में किया है।पर उनकी अभिव्यक्ति कितनी सहज,स्वच्छ और मार्मिक हैः

मैं न गगन हूँ, मैं न मही हूँ!
किसी नाम से मुझे पुकारो
उसी नाम का बना वही हूँ।
यों हम दोनों हिले मिले हैं,
एक डाल पर खुले खिले हैं,
नाम मात्र का अंतर फिर भी,
तुम हो हां,मैं हाय नहीं हूँ।

शास्त्री जी छायावादी परंपरा के कवि रहे हैं ,इसलिए सौंदर्य और कल्पना इनके काव्य का उपजीव है। इनके गीतों में प्राणों की सुरभिमय कोमल अभिव्यंजना है।कल्पना के इंद्रजाल की महत्ता इनके गीतों में वर्तमान है और है उसके स्वर्ण निकुंज की मादकता जिसके आनंद रस में प्राणों को अपूर्व तन्मयता एवं सरसता प्राप्त होती है। सौंदर्य के अप्रतिम साधक होने के कारण इनके गीतों में लघुत्तर घटनाएं भी सरस संगीत की माधुरी से आप्लावित हो उठती हैं। वसंत की स्वप्निल चांदनी की रंगीनी एवं कुसुम सुगंध इनके गीतों में दीख पड़ती है।

शास्त्री जी की कविताओं में दार्शनिक अभिव्यक्ति भी अधिक हुई है ।उनकी यह दार्शनिकता कहीं कहीं आत्मा की ब्रह्म के प्रति चिर रहस्यमय जिज्ञासा के रूप में प्रकट हुई है और कहीं उसकी अनुरागमय झलक के रूप में। उनकी आध्यात्मिक कविताओं में प्राणों का मरमर संगीत है ।श्बांसुरीश उनकी आध्यात्मिक चेतना एवं भावना को प्रकट करती है। आत्मा ब्रह्म से बिछड़ कर जगत में बंद है लेकिन ब्रह्म का स्वर संकेत उसे प्राप्त होता है बांसुरी के माध्यम से। यह स्वर तो चिर परिचित है। इसलिए वह सोचता हैरू

'जनम –जनम की पहचानी यह तान कहां से आई?
किसने बांसुरी बजाई?

अनुरागमयी व्यंजना के द्वारा शास्त्री जी ने आत्मा की उत्सुकता का वर्णन सजीव ढंग से किया हैरू–

अंग अंग फूले कदंब सम,सांस झकोरे झूले।
सूखी आंखों में यमुना की, लोल लहर लहरायी।।
किसने बांसुरी बजाई?

ऐसा कहा जाता है कि शास्त्री जी की रचनाओं में जेठ की दुपहरिया का तीखा ताप नहीं वरन् शरद् चांदनी का अलस श्रृंगार है ।यह सही है कि छायावादी होने के कारण सौंदर्य चेतना की ओर ही उनका ध्यान विशेष रूप से रहा, लेकिन शास्त्री जी मानव मन से दूर रहने वाले कलाकार नहीं है। छायावादी काव्य वस्तु की तरह उनका वस्तु चयन निरर्थक एवं निष्प्राण नहीं है, बल्कि उसमें जीवन का ठोस धरातल भी है। वह भले ही क्रांति की ललकार न करे लेकिन मानव का स्पंदन पूर्ण हृदय तो उनकी कविता में झलकता ही है।

मेघगीत शीर्षक कविता में शास्त्री जी ने जीवन की वर्तमान विरूपता का चित्र बड़े सजक कलाकार के रूप में प्रस्तुत किया है। उच्च वर्गों द्वारा जिस प्रकार शोषण होता है उसकी एक झांकी देखिएः–

ऊपर ऊपर पी जाते हैं, जो पीने वाले हैं।
कहते ऐसे ही जीते हैं, जो जीने वाले हैं।।

इस नृशंसता, क्रूरता एवं शोषण से कवि की शिराएं तन जाती हैं और वह बादल को उपालंभ देते हुए कहता हैः–

इस नृशंस छीना झपटी पर, फट कपटी पर,उन्मद बादल!
मुसलधार शतधार नहीं बरसाता है?
तो सागर पर उमड़ घुमड़ कर गरज तरज कर,
व्यर्थ गड़ गड़गाने क्या आता है!

इसी क्रम में बादल को दिया गया यह उलाहना भी व्यंग्यात्मक और सार्थक हैः

जनता धरती पर बैठी है,नभ में मंच खड़ा है,
जो जितनी है दूर मही से,उतना वही बड़ा है।
यही विपर्यय यही व्यतिक्रम, मानदंड नव मानी बादल,
तू भी ऊपर से ही सैन चलाता है।

मेघ को उसकी धरती माता बुला रही है ;क्योंकि आज सूखे मुरझाए तरूओं में नई जिंदगी भरनी है, क्षेत्र क्षेत्र को आप्लावित करना है, भूतल को वृंदा विपिन बनाना है। शास्त्री जी का मानना है कि जीना भी एक कला है और उसे जाने बिना कोई मनुष्य नहीं बन सकताः–

जीना भी एक कला है!
इसे बिना जाने ही मानव बनने कौन चला है?
आंख मूंद तोड़ें गुलाब, कुछ चुभे न क्या नादानी?
फिसलें नहीं, चलें चट्टानों पर, इतनी मनमानी!
अजि!शिखर पर जो चढ़ना है, तो कुछ संकट झेलो।
चुभने दो दो चार खार,जी भर गुलाब फिर ले लो।
तनिक रुको क्यों हों हताश, दुनिया क्या भला बला है!
जीना भी एक कला है!

शास्त्री जी की काव्य साधना का शीर्ष फल उनका राधा महाकाव्य है।राधा का चरित्र उदात्त एवम् एकांत गीतिकाव्यात्मक है,जिसके संबंध में स्वयं कवि ने लिखा हैः

राधिका कोई न नारी एक,
भावना वह हृदयहारी एक,
अस्थिमज्जा की नहीं वह देह,
स्वर्ण वर्ण जो बनी घनश्याम,
हाय! राधा है उसी का नाम।

किंतु यह निश्छल नेह की प्रतिभा भी स्वीकार करती हैरू
साधना साध से प्रकट कड़ी होती है,
पर क्रिया वचन से सदा बड़ी होती है।

फिर हम कैसे कहें कि शास्त्री जी का गीतिकाव्य जीवन की गतिशीलता और ऊष्मा से वंचित है?

शास्त्री जी के संपूर्ण कृतित्व में श्गाथाश नामक कथा काव्य संग्रह का विशिष्ट स्थान है,कुछ वैसा ही जैसा निराला के कृतित्व में कुकुरमुत्ता का। दोनों का रचना काल आस पास ही है।कुकुरमुत्ता की रचना 1941 में हुई थी और गाथा की 1943 में।इसकी सात कथाओं में कवि ने युगीन विसंगति और वैषम्य पर विभिन्न कोणों से करारी चोट की है।गाथा की भूमिका में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने ठीक ही लिखा हैरूश्गाथा के काव्यचित्रों में अभिव्यंजना वाद के परवर्ती(पोस्ट इंप्रेशनिस्ट)वान गांग के चित्रों की सी यथार्थता और मनुष्यता की प्रेरणा है।गाथा का कवि श्दि प्रिजन यार्डश्के चित्रकार की तरह कहता हैरू–श्मैं मानवता को चित्रित करना चाहता हूँ, मानवता को और फिर फिर मानवता को ही।श्गाथा की हरिहर क्षेत्र का मेला एक अनूठी और अविस्मरणीय रचना है।

यों तो शास्त्री जी का मस्तिष्क वेदांत और व्याकरण के नीरस सूत्रों एवम् शास्त्रों के गुरूभार से बोझिल है, फिर भी उनका हृदय कविता के रस से आप्लावित है ,इसलिए वे हिंदी काव्य गगन में एक सरस सुकुमार कवि के साथ–साथ विद्वान कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। एक ओर उन्होंने काकली(संस्कृत गीतिकाव्य) को प्रस्तुत कर जयदेव की परंपरा को जीवित रखा, तो दूसरी ओर तीर–तरंग,रूप–अरूप के द्वारा निराला की परंपरा को पुनर्जीवित किया। यही कारण है कि उनकी बहुमुखी प्रतिभा आधुनिक हिंदी को बराबर चौकाती सी रहती है। वे कोमल भावनाओं के सफल कवि हैं और गीत रचना उनकी प्रकृति के बिल्कुल निकट एवं अनुकूल है। प्रो. केसरी कुमार ने शिप्रा की भूमिका में अक्षरशरू सत्य लिखा है कि ष काकली, रूप–अरूप, तीर –तरंग और शिप्रा आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री के विकास स्तंभ हैं। काकली उनका स्वर संधान है, रूप –अरूप मूर्च्छना और तीर –तरंग उनके बसंत पतझड़ के करुण मधुर गायन का सरूर भरा सम और शिप्रा ?यह सबसे अलग है। यहां आगत की आरती उतारी गई है, जिसकी स्फटिक ज्योति में अनागत का स्वरूप ही बिम्बित हो उठा है। यहां कवि की आकाश विहंगिनी मूर्त को अमूर्त से मिलाने,क्षणिक को शाश्वत करने भूमि पर उतर आई है। जीवन के सानिध्य के अतिरिक्त भाषा का प्रौढ़ घरेलूपन, बंधन का संश्लेषण तथा इंगित की स्पष्टता इस पुस्तक की निजी विशेषताएं हैं।(शिप्रा की भूमिका से)

निष्कर्षः

शास्त्री जी की संस्कृत कविताओं का प्रथम संग्रह काकली 1935 में प्रकाशित हुआ था,जिसे देखकर महाकवि निराला ने लिखा था रू–तुम्हारी काकली नकल नहीं, तुम्हारे जातीय सत्य से पूर्ण,आकाश और पृथ्वी को मिला रही है।इसमें अपने तारुण्य की नई पहचान पाकर चकित हो गया।श

शास्त्री जी का हिंदी की ओर झुकाव अंशतः निराला जी की प्रेरणा से ही हुआ था। शास्त्री जी के साहित्यिक गुरू निराला जी ही थे।

स्वनामधन्य युगांतकारी कवि निराला ने षास्त्री जी के संदर्भ में लिखा है कि– ष वे शास्त्राचार्य, हिंदी के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और कहानी लेखक हैं। अपनी प्रतिभा, लेखन कौशल और दिव्य व्यवहार से उन्होंने अनेक बार मुझ पर अपनी गहरी छाप डाली है। ष

संदर्भ–ग्रंथः–

1. जानकी वल्लभ शास्त्री की साहित्य साधनारूसं.मारुति नंदन पाठक
2. काकली,राधा,रूप–अरूप,शिप्रा मेघगीत,गाथा तथा अन्य कृतियाँः जानकी वल्लभ शास्त्री जी
3. आधुनिक कवि 14 आचार्य शास्त्री
4. जानकी वल्लभ शास्त्री की प्रतिनिधि कविताएंरूडा सज्जन कुमार अरुण
5. अग्नि पुराणःमहर्षि वेद व्यास
6. चिंता–मणिःआचार्य राम चंद्र शुक्ल
7. सुकवि समीक्षाःआनंद नारायण शर्मा

डॉ0 सुरेश साहु

सहायक प्राध्यापक,हिन्दी विभाग

जनता शिवरात्रि कालेज, डाल्टेनगंज (मेदिनीनगर)पलामू

चलभाषः6206157576

द्रुत डाक: Sureshsahu169@gmail-com

15

सामाजिक–सांस्कृतिक एकता में हिंदी का अवदान

डॉ0 रविता पाठक

सारांश

भारत जननी एक हृदय हो,
एक राष्ट्र भाषा हिंदी में,
कोटि कोटि जनता की जय हो,
भारत जननी एक हृदय हो।
स्नेह सिक्त मानस की वाणी,
गूंजे गिरा यही कल्याणी.
चिर उदार भारत की संस्कृति,
सदा अभय हो,सदा अजय हो,
भारत जननी एक हृदय हो।

पं. रामेश्वर दयाल दूबे ने अपनी कविता की उपर्युक्त पंक्तियों में जिस भाषा की जय और भारत जननी के एक हृदय होने की बात कही है– वह भारत की भारती हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी है।भारत जैसे बहुभाषा–भाषी देश में सांस्कृतिक और वैचारिक विभिन्नताओं के बीच अनेकता में एकता को मूर्त करनेवाली शक्ति के रूप में हिन्दी की भूमिका विशिष्ट रही है।विभिन्न जातियों, संप्रदायों और भाषा परिवारों के लोग इस देश में सांस्कृतिक स्तर पर एकीकृत हैं और सब मिलकर भारत राष्ट्र की कल्पना को साकार करते हैं।भारत में विभिन्न स्रोतों से आए सांस्कृतिक सूत्र इसी कारण बिखराव ग्रस्त नहीं हो सके कि इस बहुभाषी राष्ट्र को ,समूचे देश की जनता को सामासिक और सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बांधने वाली कड़ी के रूप में हिंदी विद्यमान है।महाकवि डा उमा शंकर चतुर्वेदी श्कंचनश ने अपने शहिंदीश खण्ड काव्य में इसी एकता की ओर संकेत करते हुए लिखा है किः –

संस्कृति को इक हार के रूप में,
जोड़ सके वो कड़ी है ये हिंदी।
लेके सहारा चले अन्हरा उस
अंधे के हाथ छड़ी है ये हिंदी।
जीवन दान मिले जिससे,
विष मार सके वो जड़ी है ये हिंदी।
प्यार से भारत माता कहें,
कि सुनो हमसे भी बड़ी है ये हिंदी।

कन्या कुमारी में अरब सागर और बंगाल की खाड़ी की जो एकता है,प्रयाग राज इलाहाबाद में जो गंगा, यमुना और सरस्वती का जो संगम है,उसी के समानांतर हिंदी में इस विशाल देश की सांस्कृतिक परंपराओं, वैचारिक दिशाओं, भाषिक विविधताओं और भावात्मक परिकल्पनाओं को एकीकृत करने की विलक्षण सामाजिकता है।हिंदी भाषा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने अनगिनत चिंतन धाराओं को अभिव्यक्ति दी है,सभी संप्रदायों को वाणी दी है और विभिन्न भाषाओं की जातीय विशेषताओं के बीच अपनी विराट् सामाजिक शक्ति का परिचय दिया है।यह सामाजिकता किसी भी जीवंत भाषा की पहली पहचान होती है।इसी सामाजिकता के कारण आज हिन्दी विश्व मंच पर प्रतिष्ठित है। भारत के कोने कोने में और भारत के मानचित्र से बाहर मारीशस, सूरीनाम, फीजी, गुआना, ट्रीनीडाड,नेपाल, म्यांमार आदि देशों में हिंदी बोलने समझने और लिखने वाले लोग उपलब्ध हैं।इन सबने मिलकर हिंदी की साहित्य–संपदा का विस्तार किया है,लेकिन इसका केंद्रीय कारण यही है कि हिंदी में अद्भुत सामासिक क्षमता है।

आप कन्याकुमारी के समुद्र तट पर खड़े हों,तो एक विचित्र दृश्य नजर आएगा। हिंद महासागर की जलराशि, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के पानी को अपने में समेटती दिखाई देगी।दूर दूर से आने वाली विभिन्न अंतर्धाराएँ जिस तरह महासमुद्र में पहुंच कर एक हो जाती हैं, उसी तरह भारत जैसे विशाल देश में फैली विभिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को हिंदी ने एकसूत्र में आबद्ध किया है।इसंस्कृति के चार अध्यायश में राष्ट्र कवि दिनकर ने भारत की जिस सामासिक संस्कृति की चर्चा की है,उसका निखरा हुआ रूप हिंदी में लक्षित होता है। प्राचीन आर्य भाषाओं की परंपरा से लेकर नई भारतीय भाषाओं तक की सारी उपलब्धियों को समेटने का कार्य हिंदी ने किया है।

सारे संसार से आगत ,भाषाओं और संस्कृतियों की श्रेष्ठ उपलब्धियों से भारतीय मूल के लोग जहाँ कहीं भी गए हैं,वहां की परंपराओं का समाहार करनेवाली यह भाषा समन्वय का आदर्श उदाहरण है।वास्तव में हिंदी की प्रकृति सामासिक समन्वय के लिए निरंतर अनुकूल रही है और इसी कारण वह किसी सीमित क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा नहीं रह गई है।वह इस विशाल देश के किसी राज्य, जाति या संप्रदाय विशेष की भाषा न होकर संपूर्ण भारतवर्ष की भाषा है,सबकी भाषा है;इसीलिए कहा जाता है किः–

कोटि कोटि कंठों की भाषा,
जन–मन की मुखरित अभिलाषा।
हिंदी है पहचान हमारी,
हिंदी हम सबकी अभिलाषा।

अनेकता के बीच एकता के साम्राज्य को स्थापित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देनेवाली यह भाषा स्वाधीनता आंदोलन के दिनों से लेकर आज तक इस देश के विभिन्न भाषा भाषियों के बीच एक सशक्त कड़ी है।यह किसी एक धर्म द्वारा स्वीकृत भाषा नहीं

है,बल्कि इसने सभी प्रचलित धर्मों को वाणी दी है।दर्शन और विचार धारा की किसी एक लीक पर चलना भी हिन्दी का स्वभाव नहीं है,बल्कि उसने मनुष्य की सुदीर्घ चिंतन परंपरा की सारी विचार दिशाओं को अपने भीतर समेटा है।समन्वय की इस गंगा में न जाने कितनी देशी –विदेशी भाषाओं की शब्द संपदा का समाहार हुआ है।पिछली अनेक शताब्दियों में विभिन्न संप्रदायों और देशों के भाषा साहित्य के संपर्क से हिंदी ने इतना अधिक ग्रहण किया है कि अब उन शब्दों के मूल स्रोतों को खोजना भी कठिन है।किसी को विश्वास भी नही होगा कि अंचार मूलतः पुर्तगीज शब्द है और रिक्शा चीनी भाषा से आया है।फ्रेंच से रेस्तरां, तुर्की से बीबी,फारसी से तमाशा अरबी से कचहरीऔर डच से बम जैसे प्रचलित शब्दों को हिंदी ने सहर्ष अपनाया है।अंग्रेजी, अरबी और फारसी से आए शब्दों की सूची तो बहुत लंबी है,जिन्हें हिन्दी ने सहर्ष स्वीकार किया है।भारतीय भाषाओं के विभिन्न शब्दों को भी हिंदी ने उदारता पूर्वक स्वीकार किया है।बंगला से संदेश, पंजाबी से मंगेतर, मराठी से चालू,गुजराती से हड़ताल, तेलगु से झंडा और तमिल से कूप्पी जैसे अनगिनत शब्दों का स्वागत हिंदी ने किया है।हिंदी की इस समन्वयात्मक प्रकृति के संदर्भ में ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में स्पष्ट निर्देश किया गया है किरू–ष्केन्द्र सरकार का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा के विकास को इस प्रकार उन्नत बनाए कि वह भारत की मिश्रित संस्कृति के समस्त तत्वों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में उपयोग में लाए जाने के लिए विकसित हो सके।

संविधान के इस निर्देश के अनुसार राजभाषा हिंदी के सामासिक रूप की चर्चा तो अब शुरु हुई है,जबकि हिन्दी शताब्दियों से अपने विराट् सामासिक सांस्कृतिक रूप का परिजय दे रही है,वस्तुतः सांस्कृतिक समन्वय और राष्ट्रीय एकता की कड़ी के रूप में हिंदी ने जो स्थान प्राप्त किया,उसका आधार न तो कोई राजदरबार था और न कोई संविधान सभा थी।जिनकी मातृभाषा हिंदी है और जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है–उन सब लोगों ने सहज माध्यम के रूप में हिन्दी को स्वीकारा है।यहाँ तक की इस देश के तीर्थ–यात्रियों की भाषा हिंदी है।इस रूप में हिंदी न जाने कब से विभिन्न भाषा भाषियों के बीच व्यवहार में प्रचलित है। सैकडों वर्ष पहले मध्य काल के संतों और महात्माओं ने अपने विचारों को सारे देश में फैलाने के लिए हिन्दी माध्यम को अपनाया।इसके बाद हिंदी साधुओं और फकीरों की भाषा बनी।आजादी के बहुत पहले से कुछ देशी रियासतों में हिंदी को प्रशासन की भाषा बनने का सौभाग्य मिला था।स्वतंत्रता के बाद हिन्दी को संविधान निर्माताओं ने 14 सितंबर 1949 को राजभाषा का दर्जा दिया –यह हिंदी के लिए गौरव का संदर्भ है।इस नयी भूमिका ने हिंदी के प्रयोजन मूलक रूप को समूचे राष्ट्र के धरातल पर स्थापित किया है।

हिन्दी की अन्यतम विशेषता उसकी उदारता, सहजता और सहिष्णुता है।बेहद खुले मत के साथ हिंदी ने उन सारी संस्कृतियों और व्यवहारों को अपनाया है,जो उसके संपर्क में आईं।देश के एक छोर से दूसरे छोर तक बसे लोगों को प्रेम और बंधुत्व की डोर से बांधने वाली भाषा हिन्दी ही है। अमीर खुसरो और तानसेन के समय से लेकर विष्णु दिगंबर पलुस्कर और बड़े गुलाम अली खां जैसे संगीतकारों ने प्रमाणित किया है कि हिंदी ही इस देश में राग,पाग और संगीत की समर्थ भाषा है।गीतकार मोहम्मद रफी,कुंदन लाल सहगल,लता मंगेशकर और किशोर कुमार के गाए हिंदी गीतों ने पंजाबी, मराठी और बंगाली की पहचान भुलाकर इन्हें भारतीय भाषा हिन्दी का गायक सिद्ध किया है। हिंदी साहित्य के संपूर्ण इतिहास में अनगिनत ऐसे लोगों का अवदान है,जो मूलतः हिंदी भाषी नहीं थे।भक्ति और चिंतन,प्रेम और संगीत, संपर्क और व्यवहार के बहुत सारे आयामों को हिंदी ने स्वीकार किया है।नये तकनीकी संसाधनों, विज्ञान की उपलब्धियों औ अत्याधुनिक संचार माध्यमों ने एक बार फिर से हिंदी में छिपी भावनात्मक एकता को साकार किया है।हिंदी का द्वार सभी भाषाओं, सभी व्यवहारों और सभी अभिव्यक्तियों के लिए खुला है।केवल हिंदी में ही यह सामर्थ्य है कि वह इस देश की विभिन्न भाषाओं से छनकर आने वाली भारत की सामासिक संस्कृति को स्वस्थ स्वरूप दे सके।केवल हिंदी में ही यह क्षमता है कि वह विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों को समेटकर ईकार के रूप में भारत के सामासिक मानचित्र को तैयार कर सके।उसका संकल्प समन्वय की विराट् चेष्टा है।इस कारण युग के अनुरूप अभिव्यक्ति कौशल और परिवेश की आवश्यकताओं के साथ जुड़कर हिंदी ने निरंतर एकता और समन्वय की भावनाओं को प्रोत्साहित किया है।

निष्कर्षः

शताब्दियों से इस देश के लोग भावनात्मक एकता के जिस सूत्र में बंधे हुए हैं उस सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में हिन्दी की क्षमता पर संदेह नहीं किया जा सकता है।हिंदी ने भारत की विभिन्न भाषाओं में संचित ज्ञान राशि को एकीकृत कर विभिन्न संस्कृतियों के बीच समन्वय स्थापित कर राष्ट्रीय एकता का विलक्षण प्रयास किया है।हिन्दी के पास वह राष्ट्र–दृष्टि है,जिससे भारत की एकता के तंतु जुड़ते हैं।हिंदी के बिना न तो भारत की सामासिक संस्कृति की पहचान हो सकती है और न इस विराट वैविध्यपूर्ण देश में एकता के मंत्र का संचार हो सकता है।इसी विशिष्टता के कारण आज हिंदी भारत भर में फैले महामानव समुद्र के स्नेह का पात्र बनी है।

डॉ0 रविता पाठक

सहायक प्राध्यापक,शिक्षा विभाग

ओड़िशा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट(ओड़िशा)764004

चलभाषः–9679861217

द्रुत डाक –ravitapathak05@gmail-Ûom

16

मुद्राराक्षस का वैशिष्ट्य

डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय

सारांश

संस्कृत साहित्य में नाटकों की परंपरा अति प्राचीन है।मुद्राराक्षस संस्कृत का एक ऐतिहासिक नाटक है– जिसके रचयिता विशाखदत्त हैं। इसकी रचना चौथी शताब्दी में हुई थी। इसमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य संबंधी ख्यात वृत्त के आधार पर चाणक्य की राजनीतिक सफलताओं का अपूर्व विश्लेषण मिलता है। इस कृति की रचना पूर्ववर्ती संस्कृत–नाट्य परंपरा से सर्वथा भिन्न रूप में हुई है। लेखक ने भावुकता, कल्पना आदि के स्थान पर जीवन–संघर्ष के यथार्थ अंकन पर बल दिया है। इस महत्वपूर्ण नाटक को हिंदी में सर्वप्रथम अनूदित करने का श्रेय आधुनिक हिंदी के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र को है। यों उनके बाद कुछ अन्य लेखकों ने भी इस कृति का अनुवाद किया, किंतु जो ख्याति भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुवाद को प्राप्त हुई, वह किसी अन्य को नहीं मिल सकी।

तीसरी शताब्दी पूर्व के पाटलिपुत्र के इतिहास और राजनीति का सुन्दर समन्वय इसमें प्रस्तुत किया गया है। इसमें नन्दवंश के नाश, चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण, राक्षस के सक्रिय विरोध, चाणक्य की राजनीति विषयक सजगता और अन्ततः राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रभुत्व की स्वीकृति का उल्लेख हुआ है। इसमें साहित्य और राजनीति के तत्त्वों का मणिकांचन योग मिलता है; जिसका कारण सम्भवतः यह है कि विशाखदत्त का जन्म राजकुल में हुआ था। वे सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र थे। 'मुद्राराक्षस' की कुछ प्रतियों के अनुसार वे महाराज भास्करदत्त के पुत्र थे। इस नाटक के रचना–काल के विषय में तीव्र मतभेद हैं, अधिकांश विद्धान इसे चौथी–पाँचवी शती की रचना मानते हैं, किन्तु कुछ ने इसे सातवीं–आठवीं शती की कृति माना है। संस्कृत की भाँति हिन्दी में भी 'मुद्राराक्षस' के कथानक को लोकप्रियता प्राप्त हुई है, जिसका श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है।

परिचयः–

विशाखदत्त अथवा विशाखदेव का काल–निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। वैसे वे भास, कालिदास, हर्ष और भवभूति के परवर्ती नाटककार थे और प्रस्तुत नाटक की रचना अनुमानतः छठी से नवीं शताब्दी के मध्य हुई थी। सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु अथवा भास्करदत्त के पुत्र होने के नाते उनका राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था, फलतः 'मुद्राराक्षस' का राजनीति प्रधान नाटक होना आकस्मिक संयोग नहीं है, वरन् इसमें लेखक की रूचि भी प्रतिफलित है। विशाखदत्त की दो अन्य रचनाओं– देवी चन्द्रगुप्तम्, तथा राघवानन्द नाटकम् – का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु उनकी प्रसिद्धि का मूलाधार 'मुद्राराक्षस' ही है।

'देवी चन्द्रगुप्तम्' का उल्लेख रामचन्द्र–गुणचन्द्र ने 'नाट्यदर्पण' में, भोज ने 'श्रृंगारप्रकाश' में और अभिनवगुप्त ने 'नाट्यशास्त्र' की टीका में किया है। यह नाटक ध्रुवदेवी और चन्द्रगुप्त द्वितीय के ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित है, किन्तु अभी इसके कुछ अंश ही प्राप्त हुए हैं। 'राघवानन्द नाटकम्' की रचना राम–चरित्र को लेकर की गई होगी, किन्तु इसके भी एक–दो स्फुट छन्द ही प्राप्त हुए हैं।

'मुद्राराक्षस' की रचना पूर्ववर्ती संस्कृत–नाट्यपरम्परा से सर्वथा भिन्न रूप में हुई है। वैसे विशाखदत्त भारतीय नाटयशास्त्र से सुपरिचित थे और इसी कारण उन्हें 'मुद्राराक्षस' में 'कार्य' की एकता का निर्वाह करने में अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है, यद्यपि घटना–क्रम की व्यापकता को देखते हुए यह उपलब्धि सन्दिग्ध हो सकती थी। किन्तु पूर्ववर्ती लेखकों द्वारा निर्धारित प्रतिमानों का यथावत् अनुकरण भी उन्हें अभीष्ट नहीं था। इसीलिए उन्होंने भावुकता, कल्पना आदि के आश्रय द्वारा कथानक को अतिरिक्त जीवन–संघर्ष में प्राप्त होने वाली सफलता–असफलता का यथार्थमूलक चित्रण किया है। उन्होंने कथानक को शुद्ध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान की है, स्वच्छन्दतावादी तत्वों पर उनका बल नहीं रहा है। आभिजात्यवादी दृष्टिकोण न केवल कथा–संयोजन और चरित्र–चत्रिण में दृष्टिगत होता है, अपितु उनकी सुस्पष्ट तथा सशक्त पद–रचना भी इसी प्रवृत्ति की देन है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार मल्लिनाथ की व्याख्याओं के अभाव में कालिदास के कृतित्व का अनुशीलन अपूर्ण होगा, उसी प्रकार 'मुद्राराक्षस' पर ढूंढिराज की टीका भी प्रसिद्ध है।

कथानक

'मुद्राराक्षस' की कथावस्तु प्रख्यात है। इस नाटक के नामकरण का आधार यह घटना है – अपनी मुद्रा को अपने ही विरूद्ध प्रयुक्त होते हुए देखकर राक्षस का स्तब्ध अथवा विवश हो जाना। इसमें चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण के उपरान्त चाणक्य द्वारा राक्षस की राजनीतिक चालों को विफल कर देने की कथा को सात अंकों में सुचारू रूप में व्यक्त किया गया है। नाटककार ने चाणक्य और राक्षस की योजना–प्रतियोजनाओं को पूर्ण राजनीतिक वैदग्ध के साथ उपस्थापित किया है। उन्होंने नाटकगत घटनाक्रम के आयोजन में स्वाभाविकता, जिज्ञासा और रोचकता की ओर उपयुक्त ध्यान दिया है। तत्कालीन राजनीतिज्ञों द्वारा राजतंत्र के संचालन के लिए किस प्रकार के उपायों का आश्रय लिया जाता था, इसका नाटक में रोचक विवरण मिलता है। चाणक्य के सहायकों ने रूचि–अरूचि अथवा स्वतन्त्र इच्छा–शक्ति की चिन्ता न करते हुए अपने लिए निर्दिष्ट कार्यों का जिस तत्परता से निर्वाह किया, वह कार्य सम्बन्धी एकता का उत्तम

उदाहरण है। घटनाओं की धारावाहिकता इस नाटक का प्रशंसनीय गुण है, क्योंकि षड्यन्त्र–प्रतिषड्यंत्रों की योजना में कहीं भी व्याघात लक्षित नहीं होता। यद्यपि चाणक्य की कुटिल चालों का वर्णन होने से इसका कथानक जटिल है, किन्तु नाटककार ने इसे पूर्वापर क्रम–समन्वित रखने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। इसमें कार्यावस्थाओं, अर्थ–प्रकृतियों सन्धियों और वृत्तियों का नाटयशास्त्रविहित प्रयोग हुआ है।

कार्यावस्थाएँ

भारतीय आचार्यों ने नाटक में कथा–विकास की पांच अवस्थाएँ मानी हैं – प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम। नाटक का आरम्भ रूचिर और सुनियोजित होना चाहिए, क्योंकि नाटक की परवर्ती घटनाओं की सफलता इसी पर निर्भर करती है। 'मुद्राराक्षस' में निपुणक द्वारा चाणक्य को राक्षस की मुद्रा देने तक की कथा 'प्रारम्भ' के अन्तर्गत आएगी। 'प्रयत्न' अवस्था के अन्तर्गत इन घटनाओं का समावेश किया जा सकता है – चाणक्य द्वारा राक्षस और मलयकेतु में विग्रह कराने की चेष्टा, शकटदास को सूली देने का मिथ्या आयोजन, सिद्धार्थक द्वारा राक्षस का विश्वासपात्र बनकर उसे धोखा देना आदि। 'प्राप्त्याशा' की योजना के लिए नाटककार ने चन्द्रगुप्त और चाणक्य के छद्म विरोध, राक्षस द्वारा कुसुमपुर पर आक्रमण की योजना आदि घटनाओं द्वारा राक्षस का उत्कर्ष वर्णित किया है, किन्तु साथ ही कूटनीतिज्ञ चाणक्य की योजनाओं का भी वर्णन हुआ है। चाणक्य द्वारा राक्षस और मलयकेतु में विग्रह करा देने और राक्षस की योजनाओं को विफल कर देने की घटनाएँ 'नियताप्ति' के अन्तर्गत आती हैं। छठे–सातवें अंकों में 'फलागम' की सिद्धि के लिए राक्षस के आत्म– समर्पण की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए उसके द्वारा चन्द्रगुप्त के अमात्य–पद की स्वीकृति का उल्लेख हुआ है। उक्त अवस्थाओं का निरूपण नाटकार ने जितनी स्वच्छता से किया है, वह प्रशंसनीय है।

अर्थ–प्रकृतियाँः–

कथानक के सम्यक विकास के लिए भारतीय आचार्यों ने कार्यावस्थाओं की भाँति पाँच अर्थ–प्रकृतियाँ भी निर्धारित की हैं – बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य। इनमें से श्पताका' के अन्तर्गत मुख्य प्रासंगिक कथा को प्रस्तुत किया जाता है और 'प्रकरी' से अभिप्राय गौण प्रासंगिक कथाओं के समावेश से है। किन्तु कथानक के सम्यक् विकास के लिए प्रासंगिक कथाओं और आधिकारिक कथा का सन्तुलित निर्वाह आवश्यक है। 'मुद्राराक्षस' में चाणक्य द्वारा राक्षस को अपने पक्ष में मिलाने का निश्चय कथावस्तु की 'बीज' है। जिसकी अभिव्यक्ति प्रथम अंक में चाणक्य की उक्ति में हुई हैः ''जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नन्दों के मारने से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने से ही क्या ?.... इससे उसके पकड़ने में हम लोगों को निरूद्यम रहना अच्छा नहीं।'' चाणक्य आदि का मलयकेतु के आश्रम में चले जाना बीजन्यास' अथवा बीज का आरम्भ है। बिन्दु' के अन्तर्गत इन घटनाओँ की गणना की जा सकती है– निपुणक द्वारा चाणक्य को राक्षस की मुद्रा देना, शकटदास से पत्र लिखवाना, चाणक्य द्वारा चन्दनदास को बन्दी बनाने की आज्ञा देना। नाटक की फल–सिद्धि में सिद्धार्थक और भागुरायण द्वारा किए गए प्रयन्त 'पताका' के अन्तर्गत गण्य हैं। 'प्रकरी' का आयोजन 'मुद्राराक्षस' के तृतीय अंक के अन्त और चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में किया गया है–चाणक्य और चन्द्रगुप्त में मिथ्या कलह और राक्षस तक इसकी सूचना पहुंचना इसका उदाहरण है। राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का मंत्रित्व स्वीकार करके आत्मसमर्पण कर देना 'कार्य' नाम्नी अर्थ–प्रकृति हैः अवस्थाओं के अन्तर्गत इसी को फलागम की संज्ञा दी जाती है।

हिन्दी अनुवाद

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' (1875 ई०), 'श्री चन्द्रावली' (1876), 'भारत दुर्दशा' (1876–1880 के मध्य), 'नीलदेवी' (1881) आदि मौलिक नाटकों की रचना के अतिरिक्त संस्कृत–नाटकों के अनुवाद की ओर भी ध्यान दिया था। 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद उन्होंने 1878 ई0 में किया था। इसके पूर्व वे संस्कृत–रचना 'चौरपंचाशिका' के बंगला–संस्करण का 'विद्यासुन्दर'(1868) शीर्षक से, कृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय' के तृतीय अंक का 'पाखंड विडम्बन' (1872) शीर्षक से और राजशेखर कृत प्राकृत–कृति 'सट्टक' का 'कर्पूर–मंजरी' (1875–76) शीर्षक से अनुवाद कर चुके थे। इन अनुवादों में उन्होंने भावानुवाद की पद्धित अपनाई है, फलतः इन्हें नाटयरूपान्तर कहना अधिक उपयुक्त होगा। नाटक के प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि स्थलों को उन्होंने प्रायः मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार शब्दानुवाद की प्रवृत्ति का आश्रय न लेकर चरित्र–व्यंजना में पर्याप्त स्वतन्त्र दृष्टिकोण रखा गया है। यही कारण है कि मुद्राराक्षस में अनुवाद की शुष्कता के स्थान पर मौलिक विचारदृष्टि और भाषा–प्रवाह को प्रायः लक्षित किया जा सकता है। नाटकगत काव्यांश में यह प्रवृत्ति और भी स्पष्ट रूप में लक्षित होती है।सर्वतोभावेन विशाखदत्त का मुद्राराक्षस संस्कृत साहित्य का एक अनुपम, अद्भुत एवं अद्वितीय सफल नाटक है, जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है।

डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची
चलभाषरू–9431595318
8797687656,9386336807
अणुडाक–pandey& ru05@yahoo-co-un

17

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के आदर्श

संतोष कुमार झा

सारांश

भक्त शिरोमणि कविकुल दिवाकर गोस्वामी तुलसीदास भारत के मंदिर को आलोकित करने वाले सर्वोत्तम प्रकाश–स्तम्भ हैं। उन्होंने अपनी काव्य–साधना द्वारा भारतीय जीवन, धर्मदर्शन तथा संस्कृति को अनुप्राणित किया है। उनका साहित्य काव्य दर्शन तथा भक्ति की त्रिवेणी है। तुलसीदास हिंदी साहित्य में विशिष्ट गौरव के अधिकारी हैं।

शीलोत्कर्ष विधायिनी भारतीय संस्कृति के उन्नायक तुलसी भारतीय साहित्य ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की महान विभूति है। भारतीय समाज जिस समय अत्याचार सामाजिक वैष्मय एवं राजनीति शोषण तथा धार्मिक आडम्बरों से घिरा हुआ था। उस समय कवि की सर्वोत्तन्मुखी पाण्डित्य–प्रतिभा ने उसे जीवन का आधार देकर सशक्त बनाया था। तुलसी राम के अनन्य भक्त हैं।'अस्तु राम व्यक्ति नहीं आदर्श की प्रतिमूर्ति हैं

राम व्यक्ति को नहीं,
वृति को प्राप्त हुई संज्ञा हैं।
राम हमारा चिंतन दर्शन,
प्रीति प्रकृति प्रज्ञा है।
राम चिरंतन जीवन मूल्यों,
का स्वर्णाभ शिखर हैं।
राम हमारी संस्कृति का
सारस्वत हस्ताक्षर हैं।
राम हमारा कर्म ,हमारा धर्म
हमारी मति है।
राम हमारी भक्ति, हमारी शक्ति
हमारी गति है।,
बिना राम के आदर्शो का चर्मोत्कर्ष कहाँ है?
बिना राम के इस भारत में भारत वर्ष कहाँ है?

उन्होंने राम के चरित का आधार लेकर मानव जीवन की जितनी व्यापक और सम्पूर्ण समीक्षा की है उतनी हिंदी साहित्य के किसी अन्य कवि ने नहीं की है। इस समीक्षा के साथ ही उन्होंने लोकशिक्षा का भी ध्यान रखा और मानव जीवन में ऐसे आदर्शो की स्थापना की जो विश्वजनीन है और समय के प्रवाह से नहीं बह सकते। तुलसी ने इन आदर्शो की भिति पर अपनी भक्ति के स्वरुप की इतनी अच्छी विवेचना की कि वह तत्कालीन धार्मिक अवस्था में पथ–प्रदर्शन का काम कर गयी ।उनकी भक्ति में नीति की धारा मिली हुई है। उन्होंने अपने साहित्य को समाज की आधारभूत आवश्यकताओं के अनुरूप निर्मित किया, यही उनकी सबसे बड़ी देन है। तुलसी ने अपने काव्य प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि कीरति भनीति भूति भली सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई।।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की चारित्रिक उदारता एवं महानता को लेकर रामचरितमानस और विशिष्ट बन गया है। मानस में शील, शक्ति और सौंदर्य सर्वत्र परिव्याप्त है। मानस के सभी आदर्श पात्र तप, त्याग परोपकार और प्रेम की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। चक्रवर्ती सम्राट दशरथ का पुत्र प्रेम में देह त्याग ,राम का पितृ–प्रेम में अयोध्या के सुख का त्याग, कोमलागिनी सीता का पति प्रेम में ऐश्वर्य–त्याग, भाई राम के लिए लक्ष्मण का पत्नी का त्याग, भाई भरत का राम के लिए अयोध्या के सिंहासन का त्याग किया, मानस आदि से अंत तक त्याग की महागाथा है। तुलसी की गुणोत्कृष्टता पर प्रकाश डालते हुए तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि ष्यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिंदी का सबसे बड़ा कवि कौन है? तो उसका एकमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत हृदय, भारतीय कंठ भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास।ष

एक बार रामकथा के मर्मज्ञ विदेशी विद्वान डॉ फादर कामिल बुल्के ने तुलसी जयंती के पावन पुनीत अवसर पर बोलते हुए कहा था – ष्अगर भारत से स्वदेश (बेल्जियम) लौटते समय मुझे केवल एक ही पुस्तक ले जाने की इजाजत दी जाए ,तो वह बाईबिल नहीं , तुलसी का रामचरितमानस होगा।

तुलसी का मानस राम राज की स्थापना के कारण शिष्ट और विशिष्ट बन गया है। जहां समता स्वतंत्रता और भ्रातृत्व की त्रिवेणी प्रवाहित है। तीनों प्रकार के तापों का शमन और निर्मूलन हैः–

राम राज बैठे त्रैलोका।
हरषित भरे गये सब सोका।
दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज काहुं नहि व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीती।
दंड जतिन्ह कर भेद कहं नर्तक नृत समाज।
मांगे वारिद देहि जल, रामचंद्र के राज।

स्वतंत्र भारत में राष्ट्र पिता महात्मा गांधी जी का एक ही सपना था कि यहां राम राज स्थापित हो, लेकिन उनका यह सपना अभी तक पूर्णतः अपना नहीं हो सका है। माननीय नरेन्द्र मोदी जी की सरकार राम राज की ओर सक्रिय है। हमें आशा है 1947 तक राम राज का सपना अपना हो सकेगा। अयोध्या के राममंदिर में भगवान राम की

प्राण प्रतिष्ठा राम राज की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

भारत की भव्यता और विशालता को दृष्टि में रखकर इस देश के लिए कहा जाता रहा है – आसमुद्रात हिमालयः

अर्थात हिमालय इसकी उच्चता और भव्यता का प्रतीक है, तो सागर इसकी व्यापकता और विशालता का । तुलसीदास एक साथ ही भारत की भव्यता के प्रतीक हिमालय, और उसकी व्यापकता और विशालता के प्रतीक सागर दोनों की ही सम्मिलित प्रतिमूर्ति हैं। उनका व्यक्तित्व भारतीय धर्म–साधना का मानदंड है,उनकी कृतियां भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमाएं हैं।भारतवर्ष में दो गंगाऐं हैं – एक भौगोलिक, दूसरी सांस्कृतिक। भौगोलिक गंगा गोमुखी से निकलकर उपत्यकाओं में प्रवाहित होती हुई अंत में अनन्त सागर से जा मिलती है। सांस्कृतिक गंगा तुलसी मुखारबिंद से निकलकर मानस के रूप में जनमानस को परिपल्लावित करती हुई अंत में अनन्त सागर में शेषशायी विष्णुरूपी राम के चरणों में समर्पित हो जाती है।सुरसरि रूपी भौगोलिक गंगा भारत का तीर्थ स्थान है, तो मानस रूपी सांस्कृतिक गंगा लोक मानस का तीर्थ राज। कविवर डा राजेश जैन ने अपने सुप्रसिद्ध खंड काव्यश्रग– रंग में हैं रामश (जिसकी शुभाशंसा मैंने लिखी है) में प्रभु श्रीराम की सहजता , स्वाभाविकता,सर्व गुण ग्राह्यता,व्यापकता और प्रभुता का वर्णन करते हुए लिखा है किरू–

रंग,–रग में हैं राम,पग पग पे हैं राम,
राम का प्रमाण पूछ देश न लजाइये।
शबरी के भाव में हैं,केवट की नाव में हैं,
राम जी दिखेंगे,आप खुद को जगाइये।
राम संस्कार में हैं,आपस के प्यार में हैं,
भरत सरीखे आप भाई बन जाइये।
राम सुप्रभात में हैं,राम मीठी बात में हैं,
राम–राम बोल जग अपना बनाइये।

अंत में तुलसी के शब्दों में समस्त सृष्टि के नर नारी को राम सीता मानकर प्रणाम करता हूंरू–

सिया राम मय सब जग जानी।
करौं प्रणाम जोरी जुग पानी।

संदर्भ ग्रन्थः–

1 गोस्वामी तुलसीदास –श्रीरामचरित मानस,गीता प्रेस, गोरखपुर 2010

2 डॉ0 फादर कामिल बुल्के –राम कथा उत्पत्ति और विकास, प्रकाशक हिंदी विभाग प्रयाग राज विश्वविद्यालय प्रयागराज 1995

3 डॉ0 वचन देव कुमार –तुलसी विविध संदर्भों में –राज कमल प्रकाशन,नई दिल्ली 1980

4 तुलसी के भक्त्यात्मक गीत विशेषतः विनय–पत्रिका, हिंदी साहित्य संसार नई दिल्ली,1970

5 डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय –रामचरितमानस में रस योजना, क्लासिकल पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2008

संतोष कुमार झा

एम ए हिंदी (नेट उत्तीर्ण)

शोध छात्र,हिन्दी विभाग

रांची विश्वविद्यालय, रांची

चलभाष 8210688703'

18

रामवृक्ष बेनीपुरी की रचना धर्मिता

डॉ0 चंद्र मणि किशोर

सारांश

बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में से एक रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी जी का जन्म 23 दिसम्बर 1899 ई. में बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बेनीपुरी गाँव में हुआ था।बचपन में ही इनके माता पिता का स्वर्गवास हो गया।अतरूइनका लालन पालन और प्रारभिक शिक्षा ननिहाल में हुई।आम तौर पर ननिहाल में पालित पोषित होने वाले बच्चे बिगड़ जाते हैं,लेकिन मुझे यह लिखने में प्रसन्नता हो रही है कि बेनीपुरी जी इसके अपवाद साबित हुए।

'इन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन से प्रथमा एवं विशारद की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। 1920 ई. में मैट्रिक पास करने के पूर्व ही महात्मा गाँधी के आह्वान पर ये स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। 1930 ई. से 1942 ई. तक इन्हें 12 बार जेल की यात्रा करनी पड़ी। 'श्रामचरितमानसश के नियमित पठन–पाठन से साहित्य और कविता के क्षेत्र में इनकी रूचि जाग्रत हुई। स्कूल–काल से ही इनकी रचनाएँ पत्र–पत्रिकाओं में छपने लगी थी। इनकी पहली रचना प्रसिद्ध पत्रिका श्प्रतापश में छपी थी। कविता से ये शीघ्र ही गद्य के क्षेत्र में आ गए और पत्रकारिता के माध्यम से भी राष्ट्र सेवा करने लगे। इन्होंने अनेक पत्र–पत्रिकाओं का संपादन किया, जिनमें प्रमुख हैं – तरुण–भारत, किसान ,मित्र, बालक, युवक, लोकसंग्रह, कर्मवीर, योगी, जनता, हिमालय, नई धारा तथा चुन्नू–मुन्नू आदि। 07 सितम्बर 1968 ई. में इनका निधन हो गया।

रामवृक्ष बेनीपुरी की गिनती हिंदी के समर्थ निबंधकार, संस्मरण तथा रेखाचित्र लेखक के रूप में की जाती है। इन्होंने लगभग एक सौ ग्रंथों का प्रणयन किया है, जिनमें प्रमुख हैं –

, उपन्यास– पतितों के देश में (1930–32), कैदी की पत्नी(1940)

कहानी संग्रह

चिता के फूल (1930–32), संसार की मनोरम कहानियां।

रेखा चित्र

लाल तारा (1937–39), माटी की मूरतें (1941–45),

निबंध

गेंहूँ और गुलाब (1948–50), मशाल

वंदे वाणी विनायकौ (ललित निबंध)

संस्मरण

मील का पत्थर, जंजीरें और दीवारें,। मुझे याद है

(माटी की मूरतेंश का साहित्य अकादमी की ओर से अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद किया जा चुका है।)

नाटक–– अम्बपाली (1941–45), नेत्रदान (1948–50), सीता की माँ (1948–50), संघमित्रा (1948–50), अमर ज्योति (1951) तथागत(1952)

यात्रा वृतांत

पैरो में पंख बांधकर।

जीवनी

जयप्रकाश, रोजा,लुक्जेम्बर्ग.,

जय प्रकाश की विचारधारा(चितंन परक निबंध।

बाल साहित्य––– अमर कथाएँ, बिलाई मौसी, बेटे हो तो ऐसे, बेटियाँ हों तो ऐसीं ,हमारे पुरखे,हमारे पड़ोसी, प्रकृति पर विजय,पृथ्वी पर विजय,हीरामन तोता, बच्चों के बापू, सियार पांडे आदि।

अन्य संपादित ग्रंथ ––– विद्यापति की पदावली (सम्पादित), मेरी डायरी (डायरी) बिहारी सतसई की सुबोध टीका, लालचीन, जान हथेली पर, आविष्कार और आविष्कारक, नई नारी, रवीन्द्र भारती आदि। (बेनीपुरी का साहित्य श्बेनीपुरी ग्रंथावलीश में प्रकाशित है।)

वैशिष्ट्य

एकता और समता के पक्षधर बेनीपुरी जी की समाज कल्पना अद्भुत थी।सामान्य किसान परिवार में जन्मे बेनीपुरी जी यद्यपि एक ग्रामीण व्यक्ति थे,किन्तु इन्होनें अपनी साधना से ज्ञान पा लिया था।साहित्य ,पत्रकारिता और राजनीति से समन्वित इनकी दृष्टि सदा समाज की उन्नति और विकास की ओर अग्रसर थी।इन्होनें अपने जीवन में जो कुछ देखा,भोगा और अनुभव किया,साहित्य में उसी की अभिव्यक्ति की।जीवन की विकासोन्मुख धारा में जहाँ कही सामाजिक रूढ़ियाँ कुरीतियां दिखाई दीं इन्होंने उसका निराकरण करते हुए नया समाज बनाने की आकांक्षा प्रकट की।उन्होंने गुलाम भारत की पीड़ा देखी और भोगी थी और आजाद भारत में राम राज्य की स्थापना करना चाहते थे।उनकी अभिलाषा थीरूसमृद्ध भारत देखने की और शाश्वत भारत लिखने की।

बेनीपुरी जी प्रेम विवाह और अंतर्जातीय विवाह के हिमायती थे।उनका मानना था कि ऐसे संबंध होने से विश्व में कल्याण कारी भावनाओं का उदय होगा,विश्व मैत्री की भावना बढ़ेगी, एक दूसरे के प्रति अपनत्व होगा।ये भावनाएं मन की कुत्सित बुराइयों को दूर करने में सहायक और समर्थ होंगी।

बेनीपुरी जी नारी विकास के परम हिमायती थे।उन्होंने लिखा हैः

सामाजिक क्रांति की अग्नि में स्त्रियों की गुलामी भी जलने वाली है,समय के प्रवाह को कोई रोक नही सकता।

इन्होंने समाज के विकास में नारी की अनिवार्यता बतायी है।इनके इसी सपने को साकार करने के लिए मुजफ्फरपुर में बेनीपुरी महिला कालेज की स्थापना हुई है।

वे संपूर्ण भारतीय समाज में एकता और समता के पक्षधर थे।समाजवादी चितंन से प्रभावित हो उन्होंने मनुष्यता को टुकडे में बाटने वाली जाति, वर्ण और धर्म के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूंक दिया।यह 1930 के आस पास की घटना है जब शिखा सूत्र टाइटिल सब कुछ सदा के लिए उन्होंने त्याग दिया।स्वयं बेनीपुरी जी के शब्दों में ज्यो ही राजनीति में आने की सोची,सबसे पहले मैंने धर्म और जाति पाति से अपने को दूर करने का निर्णय कर लिया।धर्म का आधार भगवान है,मै भगवान से भी द्रोह कर बैठा।

कहाँ बचपन का वह चंदन टीका,कहां किशोरावस्था का ब्राह्मणत्व और गायत्री का प्रतिदिन जाप और कहाँ एक मैं हूँ किअपनी चुटिया काट डाली,जनेऊ उतार फेंका,अपने नाम की उपाधि शर्मा हटा दीऔर जोरो से कहने लगा भगवान से बचो,सबसे बड़ा भूत वही है।जब तक तुम्हारे सिर पर वह भूत है,कोई अच्छा कार्य नहीं कर सकते।

विकासोन्मुख और समता मूलक समाज की स्थापना चाहने वाले बेनीपुरी जी के संपूर्ण साहित्य में जीवन को आगे बढाने वाली नयी दिशा दृष्टि गोचर होती है। यदि जीवन को सीधे सादे ढ़ंग से कह देना ही कला की सबसे बड़ी विशेषता है तो बेनीपुरी जी इसके सबसे बड़े परमाचार्य हैं।बेनीपुरी जी एक सच्चे समाज सुधारक, कुशल राजनीतिज्ञ सफल साहित्यकार और प्रखर पत्रकार थे।यही कारण है कि राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर ने कहा था किरूनाम से दिनकर मैं था काम से असली सूर्य बेनीपुरी जी थे।

बेनीपुरी जी के संदर्भ में कतिपय साहित्य मनीषियों के उदगार द्रष्टव्य हैं:

यदि हमसे प्रश्न किया जाय कि आजकल हिंदी का सर्वश्रेष्ठ शब्द चित्र कार कौन है,तो हम बिना किसी संकोच के श्रीबेनीपुरी जी का नाम उपस्थित कर देंगे।

बनारसी दास चतुर्वेदी

यह लेखनी है या जादू की छड़ी है आपके हाथ में।

राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त

बेनीपुरी की सजीव लेखनी वास्विकता और साथ ही रस और सौन्दर्य की पराकाष्ठा साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृत्यों में ।

राहुल सांकृत्यायन

आधुनिक साहित्य निर्माताओं में आपका अनूठा स्थान है।

कलामनीषी राय कृष्ण दास

गद्य साहित्य को अभूतपूर्व देन–साहित्य सृजन का नया आदर्श, उदार दृष्टिकोण ज्योतिर्मय व्यक्तित्व।

जगदीश चंद्र माथुर

अस्तु बेनीपुरी जी जैसे शब्दों के जादूगर का हिंदी भाषा में होना गौरव का संदर्भ है।

डॉ0 चंद्र मणि किशोर

एम ए हिंदी (लब्ध स्वर्ण पदक,नेट उत्तीर्ण)

वरीय हिंदी शिक्षक

जिला स्कूल, रांची 834001

चलभाष:7979852019

19

राम कथा भोग की नहीं, त्याग की कथा है

डॉ0 तारा मणि पाण्डेय

सारांश

रामकथा सुंदर करतारी।

संशय विहग उड़ान हारी।

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस न केवल हिंदी का अपितु विश्व साहित्य का अनुपम , अद्भुत और अद्वितीय महाकाव्य है। इसमें एक साथ भक्ति,नीति और मर्यादा की त्रिवेणी प्रवाहित है।रामकथा में महाराज जनक की बेटियों का अनुपम और अद्वितीय योगदान है। महाराज जनक की चारों बेटियां (सीता,माण्डवी, उर्मिला और श्रुति कीर्ति) एक से बढ़कर एक हैं। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने रामकथा परक महाकाव्य श साकेत श के नवम् सर्ग में विदेह राज जनक की पुत्रियों की प्रशंसा करते हुए महाराज जनक को नमन किया है किः–

दो वंशों में प्रकट करके पावनी लोक लीला,
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियां पूतशीला।
त्यागी भी हैं शरण जिनके,जो अनासक्त गेही,
राजा–योगी जय जनक,वे पुण्य देसी,विदेही।

राजा जनक की बेटियों के तप त्याग और सहिष्णुता को अगर कभी पढेंगे और समझेगें तो आंसुओ पे काबू रखना होगा.....

रामायण का एक छोटा सा वृतांत है, उसी से शायद कुछ समझा सकूँ...

एक रात की बात है, माता कौशल्या जी को सोते में अपने महल की छत पर किसी के चलने की आहट सुनाई दी।

नींद खुल गई, पूछा कौन हैं ?

मालूम पड़ा श्रुतकीर्ति जी (सबसे छोटी बहु, शत्रुघ्न जी की पत्नी)हैं।माता कौशल्या जी ने उन्हें नीचे बुलाया ।

श्रुतकीर्ति जी आईं, चरणों में प्रणाम कर खड़ी रह गईं!

माता कौशिल्या जी ने पूछा, श्रुति ! इतनी रात को अकेली छत पर क्या कर रही हो बेटी ?

क्या नींद नहीं आ रही है ?

शत्रुघ्न कहाँ है ?

श्रुतिकीर्ति की आँखें भर आईं, माँ की छाती से चिपटी, गोद में सिमट गईं, बोलीं, माँ उन्हें तो देखे हुए तेरह वर्ष हो गए ।

उफ !

कौशल्या जी का हृदय काँप कर झटपटा गया ।

तुरंत आवाज लगाई, सेवक दौड़े आए ।

आधी रात ही पालकी तैयार हुई, आज शत्रुघ्न जी की खोज होगी, माँ चल पड़ीं ।

आपको मालूम है शत्रुघ्न जी कहाँ मिले ?

अयोध्या के जिस दरवाजे के बाहर भरत जी नंदिग्राम में तपस्वी होक रह रहे हैं, उसी दरवाजे के भीतर एक पत्थर की शिला हैं, उसी शिला पर अपनी बाँह का तकिया बनाकर लेटे मिले !!

माँ सिराहने बैठ गईं, बालों में हाथ फेरने लगी तो शत्रुघ्न जी ने आँखें खोलीं!

माँ !

उठे, चरणों में गिरे, माँ ! आपने क्यों कष्ट किया ?

मुझे बुलवा लिया होता ।

माँ ने कहा, षत्रुघ्न ! यहाँ क्यों ?

शत्रुघ्न जी की रुलाई फूट पड़ी, बोले– माँ ! भैया राम जी पिताजी की आज्ञा से वन चले गए, भैया लक्ष्मण जी उनके पीछे चले गए, भैया भरत जी भी नंदिग्राम में हैं, क्या ये महल, ये रथ, ये राजसी वस्त्र, विधाता ने मेरे ही लिए बनाए हैं ?

माता कौशल्या जी निरुत्तर रह गईं ।

देखिये क्या है ये रामकथा...

यह भोग की नहीं....त्याग की कथा हैं..!!

इस राम कथा में त्याग की ही प्रतियोगिता चल रही हैं और सभी प्रथम हैं, कोई पीछे नहीं रहा... चारो भाइयों का प्रेम और त्याग एक दूसरे के प्रति अद्भुत–अभिनव और अलौकिक हैं ।

रामायण जीवन जीने की सबसे उत्तम शिक्षा देती हैं । इसीलिए राम कथा के मर्मज्ञ विद्वान विंदु जी महाराज ने लिखा हैरू–

हमें निज धर्म पर चलना बताती रोज रामायण।
सदा शुभ आचरण करना सिखाती रोज रामायण।
जिन्हें संसार सागर से, उतरकर पार जाना है,
उन्हें सुख के किनारे पर लगाती रोज रामायण।
कहीं छवि विष्णु की बांकी, कहीं शंकर की है झांकी,

हृदय आनंद झूले पर ,झुलाती रोज रामायण।
सरल कविता के कुंजों में,बना मंदिर है हिंदी का,
जहां प्रभु प्रेम का दर्शन,कराती रोज रामायण।
कभी वेदों के सागर में,कभी गीता के गंगा में,
कभी रस बिंदु में मन को,डुबोती रोज रामायण।

भगवान राम को 14 वर्षों का वनवास हुआ तो उनकी पत्नी सीता माईया ने भी सहर्ष वनवास स्वीकार कर लिया..!!

परन्तु बचपन से ही बड़े भाई की सेवा मे रहने वाले लक्ष्मण जी कैसे राम जी से दूर रह सकते थे।माता सुमित्रा से तो उन्होंने आज्ञा ले ली थी वन जाने की। सुमित्रा ने लक्ष्मण से आदेशात्मक स्वर में कहा किरू–

अवध तहां जहं राम निवासू।
तहई दिवस जहं भानु प्रकासू।
जौं पै सीय राम बन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कछु ना हीं।

परन्तु जब पत्नी "उर्मिला" के कक्ष की ओर बढ़ रहे थे तो सोच रहे थे कि माँ ने तो आज्ञा दे दी, परन्तु उर्मिला को कैसे समझाऊंगा.?

क्या बोलूँगा उससे.?

यही सोच विचार करके लक्ष्मण जी जैसे ही अपने कक्ष में पहुंचे तो देखा कि उर्मिला जी आरती का थाल लेकर खड़ी थीं और बोलीं–

ष्आप मेरी चिंता छोड़ प्रभु श्रीराम की सेवा में वन जाइए...मैं आपको नहीं रोकूँगीं। मेरे कारण आपकी सेवा में कोई बाधा न आये, इसलिये साथ जाने की जिद्द भी नहीं करूंगी।

लक्ष्मण जी को कहने में संकोच हो रहा था.!!

परन्तु उनके कुछ कहने से पहले ही उर्मिला जी ने उन्हें संकोच से बाहर निकाल दिया..!!

वास्तव में यही पत्नी का धर्म है..पति संकोच में पड़े, उससे पहले ही पत्नी उसके मन की बात जानकर उसे संकोच से बाहर कर दे.!!

प्रभु श्रीराम गंगा पार करके केवट को उतराई देने की बात सोच ही रहे थे कि सीता जी प्रभु श्रीराम के मन की बात को जान गई और विनीत स्वर में कहा किरू–

पिय हिय की सिय जान निहारी।
मणि मुदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ नाथ लेहु उतराई।
केवट चरण गहे अकुलाई।

अस्तु!लक्ष्मण जी चले गये परन्तु 14 वर्ष तक उर्मिला ने एक तपस्विनी की भांति कठोर तप किया.!!

वन में "प्रभु श्री राम माता सीता" की सेवा में लक्ष्मण जी कभी सोये नहीं , परन्तु उर्मिला ने भी अपने महलों के द्वार कभी बंद नहीं किये और सारी रात जाग जागकर उस दीपक की लौ को बुझने नहीं दिया.!!

मेघनाथ से युद्ध करते हुए जब लक्ष्मण जी को "शक्ति" लगी और हनुमान जी उनके लिये संजीवनी बूटी का पर्वत लेके लौट रहे थे, तो बीच में जब हनुमान जी अयोध्या के ऊपर से गुजर रहे थे तो भरत जी ने उन्हें राक्षस समझकर बाण मारा और हनुमान जी धराशायी हो गये.!!

तब हनुमान जी ने लंका का सारा वृत्तांत अयोध्यावासियों को सुना दिया कि सीता जी को रावण हर ले गया और लंका में राम रावण का भयंकर युद्ध चल रहा है।लक्ष्मण जी युद्ध में मेघनाद के शक्ति वाण लगने से मूर्छित हो गए हैं।

यह सुनते ही मां कौशल्या जी ने हनुमान जी से कहा हैं कि राम को कहना कि "लक्ष्मण" के बिना अयोध्या में पैर भी मत रखे क्योंकि वे बिना भाई के अयोध्या आयेंगे,तो सब कुछ पायेंगे,मगर अपने माई को नहीं पायेंगे।लोक रामायण में लिखा है किरू–

भ्रात प्रेम भाव की प्रतीति जग माहि भर है,
पाइबे सनेह नाथ आज निज भाई के।
करन विश्राम हेतु सकल सुपास सेज,
सोये मेरे तात आज गोद निज भाई के।
ऐहो हनुमान! सावधान जाई कह दीह,
अइहैं जो अवध रघुराई बिन भाई के।
राज पइहैं, हार पइहैं,सकल समाज पइहैं,
देख नहि पइहैं वे मुख निज माई कै।

माता "सुमित्रा" ने कहा हैं कि राम से कहना कि कोई बात नहीं..अभी शत्रुघ्न है.!!

मैं उसे भेज दूंगी..मेरे दोनों पुत्र "राम सेवा" के लिये ही तो जन्मे हैं.!!

माताओं का प्रेम देखकर हनुमान जी की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। परन्तु जब उन्होंने उर्मिला जी को देखा तो सोचने लगे कि यह क्यों एकदम शांत और प्रसन्न खड़ी हैं?

क्या इन्हें अपनी पति के प्राणों की कोई चिंता नहीं?

हनुमान जी ने पूछा कि – देवी!
आपकी प्रसन्नता का कारण क्या है? आपके पति के प्राण संकट में हैं... सूर्य उदित होते ही सूर्य कुल का दीपक बुझ जायेगा।

ृउर्मिला जी का उत्तर सुनकर तीनों लोकों का कोई भी प्राणी उनकी वंदना किये बिना नहीं रह पाएगा.!!

उर्मिला बोलीं– ष्मेरा दीपक संकट में नहीं है, वो बुझ ही नहीं सकता. !!

रही सूर्योदय की बात तो आप चाहें तो कुछ दिन अयोध्या में विश्राम कर लीजिये, क्योंकि आपके वहां पहुंचे बिना सूर्य उदित हो ही नहीं सकता.!!.

आपने कहा कि– प्रभु श्रीराम मेरे पति को अपनी गोद में लेकर बैठे हैं.. !

जो "योगेश्वर प्रभु श्री राम" की गोदी में लेटा हो हनुमान जी ! काल उसे छू भी नहीं सकता..!!

यह तो वे दोनों लीला कर रहे हैं..

मेरे पति जब से वन गये हैं, तबसे सोये नहीं हैं..

उन्होंने न सोने का प्रण लिया था।इसलिए वे थोड़ी देर विश्राम कर रहे हैं और जब भगवान् की गोद मिल गयी तो थोड़ा विश्राम ज्यादा हो गया।वे उठ जायेंगे। लोक रामायण में उर्मिला ने हनुमान जी से कहा कि :–

नहीं रोचन बिंदु मलीन भए,
नहीं कुमकुम रेख में श्यामता आई।
गलमाल अभी मुरझाई नहीं,
अब लौं यह संगचित हो रही आई।
चंदन चारू सो सूख्यो नहीं,
नहिं नैन तजै अभी शीतलताई।
कैसै करूं विश्वास अहो!,
मेरे नाथ पड़े रण में शर खाई।

और "शक्ति" मेरे पति को लगी ही नहीं है, शक्ति तो प्रभु श्री राम जी को लगी है.!!

मेरे पति की हर श्वास में राम हैं, हर धड़कन में राम, उनके रोम रोम में राम हैं, उनके खून की बूंद बूंद में राम हैं, और जब उनके शरीर और आत्मा में सिर्फ राम हैं, तो शक्ति राम जी को ही लगी, दर्द राम जी को ही हो रहा होगा !

इसलिये हनुमान जी आप निश्चिन्त होके जाएँ..सूर्य उदित नहीं होगा।

राम राज्य की नींव जनक जी की बेटियां ही थीं।कभी "सीता" तो कभी,माण्डवी ,कभी "उर्मिला".कभी श्रुति कीर्ति .!!

भगवान् राम ने तो केवल राम राज्य का कलश स्थापित किया ..परन्तु वास्तव में राम राज्य इन सबके प्रेम, त्याग, समर्पण और बलिदान से ही आया .!!

जिस मनुष्य में प्रेम, त्याग, समर्पण की भावना हो उस मनुष्य में राम ही बसता है। कभी समय मिले तो अपने वेद, पुराण, गीता, रामायण को पढ़ने और समझने का प्रयास कीजिए ।जीवन को एक अलग नज़रिए से देखने और जीने का अवसर मिलेगा .!!

लक्ष्मण सा भाई हो कौशल्या माई हो,

स्वामी तुम जैसा, मेरा रघुराइ हो.. नगरी हो अयोध्या सी, रघुकुल सा घराना हो,

चरण हो राघव के, जहाँ मेरा ठिकाना हो..हो त्याग भरत जैसा, सीता सी नारी हो,

लव कुश के जैसी, संतान हमारी हो.. श्रद्धा हो श्रवण जैसी, सबरी सी भक्ति हो,

हनुमत के जैसी निष्ठा और शक्ति हो... ष्ये रामायण है, पुण्य कथा श्री राम की।

अंत में महाकवि तुलसी के शब्दों में संपूर्ण जगत के नर नारी को सीता राम समझकर सादर नमन ,वंदन और अभिनंदन हैः–

सिया राम मय सब जग जानी।
करउं प्रणाम जोरि जुग पानी।
!! जय जय श्री राम !!

डॉ0 तारा मणि पाण्डेय
कृत कार्य हिंदी शिक्षिका
महारानी प्रेम मंजरी प्रोजेक्ट बालिका
उच्च विद्यालय,रातू, रांची (झारखंड)835222
चलभाषः 9386336807

20

भारतीय मीडिया के बदलते परिप्रेक्ष्य–

डॉ0 सिद्धेश्वर काश्यप

सारांश

भारत में स्वाधीनता –आंदोलन कालीन प्रेस – मीडिया मिशन होता है देश की स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए। देश की एकता–अखंडता, स्वत्व –स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा में मीडिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। मातृभूमि(1923),हिंदुस्तान टाइम्स(1924), दैनिक जागरण(1942),इंडियन एक्सप्रेस(1932), पंजाब केशरी(1929) आदि अखबारों ने देश और प्रेस की स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व न्योछावर किया; क्यों कि इनका मिशन संपूर्ण स्वतंत्रता होता है।ये भारतीय राजतंत्र को स्वतंत्र लोकतंत्र में परिणत करने को संकल्पित अभियान में होते हैं।तभी तो कहा गया था–

जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।

स्वतंत्र भारत में कुछ प्रेस मीडिया मिशन नहीं ,प्रोफेशन बन जाते हैं ;क्योंकि ये पूंजीवादी व्यापार के माध्यम बन जाते हैं।लेकिन अधिकांशतरू अमर उजाला ,दैनिक भास्कर जैसे प्रेस मीडिया अपवाद भी होते हैं जो लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की भूमिका में हैं।

आज कुछ मीडिया फोर सी– क्राइम, कास्ट, कैपिटल और कैपेसिटी के गिरफ्त में होने को अभिशप्त हैं लोकतंत्र की भांति ।इनका लक्ष्य राष्ट्रीय स्वतंत्रता ,अस्मिता, स्वत्व और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा की अपेक्षा धनकुबेर बनना है। विदेशी अखबारों में प्रकाशित भारत विरोधी खबरों को प्राथमिकता से छापना भी इनका धर्म है जिनका समर्थन तथाकथित प्रगतिशील– धर्मनिर्पेक्ष नेता, बुद्धिजीवी और चिंतक खुल कर करते हैं।फारेन पालिसी, द गार्डियन, द एटलांटिक, न्यूयार्क टाइम्स ,लि मांडे की खबरों का प्रकाशन एवं समर्थन उक्त कथन के प्रमाण हैं। सैनिक अभियानों की गुप्तचरी कर भारत विरोधी देशों को सौंप कर धनार्जन करना भी इनकी पत्रकारिता है। पृथकतावाद, संप्रदायवाद, जातिवाद ,क्षेत्रवाद और भाषाई पृथकतावाद के साथ आतंकवाद को हवा देना भी इनकी मनोवृत्ति है जो आचार संहिता का उल्लंघन है। सनसनी खेज खबर परोसना और मुखबिरी करना मात्र पत्रकारिता का धर्म नहीं होता।पत्रकारिता रागदरबारी भी नहीं है।

ये सब कुछ संविधान की धारा 19(क) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की ओट में करते हैं।

आज के प्रेस मीडिया विचारधारा के धरातल पर यथास्थितिवादी, प्रगतिवादी, समाजवादी, राष्ट्रवादी ,विश्ववादी में विभाजित है और सत्तावादी मूल्य एवं आचरण इन्हें सर्वाधिक प्रिय हैं।इन्हें भारत तेरे टुकड़े होंगे टुकड़े होंगे जैसे पृथकतावादी नारे भी पसंद हैं।

आजकल कुछ प्रेस –मीडिया शिक्षित –प्रशिक्षित पत्रकारों से नहीं, लिनियर –स्टिंगर से चलते हैं जो विज्ञापन एवं उगाही कर खबर छपवाने में माहिर होते हैं ।ये ब्लैकमेलिंग , फेक न्यूज बनाने और चरित्र हनन में आत्म गौरव अनुभव करते हैं । ये प्रबंध संपादकों के हाथों की कठपुतिली होते हैं जीविकोपार्जन के लिए।इनके प्रेस मीडिया का लक्ष्य छप कर बिकना नहीं, बिक कर छपना है।ये बिकाऊ होते हैं टिकाऊ नहीं।

प्रेस मीडिया के लिए आमजन उपभोक्ता कम उपभोग्य अधिक है ।यह बाजारवाद को बढ़ावा दे कर अधिकतम विज्ञापन से धनार्जन का सशक्त माध्यम है।जीन बाद्री लार्ड के मत में जन संचार के साधन (मास मीडिया)जिस प्रकार वस्तुओं की छवि का निर्माण करते हैं ,वास्तविकता और बाह्याकृति का अंतर धुंधलाता जाता हैऔर उत्तरोतर स्थिति इतनी अस्पष्ट हो जाती है कि वास्तविक अवास्तविक में अंतर नहीं रह पाता।

विद्युतीय मीडिया सामाजिक संबंधों को झुठलाता है ,उन्हें कमजोर बनाता है जो अंततरूसामाजिक वास्तविकता की मात्र नकल या मिथ्यभाषी बन जाते हैं।

मीडिया में सामाजिक ,सांस्कृतिक राजनीतिक और धार्मिक यथार्थ मिथ्याभास है;अतरूसमाज अतियथार्थ (भ्लचमततमंसपजल)का रुप धारण कर लेता है।इस स्थिति में वास्तविकता एवं अनुकृति का भेद समाप्त हो जाता है और मनुष्य यंत्र मानव बनने को अभिशप्त हो जाता है–

यह मनुज जो ज्ञान का आगार
यह मनुज जो सृष्टि का श्रृंगार
छद्म इसकी कल्पना
पाखंड इसका ज्ञान ,
यह मनुष्य मनुष्यता का
घोरतम अपमान।
कुरुक्षेत्र–दिनकर।पृष्ठ–70

यह अलग बात है कि अधिकांश प्रेस –मीडिया खोजी मीडिया के रुप में सच्चाई को उजागर कर राष्ट्रीय स्वत्व , स्वतंत्रता, जनतंत्र और जन हित की संरक्षा– सुरक्षा कर चतुर्थ स्तंभ की भूमिका निभाते हैं और विश्व में भारतीय लोकतांत्रिक गौरव में अभिवृद्धि करते हैं । प्रेस मीडिया आज विदेशी पूंजी निवेश के गिरफ्त में है, लेकिन इसका कर्म मनुष्य मनुष्य को बांटना एवं तोड़ना नहीं ,जोड़ना है, मानव को संस्कृत मानव बनाना है। प्रेस मीडिया का दायित्व गन जन को

नहीं, जनगण को लोकतांत्रिक धरातल पर मजबूत बनाना है ।उसके मानवाधिकार के लिए आवाज बुलंद करना है। समता ,न्याय बंधुत्व और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का मार्ग प्रशस्त करना है और विश्व बंधुत्व की प्रेरक शक्ति बनना है –

श्रेय उसका विश्व में समता विधायक ज्ञान,
स्नेह सींचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण – कुरुक्षेत्र (दिनकर) पृष्ठ 72

विश्वग्राम के निर्माण में प्रेस –मीडिया की अग्रणी भूमिका की अपरिहार्यता है–सर्वोपरि मानव संस्कृत बन

मानवता के प्रति हो प्रेरित,
द्रव्य मान पद यश कुटुब कुल
वर्ग राष्ट्र में रहे न सीमित।
एक निखिल धरणी का जीवन
एक मनुजता का संघर्षण,
अर्थ ज्ञान संग्रह भव पथ का
विश्व क्षेम का करे उन्नयन।
रश्मिबंध, सुमित्रानंदन पंत ,पृष्ठ–101.

भ्रष्टता ,सत्ता –भोग और देश द्रोह से मुक्ति में इसका अद्वितीय योगदान अपेक्षित है।इन्हीं मानवीय आचरणों के फलस्वरुप यह भारतीय जनगण के लिए ये अभिनंदनीय और वंदनीय भी है।देश की समृद्धि एवं उत्कर्ष में महत्वपूर्ण अवदान ही देश प्रेम की पहचान है–

देश प्रेम वह पुण्य पंथ है
अमल असीम त्याग से विलसित
जिसकी दिव्य रश्मियां पाकर
मनुष्यता होती है विकसित।

मीडिया ही राष्ट्रीयता एवं मनुष्यता का प्रहरी है।

डॉ0 सिद्धेश्वर काश्यप
हिंदी सहप्राध्यापक
पी. जी. सेंटर ,सहरसा852201,बिहार।

21

विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में भारतीय वाग्मिता और अस्मिता के स्वर

डॉ0 ललिता कुमारी

सारांश

अपनी रचनाओं में भारतीय वाग्मिता और अस्मिता को व्यंजित हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक नाटककार लघुकथा लेखक, उपन्यासकार स्वर्गीय विष्णु प्रभाकर विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून 1912 में मीरापुर जिला मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेश में हुआ था। इन्हें इनके एक अन्य नाम श्विष्णु दयालश से भी जाना जाता है। इनके पिता का नाम दुर्गा प्रसाद था जो धार्मिक विचारधारा वाले व्यक्तित्व के धनी थे प्रभाकर जी के माता महादेवी पढ़े–लिखी महिला थी जिन्होंने अपने समय में पर्दा प्रथा का घोर विरोध किया था। विष्णु प्रभाकर जी ने कहानी ,उपन्यास ,नाटक, जीवनी, निबंध, एकांकी ,यात्रा वृतांत और कविता आदि प्रमुख विधाओं में अपनी बहुमूल्य रचनाएं की हैं। उन्होंने आकाशवाणी दूरदर्शन पत्र–पत्रिकाओं तथा प्रकाशन संबंधी माध्यमों के प्रत्येक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की थी। देश–विदेश के अनेक यात्राएं करने वाले विष्णु जी जीवन पर्यंत पूर्वकालिक बुद्धिजीवी रचनाकार के रूप में साहित्य साधना में लीन रहे थे।

आजादी के दौर में बजते राजनीतिक बिगुल में उनकी लेखनी का भी एक उद्देश्य बन गया था, जो आजादी के लिए संघर्षरत थी अपने लेखन के दौर में वे प्रेमचंद यशपाल और आगे जैसे महारथियों के सहयात्री भी रहे किंतु रचना के क्षेत्र में उनकी अपनी एक अलग पहचान बन चुकी थी। 1931 में हिंदी मिलाप में पहली कहानी दिवाली के दिन छपने के साथ ही उनके लेखन का जो सिलसिला शुरू हुआ वह जीवन पर्यंत निरंतर चलता रहा नाथूराम शर्मा प्रेम के कहने से वे शरद चंद्र की जीवनी श्आवारा मसीहाश लिखने के लिए प्रेरित हुए, जिसके लिए शरतचंद्र को जानने के लिए लगभग सभी स्रोतों और जगहो तक गए उन्होंने बांग्ला भाषा भी सीखी और जब यह जीवनी छपी तो साहित्य में विष्णु जी की धूम मच गई ।कहानी, उपन्यास ,नाटक, एकांकी, संस्मरण ,बाल साहित्य सभी विधाओं में प्रचुर साहित्य लिखने के बावजूद श्आवारा मसीहाश उनकी पहचान का पर्याय बन गई ।इसके बाद में श्अर्धनारीश्वरश पर उन्हें बेशक साहित्य अकादमी पुरस्कार हिंदी प्राप्त हुआ लेकिन आवारा मसीहा ने साहित्य में उनकी एक अलग ही पहचान पुख्ता कर दी।

विष्णु प्रभाकर जी ने अपना पहला नाटक हत्या के बाद लिखा और हिसार में एक नाटक मंडली के साथ भी कार्यरत हो गए ।इसके पश्चात प्रभाकर जी ने लेखन को ही अपनी जीविका बना लिया आजादी के बाद भी नई दिल्ली आ गए और सितंबर 1955 में आकाशवाणी में नाट्य निर्देशक नियुक्त हो गए जहां उन्होंने 1947 तक अपनी सेवाएं प्रदान की थी। इसके बाद तब सुर्खियों में आए जब राष्ट्रपति भवन में दुर्व्यवहार के विरोध स्वरूप उन्होंने पद्मभूषण की उपाधि वापस करने की घोषणा कर दी विष्णु प्रभाकर जी आकाशवाणी दूरदर्शन पत्र–पत्रिकाओं तथा प्रकाशन संबंधी मीडिया के विविध क्षेत्रों में पर्याप्त लोकप्रिय रहे देश विदेश की अनेक यात्राएं करने वाले विष्णु जी जीवन पर्यंत पूर्णकालिक बुद्धिजीवी रचनाकार के रूप में साहित्य की साधना में लिप्त रहे थे।

विष्णु प्रभाकर जी को बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी कहना न्यायोचित होगा।यह वह व्यक्तित्व है जो साहित्यिक एवं सामाजिक योगदान के लिए अपने आप में आजीवन बेजोड़ रहा है हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में विष्णु प्रभाकर जी का लेखन उच्चतम सीमाओं में अभिव्यक्त हुआ है ,जो विषय वैविध्य के साथ प्रस्तुत होने पर भी अंततः नारी अस्मिता की पुरजोर हिमायत करता नजर आता है उनका व्यक्तित्व आचजीवन तत्वनिष्ठा में बंधा रहा है। मां के आधुनिक विचारों की गहरी छाप विष्णु प्रभाकर जी के व्यक्तित्व पर रही है। उनकी मां की अनन्य साधारणता पर ही परिवार की धुरी ठीक–ठाक संचालित होती थी। वह आधुनिक विचारों की सुशिक्षित महिला होने के कारण ही उनका सामाजिक कुप्रथा ओं का पर्दाफाश किया और नारी अस्मिता एवं उसमें संघर्षशील होने का एहसास दिलाया ।

परिवार की अभावग्रस्त स्थिति में भी विष्णु प्रभाकर जी को उनकी मां ने शिक्षा के विविध सोपानों तक पहुंचने के लिए अथक कष्ट सहे अभावों के कारण वे उच्च शिक्षा से वंचित रहे लेकिन शिक्षा की अधूरी इच्छा को हर किसी प्रकार का कष्ट सहकर हिंदी के विभिन्न उपाधियां प्राप्त किया अपने स्कूली जीवन से ही साहित्य के प्रति एवं लेखन के प्रति लगाव था उनकी पहली कहानी सन 19 37 के शमिलापश में छपी यहीं से उनका लेखन के प्रति अत्यधिक लगाव बढ़ता गया और वे हिंदी साहित्य में अपनी अमिट और स्मरणीय छाप छोड़कर विभिन्न मान सम्मानों के अधिकारी बन गए साहित्य में व्यवसायिक स्तर पर भी लिखते थे श्हत्या के बाद श्नाटक से आपकी यात्रा आरंभ हुई उनका नाटक श्पानी आ गया श्बच्चों की दृष्टि से काफी पसंदीदा नाटक है प्रस्तुत नाटक में बच्चों की चालाकी ,बहाना बनाने की प्रवृत्ति तथा झूठ इस पहचान रहे हैं बच्चों के लिए शिक्षाप्रद काम क्योंकि उन्होंने रचना की हैबोलने की प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति मिली है।

हिंदी नाट्य जगत में मनोवैज्ञानिक एकांकी कार के रूप में भी विष्णु प्रभाकर जी की विशेष पहचान रही है बच्चों के लिए शिक्षाप्रद एकांकियो की उन्होंने रचना की है।

कथा साहित्य में आपका व्यक्तित्व अपनी अनूठी शैली एवं एक ही केंद्रीय विषय पर विभिन्न धरातलो पर प्रस्तुत करने की कला के

कारण बेजोड़ रहा है। विष्णु प्रभाकर जी का पहला उपन्यास श्ढलती रातेश सन 1951 में प्रकाशित हुआ जो आगे चलकर 1955 में श्निशिकांतश शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात 1955 मैं श्तट का बंधन श स्वप्नमयी (1969), कोई तो 1980 श्अर्धनारीश्वरश 1992 श्संकल्पश 1993 श्परछाई तथा दर्पण का व्यक्ति श्आदि रचनाएं प्रकाशित हुई। स्वप्नमयी तथा दर्पण का व्यक्ति को कुछ लोग लंबी कहानियां मानते हैं। प्रो० गोपाल राय मानते हैं कि विष्णु प्रभाकर के उपन्यास में विषय का वैविध्य न के बराबर है नारी नियति की बहुआयामी त्रासदी ही उनके उपन्यासों का केंद्रीय कथ्य हैं ।(गोपाल राय हिंदी उपन्यास का इतिहास पृष्ठ 234) कहना सही होगा कि विषय वैविध्यता में अभाव होने के बावजूद नारी विमर्श की पुरजोर हिमायत विभिन्न रचनाओं के जरिए और विभिन्न धरातलो पर करते रहे विषय वैविध्य चाहे जो भी हो लेकिन उनकी हर रचना मानवतावादी की हिमायत करती है इस बात को स्वीकार करना होगा उनके उपन्यास वर्गीय भेदाभेद मध्यम वर्गीय समाज के नैतिकता तथा आर्थिक व समय को अभिव्यक्ति अवश्य देते हैं ।

विष्णु प्रभाकर जी सदा नए के प्रति आग्रही रहे हैं ।वे नई मूल्य व्यवस्था चाहते हैं। मूल्यों की हिफाजत उनका स्थायी भाव एवं सकारात्मक पक्ष है। विशाल धरने के प्रति आज रही रहे हैं हमें नई मूल्य व्यवस्था चाहते हैं मूल्यों की हिफाजत उनका स्थाई भाव एवं सकारात्मक पक्ष ने के प्रति असीम आस्था के संस्कार उन्हें अपनी मां से विरासत के रूप में मिले हैं इन्हीं संस्कारों की पूंजी पूरे समाज के लिए आजीवन वाटते रहे संघर्ष उनके स्थाई भाव का पहलू है उनका साहित्य जीवन के प्रति आस्थावान तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की क्षमता देकर चेतना जागृति का प्रयास करता है उनके उपन्यास साहित्य का मुख्य स्वर नारी जीवन के अंतर शिवम वाया संघर्षों के विभक्ति देता है उनके उपन्यासों में वह संघर्ष की अपेक्षा आंतरिक संघर्ष व्याकुलता पीड़ा बहु आयामी त्रासदी का हृदय द्रावक चित्रण हुआ है। उनकी रचनाओं में विभिन्न समस्याओं से ग्रसित नारी का चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है। परित्यक्ता, विधवा, दहेज, अनमेल विवाह, यौन वासना ,बलात्कार पति की बेमन चाह आदि की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है।

ढलती रात उपन्यास जो बाद में निशिकांत शीर्षक से प्रकाशित हुआ मानवतावाद की बेबाकी के साथ हिमायत करता है। प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों में संघर्ष के बीज विद्यमान हैं मानवता के लिए समर्पण इनके केंद्र में है इस उपन्यास में निम्न मध्यम वर्गीय युवक का आत्म संघर्ष चित्रित हुआ है। यह युवक जाति धर्म के बीच की दीवारों को तोड़ते स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने संबंधी दद्व कों प्रस्तुत करता है। लेखक विष्णु प्रभाकर जी अपने पात्रों को निरंतर गतिशील एवं संघर्षरत रखने में माहिर रहे हैं ष्नदी मुक्त है तभी उसमें पवित्रता होती है तालाब बंद है, तभी वह सडता है ,समय और काल में अंतर है। नियम के प्रति अनियमितता विद्रोह नहीं आना चार पाप है, पर आचार को जाने बिना उसके नियमों का पालन करना अनाचार से भी बुरा है (विष्णु प्रभाकर– निशिकांत, पृष्ठ 146) द्रष्टवय कथन से विदित होता है कि लेखक अपने पात्रों को स्वतंत्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं ।तालाब का बहुत अच्छा सा उदाहरण देकर गतिशीलता के नियम तथा उसके परिणाम को रेखांकित किया है ।विष्णु प्रभाकर जी का मानना है कि यदि युवा पीढ़ी को, उनके स्वच्छंद विचारों को रोकने का प्रयास किया जाता है, उन्हें अभिव्यक्ती स्वातंत्र्य से उपेक्षित रखा जाता है तो निश्चित हमारी व्यवस्था भी तलाक के बंद पानी जैसी होगी। कहीं अन्याय होता है तो वह पात्रों को अन्याय के विरुद्ध लड़ने की सलाह देते हैं और मानते हैं कि अधिकारों की प्राप्ति के लिए लड़ी गई लड़ाई विद्रोह नहीं बल्कि व न्याय की लड़ाई है।

पुरानी विवाह व्यवस्था पर भी लेखक पर तीखा व्यंग प्रहार किया है। वे परंपरागत विवाह के बदले प्रेम विवाह की महत्ता बताते हुए उसकी हिमायत करते हैं लेखक चाहते हैं कि प्रेम विवाह से ही जातिगत जकड़नों को तोड़ा जा सकता है और दोनों की दूरियों को कम किया जा सकता है ।प्रस्तुत उपन्यास का नायक जाति पाति एवं धार्मिक बंधनों से मुक्ति की तलाश के लिए संघर्ष करता है।ष सुरैया, सुरैया रहकर मेरी पत्नी होगी, अन्यथा नहीं। सुमित्रा और सावित्री मेरी जाति से कम नहीं। (विष्णु प्रभाकर निशिकांत पृष्ठ 193) कहना अनावश्यक नहीं कि कांत माता पिताओं के अनावश्यक बंधनों को खारिज करना चाहता है। वह हमारी पुरानी मानसिकता में बंधी सुमित्रा –सावित्री के पुरूषा धीन संस्कृति का विरोध करते हुए जातिगत दूरियों को कम करने के लिए वह अंतरजातीय प्रेम विवाह को महत्व देता है डॉक्टर मोहन लाल रत्नाकर कहते हैं– षनिशिकांत का मूल स्वर मानवतावादी रहा है। (डॉक्टर मोहन लाल हिंदी उपन्यास दंद्व एवं संघर्ष पृष्ठ 201) इससे स्पष्ट होता है कि कांत के जरिए लेखक जातीय भेदा भेद की नीति में परिवर्तन की कामना करता है अंतर्जातीय विवाह को स्वीकार कर धार्मिक बुरी प्रथा– परंपराओं को तिलांजलि देने में ही उसका मानवीय पक्ष उभरकर आता है।

तट के बंधन में अमानवीय नारी बंधनों से मुक्ति की तलाश है इसमें नारी विषयक विभिन्न समसामयिक एवं प्रासंगिक पक्षों को उठाया है। विभिन्न समस्याओं को वर्तमान परिदृश्य में प्रस्तुत करना लेखक विष्णु प्रभाकर जी की दूरदर्शिता का उत्कृष्ट नमूना है प्रस्तुत उपन्यास की मांलती ,नीलम शीला एवं सरला विभिन्न स्तरों पर संघर्ष करती हैं। यह सभी नारी पात्र हमारी आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना उसका स्थाई भाव बना है नीलम डाकू प्रसंग, मालती दहेज पीड़ा, शीला को उसका पति नहर में धकेल देता है सरला को पति की

हत्या में जबरन अपराधी बनाया जाता है। ये नारी पात्र अपनी दुर्गा शक्ति का परिचय देते हुए कहती है –कोई क्या कल्पना कर सकता है कि वह छुईमुई नीलम एक दिन अपनी शक्ति पा लेगी आदमी के अंदर सब कुछ है, केवल उसे इस तथ्य को जानना है। तब उससे शक्तिशाली इस संसार में कोई नहीं, विधाता भी नहीं । (विष्णु प्रभाकर तट के बंधन, पृष्ठ 189) कहना गलत ना होगा कि पुरुष प्रधान संस्कृति में भी विष्णु प्रभाकर जी ने गोपाल की उक्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है जो निश्चित ही प्रशंसनीय बात है ।लेकिन नारी और लेखक एक सुझाव देना चाहता है कि उन्हें अपनी शक्ति का एहसास होना जरूरी है । यदि नारियां अपनी शक्ति से भलीभांति परिचित होती हैं तो वह किसी संकट का निडरता के साथ सामना कर सकती हैं।

विष्णु प्रभाकर जी का श्कोई तोश यह वह उपन्यास है जो नारी प्रधानता की चरम सीमा है प्रस्तुत उपन्यास में लेखक पुरानी मान्यताओं का विरोध करता है। लेखक मध्यम वर्गीय समाज की रूढ़िवादी एवं पुरानी मान्यताओं को अपने विकास में रोड़ा मानते हैं ।आज भी भारतीय समाज पुरानी रुढियों की जकड़नों से मुक्त नहीं है। श्कोई तोश में लेखक ने ऐसे पात्रों की सृष्टि की है जो पुरानी मान्यताओं के खिलाफ बेबाकी के साथ लड़ती हैं। विष्णु प्रभाकर जी ने सुनीता, विभा , राजमती यामला, शाहिदा, रमा तथा किरण आदि नारी पात्रों में वह शक्ति भर दी है जो पुरानी मूल्यों को तिलांजलि तथा नए मूल्यों को सहर्ष स्वीकार करने की क्षमता रखती है। यह नारी पात्र परिवर्तनशील समाज की कामना करते हैं। साथ में यह धर्म जाति व्यवस्था पुरुष प्रधान भोगवादी मानसिकता, सड़ी गली व्यवस्था पुरुषों की भोगवादी दृष्टि, स्त्री के साहस का अभाव ,गर्भधारण तथा बलात्कार आदि समस्याओं का उद्घाटन हुआ है। इन समस्याओं के समाधान के लिए नारी पात्र संघर्षरत दिखाई देते हैं। नारी पात्र विद्रोही बनते नहीं बल्कि उन्हें परिस्थिति के कारण विद्रोही बनना पड़ता है मध्यम वर्गीय समाज के विचौलियों एवं ठेकेदारों की कुप्रवृत्तियों के कारण ये लड़कियां क्रांतिकारी एवं संघर्षशील बन जाती हैं ।

उपन्यास की नायिका वर्तिका है जो लेखन के क्रांतिकारी विचारों का प्रवर्तन करती है। वह अपने माता पिता जी के साथ काम करने वाले मुस्लिम जाति के सहकर्मी के बेटे असद के साथ परीक्षा फीस जमा करने हेतु देहरादून से ग्वालियर तक यात्रा करती है। वस्तुतः वर्तिका और असद का एक साथ यात्रा करना कोई अनुचित बात नहीं है लेकिन हिंदू समाज के पूर्व क्रूर ठेकेदार हिदू लड़की को मुसलमान लड़के के साथ देखकर खौफनाक बन जाते हैं। और दोनों को एक दूसरे से अलग कर देते हैं । साथ ही यही हिंदू समाज मुस्लिम व्यक्ति के साथ भागने का आरोप करता है और उसके निर्मल चरित्र पर कलंक पोतता है । वर्तिका के माता पिता का कहना था कि वह यह बात किसी से ना कहे और विवाह कर ले ।लेकिन वर्तिका इस कलंक को छिपाना नहीं चाहती वह कलंकित धब्बे के आरोप का पर्दाफाश करना चाहती है। यही से उसका संघर्ष शुरू होता है। नारी अस्मिता एवं स्वाभिमान को तिलांजलि देकर किसी पुरुष का प्यार पाना वह नहीं चाहती वर्तिका द्वारा नारी मुक्ति के लिए उठाया गया यह कदम उस दीपक के समान है जो खुद जलकर दूसरों को प्रकाश देता है।

वह असहय दूखो को सहते हुए समाज की कड़वी मानसिकता का विरोध करते हुए कहती है – मैं पुरान पंथी नहीं हूं ।नारी मुक्ति का पूर्ण समर्थन करती हूं, उसे छिपाना नहीं चाहती। समाज की जड़ नीति नियमों पर आघात करने के लिए यह आवश्यक है।(विष्णु प्रभाकर कोई ता पृष्ठ 58) कहना सही होगा कि वर्तिका आम युवतियों का प्रतिनिधित्व करते हुए मध्यम वर्गीय समाज के ठेकेदारों को सचेत करना चाहती है कि नारी अबला नहीं सबला बनी है उसने दुर्गा का रूप धारण किया है डॉ राम दरश मिश्र का कहना सही है कि इसमें समाज और पुरुष से प्रताड़ित अनेक नारियों की व्यथा –कथा है और उस के माध्यम से पुरुष समाज के कुरूप चेहरे पर नकाब हटाया है। (रामदरश मिश्र हिंदी उपन्यास में अंतयात्रा पृष्ठ 174) उपन्यास की नायिका वर्तिका को उक्त आरोपों के कारण वर की खोज करनी पड़ती है ,वह दक्षिणी नारायण से शादी करती है, जिसका जीवन की त्रासदी पूर्ण गुजरा था। डॉ राजलक्ष्मी नायडू कहती हैं –मुसलमान युवक असद के साथ भाग जाने के झूठे अफवाह के कारण वर्तिका को जीवनसाथी की खोज में भटकना पड़ता है।

संक्षेप में कहना सही होगा कि विष्णु प्रभाकर जी ने वर्तिका के माध्यम से जातिभेद वर्गीय मानसिकता परंपरागत रूढ मान्यताएं एवं मध्यम वर्ग की अपनी मानसिकता के खिलाफ संघर्ष करने की चेतना जागृत की है लेखक ने समाज का सृजन चाहता है वह चाहता है कि उक्त रूढ मान्यताएं समाज विकास में बहुत बड़ा विरोध है नए मानवीय मूल्यों के प्रति समाज में आस्था जगाने का प्रयास भी विष्णु प्रभाकर जी ने किया है वर्तिका और नारायण से यह बात उभर कर आती है।

निष्कर्ष––

अंततः यह कहा जा सकता है कि विष्णु प्रभाकर जी का व्यक्तित्व बहुआयामी तथा कृति पक्ष बेजोड़ रहा है। परिवेश एवं अनुभव जगत का लेखा–जोखा ही उनका व्यक्तित्व है। समाज के दलित वर्ग तथा अभावग्रस्त पात्रों को अभिव्यक्ति देकर उनमें नई चेतना जागृत की है उनकी अत्याचार तथा बलात्कार पीड़ित पात्र अन्याय को सहने की मानसिकता में नहीं है बल्कि नए सिरे से लड़ने

का साहस उठाते हैं लेकिन व्यक्तिगत वैविध्य होने के बावजूद कहना न्यायोचित होगा कि विष्णु प्रभाकर जी ने नारी अस्मिता तथा नारी मुक्ति की कामना को केंद्र में रखकर हिंदी साहित्य में अपनी अमिट छाप छोड़ी है जो हिंदी दुनिया के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि माननी होगी ।उनकी हर रचनाएं विभिन्न समस्याओं की प्रस्तुति के साथ किसी न किसी रूप में नारी विमर्श की विवेक पहल करती है।

संदर्भ

1 विष्णु प्रभाकर, निशिकांत, पृष्ठ– 146

2. वही, पृष्ठ,– 193

3. डॉक्टर मोहन लाल रत्नाकर– हिंदी उपन्यासरू दद्व एवं संघर्ष, पृष्ठ– 201

4. विष्णु प्रभाकर– तट के बंधन, पृष्ठ –189

5. विष्णु प्रभाकर– कोई तो, पृष्ठ– 58

6. डॉ रामदरश मिश्र– हिंदी उपन्यासरू एक अंतर यात्रा य पृष्ठ– 174

7. डॉ राजलक्ष्मी नायडू– विष्णु प्रभाकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 103

डॉ0 ललिता कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग

आरके डीएफ विश्वविद्यालय रांची,

झारखंड,मो०न०–8969330114

22

राष्ट्र पिता महात्मा गांधी का वैशिष्ट्य
(गांधी जयंती 2 अक्टूबर एवं पुण्य तिथि 30 जनवरी पर विशेष)

डॉ0 राजीव कुमार

सारांश

तू कोलोदधि का महास्तंभ,
आत्मा के नभ का तुंग केतु,
बापू तू मर्त्य –अमर्त्य,
स्वर्ग–पृथ्वी, भू–नभ का महा सेतु।
तेरा विराट यह रूप,
कल्पना पट पर नहीं समाता है,
जितना कुछ कहूं, मगर कहने
को शेष बहुत रह जाता है।
राष्ट्र कवि दिनकरः बापू

नीति कहती है कि कहने को शेष बहुत रह जाता है, वही शक्स विशेष हो जाता है।राष्ट्र पिता महात्मा गांधी ऐसे ही इंसान थे, जिनके बारे में सब कुछ नहीं कहा जा सकता है।

किसी को समय बडा बनाता है और कोई समय को बडा बना देता है।कुछ लोग समय का सही मूल्यांकन करते हैंऔर कुछ लोग आने वाले समय का पूर्वाभास पा जाते हैं। कुछ लोग अतीत को परत दर परत तोड़कर उसमें वर्तमान के लिए ऊर्जा एकत्र करते हैं और कुछ लोग वर्तमान की समस्याओं से घबराकर अतीत की ओर भाग जाते हैं।राष्ट्र पिता महात्मा गांधी एक ऐसे ही युग पुरुष थे,जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समय को बड़ा बना दिया और वर्तमान की समस्याओं से कभी मुंह नहीं मोड़ा अपितु समस्याओं पर विजय प्राप्त कर उनपर कामयाबी का झंडा बुलंद किया।

गांधी जी का सपना था स्वराज और सुराज।स्वराज 15 अगस्त 1947 को प्राप्त हो गया, लेकिन सुराज का सपना अभी भी अधूरा है। सुराज अर्थात् सुशासन और आत्मनिर्भरता। सबका विकास और सबके लिए प्रकाश। गांधी जी ने स्वतंत्रता के लिए सत्य और अहिंसा को अपना अमोघ अस्त्र बनाया था ।खादी को स्वदेशी उत्पादन का मूलाधार बताया।स्वाधीनता संग्राम के दिनों में देश का नेतृत्व करते हुए महात्मा गांधी ने स्पष्ट शब्दो में कहा था कि राष्ट्र का विकास ग्रामों से ही किया जा सकता है और गांव के परम्परागत हस्त शिल्प उद्योगों के बिना ग्रामीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।गांधी जी कहा करते थे कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है।उनके समय तक भारत के अधिकांश हस्त शिल्प उद्योगों का ब्रिटिश वाणिज्य नीति के कारण पतन हो रहा था।गांव गाँव में बनने वाले सूती और रेशमी कपड़ों की मांग पर विदेशी कपड़ो का प्रभाव फैल रहा था।सारे संसार को औद्योगिक ग्रामीण सामग्री का निर्यात करने वाला भारत, जब अपने ही बाजारों में इगंलैंड के कारखानों में बनी वस्तुओं को खरीदने के लिए मजबूर कर दिया गया था,तब महात्मा गांधी ने खादी की परिकल्पना समाने रखी।यह कोई नयी चीज नहीं थी।खादी के कपड़ें सदियों से भारतीय ग्राम शिल्प का हिस्सा बनकर व्यवहार में आते थे।इसी से महात्मा गांधी ने कहा कि हर गांव का पहला काम अपनी जरूरत की तमाम चीजें खाने के लिए अनाज और कपड़े के लिए कपास पैदा करना है।अपने गांव में उत्पन्न कपास को खादी के रूप में देश के कोने कोने में पहुचाने में असमर्थ देशवासियों के लिए महात्मा गांधी ने खादी का अखिल भारतीय मंत्र समूचे देश को दिया।

खादी का मंत्र भारत के समग्र विकास का हिस्सा बने, इसे ध्यान में रखकर ही गांधी जी ने ग्राम विकास और ग्राम समाज की कल्पना की थी।खादी कार्यकर्ताओं को सलाह देते हुए उन्होंने कहा था
कातो समझ बुझकर कातो
जो काते सो पहने
जो पहने सो काते।
सूत कातने में श्रम और आत्मनिर्भरता का बोध है।

इन पंक्तियों से संकेत मिलता है कि महात्मा गांधी ने सूत कातने की परम्परा के साथ ग्रामीण जीवन की आदतों का एकीकरण किया।जो कातेगा वहीं पहनेगा और जो पहनना चाहता है उसे कातना भी पड़ेगा।खादी की परिकल्पना इसी संकल्प के साथ सामने आयी कि अपनी दैनिक जरूरतों के लिए लोग अपने संसाधनों पर ध्यान दें।खादी के साथ आर्थिक विकास का सीधा संबंध जोड़ते हुए महात्मा गांधी ने खादी को तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन का अविभाज्य हिस्सा बना दिया।शायद ही कोई राष्ट्रीय नेता हो,जिसने उन दिनों चरखा न चलाया हो।चरखा आंदोलन तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन का महत्वपूर्ण अंग था।हर नगर, हर गांव,हर घर में उन दिनो चरखे चल रहे थे।चरखे की आवाज के साथ खादी ने ग्रामीण विकास को एक नया और व्यवस्थित आकार प्रदान किया।

सेवा,सहकार, संकल्प, स्वदेशी ,स्वराज्य, सुराज, स्वनियोजन गांधी जी के मूल मंत्र थे।उन्होंने हरिजन में लिखा है कि मुझे इसमें जरा भी संदेह नहीं कि हमारे हिन्दुस्तान जैसे देश में ,जहाँ लाखों आदमी बेकार पड़े हैं,लोग इमानदारी के साथ अपनी रोजी कमा सकें।इसके लिए उनके हाथ पैरों को किसी न किसी काम में लगाए रखना जरुरी है।खादी और कुटीर उद्योग उनके लिए आवश्यकता है।मेरे लिए यह बात सूर्य प्रकाश की भांति स्पष्ट है कि इन उद्योगों की आज सख्त जरूरत है।

गांधी के समय से लेकर अब तक भारत के 3 लाख से अधिक गांवों में खादी ने एक व्यवस्थित विकास यात्रा की है।खादी ने भारत

की स्वाधीनता के प्रारंभिक दशकों में अपनी धीमी शुरूआत की ,लेकिन आज गांधी जी का सपना साकार होने लगा है। सामुदायिक विकास के हर चरण पर खादी ने राष्ट्रीय विकास धारा मेंअपने को स्थापित किया है।यही कारण है कि जिस खादी का व्यवहार आजादी के पहले, आजादी के प्रारंभिक वर्षों में केवल राजनीति से जुड़े हुए लोग करते थे,आज वह जन साधारण की पोसाक बन गई है।क्रमशः समूचे देश के सामने उजागर हो गया है कि खादी के बारे में गांधी जी की परिकल्पना बहुत सही थी।उन्होंने न केवल इसे स्वाधीनता आंदोलन से जोड़ा बल्कि इसे देश की आत्मनिर्भरता का आधार भी बतलाया। देश के आर्थिक विकास के लिए खादी को आत्मनिरीक्षण और आत्म सुधार का माध्यम घोषित करते हुए महात्मा गांधी ने गांवों के विकास की धारा आरंभ करने पर बल दिया था।उनके अनुसार गांव की तरक्की के बिना देश का विकास संभव नहीं।इसके लिए आवश्यक है कि गांव गांव मे हस्त शिल्प उद्योगों का विकास और प्रसार हो।खादी और उससे जुडे हस्त शिल्पों ने गांव की विकास यात्रा को क्रमशः पल्लवित किया है।यह खादी के वर्तमान स्वरूप से लक्षित होता है।लेकिन अभी भी गांधी जी का सपना पूरी तरह साकार नहीं हो सका है।उन्होंने खादी को विकास की मुख्य धारा का प्रकाश स्तंभ बनाने पर बल दिया था।अभी भी खादी और उससे जुड़े ग्रामीण हस्त शिल्प में विकास और प्रचार की आवश्यकता है।ऐसे भारतीय नागरिकों की मानसिकता को तैयार करना बड़ी चुनौती है,जो राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर खादी को अपनावें।इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए औद्यौगिक चकाचौंध के दौर में खादी से जुड़ना एक महत्वपूर्ण संकल्प होगा।आइए हम सब मिलकर महात्मा गांधी के सपनो को साकार करने के लिए खादी अपनाने का व्रत लें।

डॉ0 राजीव कुमार
एम काम,(प्रथम श्रेणी बेट उत्तीर्ण)
शोध छात्र,वाणिज्य एवं प्रबंधन विभाग
राची विश्वविद्यालय, रांची
चलभाषः9835575835

23

मानव अधिकार विशेषकर भारतीय संदर्भ में : एक अवलोकन

डॉ0 ममता वालिया

सारांश

मानव अधिकार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक ज्वलन्त विषय के रूप में परिलक्षित हो रहा है। समाज, विश्व एवं मानव समुदाय हेतु अधिकार की महत्ता एवम् आवश्यकता अत्यंत परिहार्य है। अधिकार जीवन निर्वहन हेतु, सामाजिक सामंजस्य, सतत विकास, आत्म सम्मान आदि संदर्भ में अपनी भूमिका को सिद्ध करता रहा है। अधिकार के साथ–साथ कर्त्तव्य उसी संदर्भ में अपने आप को दृष्टव्य करता है। अधिकार एवं कर्त्तव्य एक दूसरे के पूरक हैं। अधिकार के बिना कर्तव्य कर पाना मुश्किल है। कर्तव्य के बिना अधिकार जताना अनुचित है। कर्तव्य व अधिकार परस्पर एक दूसरे की सिद्धि का माध्यम है।

तथापि वर्तमान सामाजिक परिदृश्य को दृष्टिगत करें तो मानवीय मूल्य अति आवश्यक है। समाज, देश व काल में मानवीय मूल्यों की क्षीणता होती जा रही है। मानवीय मूल्य एवं कल्याण के स्थान पर "लाभ" प्रत्येक कार्य का आधार हो गया है। विभिन्न क्षेत्रों में अत्यधिक विकास के उपरांत भी जीवन, स्वतंत्रता एवं मानव गरिमा के अधिकार पर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। मनुष्य का जीवन साधन संपन्न होने के बावजूद भी वह मानसिक कुंठा एवं एकाकीपन से ग्रसित होता जा रहा है।

भौतिकवादी सुखोन्मुखी जीवन प्रवृत्ति एवं दृष्टिकोण के कारण, नैतिक पतन के कारण, सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के अवमूल्यन के कारण, अर्थलोलुप्ता एवं कृत्रिमता के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण, अनैतिक विचारधारा तथा असंतोषी स्पर्धा में लिप्त मुल्यविहिन जीवन हेतु मौलिक अधिकारों की आवश्यकता व महत्त्व बढ़ गया है।

उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण के माध्यम से दुनिया ने भौतिक एवं आर्थिक प्रगति की है। वही मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन भी हो रहा है। बाजारों उन्मुखी प्रतिस्पर्धात्मक और उन्मुक्त अर्थव्यवस्था ने पर्यावरण विनाश किया है। पर्यावरण असंतुलन, सामाजिक बिखराव एवं सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव के कारण परिस्थितियां विषम हो रही है। मानव अधिकारों का उल्लंघन उसी समय रोका जा सकता है, जहां मानव गरिमा एवं मूल्य की अभिवृद्धि के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति एवं संकल्प हो। प्रदत मानव अधिकार निर्धनता, अशिक्षा एवं अनभिज्ञता के कारण अर्थहीन है। मानव अधिकारों से तात्पर्य उन अधिकारों से है जो मानव को मानव होने के अभिप्राय से मिलते हैं। मानव अधिकार मानव के रूप में अपना अस्तित्त्व कायम रखने के लिए तथा व्यक्तित्व निर्माण के लिए अनिवार्य होते हैं। भारत के मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 2 में मानव अधिकारों की परिभाषा दी गई है। इस परिभाषा के अनुसार मानव अधिकार का अर्थ है मानव की जीवन स्वतंत्रता समानता और गरिमा संबंधी व अधिकार जो संविधान और अंतरराष्ट्रीय अभिसमयो के अंतर्गत प्रदत्त है। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम की इसी धारा में अंतरराष्ट्रीय अभिसमयो की परिभाषा दी है। इस परिभाषा के अनुसार इसमें नागरिक और राजनीतिक अधिकार अभिसमय तथा आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार अभिसमय आते हैं। जब हम इन दोनों अभिसमयो की बात करते हैं तो इनका आधार तो संयुक्त राष्ट्र की मानव अधिकार संबंधी सार्वभौमिक घोषणा है, जो 10 दिसंबर 1940 में घोषित की गई थी।

इसी अवधारणा को दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि प्रत्येक समाज राष्ट्र और उसकी सरकारों का यह कर्तव्य है कि वह मानव की समग्र विकास के लिए उपाय करें। जीने का अधिकार यदि मनुष्य का नैसर्गिक अधिकार है तो गौरव गरिमा के साथ जीने का अधिकार अत्यंत मौलिक है। शिक्षा का अधिकार, समानता और स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिकार इन सभी अधिकारों का उद्देश्य यही है कि मानव गरिमा के साथ जी सके। गरिमा के जीवन जीने के लिए मनुष्य को आजीविका का अधिकार भी होना चाहिए।

स्वतंत्र भारत में अपने समृद्ध सांस्कृतिक मूल्यों तथा संयुक्त राष्ट्र से राष्ट्र की सार्वभौमिक उद्घोषणा में प्रतिपादित मानव अधिकारों को दृष्टिगत रखते हुए जिस संविधान का निर्माण किया, वह मानव अधिकारों के अनोखे दस्तावेज के रूप में परिलक्षित होता है। मानवाधिकारों के सभी रूपों को भारत के संविधान में मूल अधिकारों और राज्यों के नीति निर्देशक तत्वों में समाहित कर दिया। वैसे भी भारत का संविधान भारत की सभ्यता, संस्कृति और शासन व्यवस्था का दर्पण है। उसकी प्रस्तावना में ही जन–जन की जिन आकांक्षाओं और संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति हुई है, उसके सभी शीर्ष न्याय, स्वतंत्रता, बंधुता, व्यक्ति की गरिमा, गूढ़ दार्शनिक भावों के वाहक है। सर्वविदित है कि संविधान के भाग 3 में प्रदत्त नागरिकों के मूल अधिकार लोकतंत्र के आधारशिला है। इन्हें न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय माना गया है। संविधान के भाग 4 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व चाहे न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है, किंतु देश की शासन व्यवस्था में वह मूलभूत है। सुविख्यात विधिवेता ऑस्टिन ने भारत के संविधान में प्रतिपादित ऐसे सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए कहा है कि **"भारत का संविधान प्रथमतः और सर्वोपरी रूप में एक सामाजिक दस्तावेज है। इसके अधिकांश उपलब्ध या तो प्रत्यक्षतः सामाजिक क्रांति के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक दिशाओं की**

स्थापना करते हुए सामाजिक क्रांति के लक्ष्य को आगे बढ़ाते हैं या फिर संपूर्ण संविधान में राष्ट्रीय पुनर्जागरण का लक्ष्य व्याप्त होते हुए भी सामाजिक क्रांति के लिए वचनबद्धता प्रदान करते हैं। मूल अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक तत्व सुधार की आत्मा है"

मौलिक अधिकार भारत के संविधान के तीसरे भाग में वर्णित भारतीय नागरिकों को प्रदान किए गए वे अधिकार हैं जो सामान्य स्थिति में सरकार द्वारा सीमित नहीं किए जा सकते हैं और जिनकी सुरक्षा का प्रहरी सर्वोच्च न्यायालय है। ये अधिकार सभी भारतीय नागरिकों की नागरिक स्वतंत्रता प्रदान करते हैं जैसे सभी भारत के लोग, भारतीय नागरिक के रूप में शान्ति के साथ समान रूप से जीवन व्यापन कर सकते हैं।

इन **मौलिक अधिकारों** को संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक वर्णित किया गया है–

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22)
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से 24)
4. धार्मिक समानता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28)
5. संस्कृति और शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 29 से 30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद –32 से 35)

समानता का अधिकार – अनुच्छेद 14 से 18

अनुच्छेद 14 :– विधि के समक्ष समानता

अनुच्छेद 15 :– जाति धर्म लिंग स्थान जन्म के स्थान के आधार पर भेदभाव निषेध

अनुच्छेद 16 :– सरकारी लोक नियोजन व सरकारी नौकरियों में अवसर की समानता

अनुच्छेद 17 :– अस्पृश्यता का अंत

अनुच्छेद 18 :– इस अनुच्छेद द्वारा बिट्रिश सरकार द्वारा दी गई उपाधियों का अंत कर दिया गया। सिर्फ शिक्षा एवं रक्षा में उपाधि देने की परंपरा कायम रही।

स्वतंत्रता का अधिकार – अनुच्छेद 19 से 22

अनुच्छेद 19 :–

- वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
- शांतिपूर्वक और निरायुद्ध सम्मेलन का अधिकार
- संगम संघ या सहकारी समितियां बनाने का अधिकार
- भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार
- भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भी भाग में बस जाने या निवास करने का अधिकार
- कोई भी वृत्ति व्यापार या कारोबार करने का अधिकार

अनुच्छेद 20 :– अपराध के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

अनुच्छेद 21 :– प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता

अनुच्छेद 21। :– निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (86 वा संविधान संशोधन 2002)

अनुच्छेद 22 :– कुछ विशेष परिस्थितियों में गिरफ्तारी के संबंध में संरक्षण

शोषण के विरुद्ध अधिकार – अनुच्छेद 23 से 24

- अनुच्छेद –23 मानव दुर्व्यापार एवं बलात श्रम का निषेध
- अनुच्छेद 24 कारखानों आदि में बालिकाओं के नियोजन का निषेध

धार्मिक समता का अधिकार – अनुच्छेद 25 से 28

- अनुच्छेद 25 अंतःकरण निर्बाध रुप से धर्म को मानने की स्वतंत्रता
- अनुच्छेद 26 धार्मिक कार्यों के नियोजन करने की सरलता
- अनुच्छेद 27 धार्मिक कार्यों की अभिवृद्धि हेतु करों के संदाय से स्वंत्रता
- अनुच्छेद 28 राज्य के शिक्षण निकायों में किसी भी धर्म विशेष की शिक्षा नहीं दी जाएगी

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार – अनुच्छेद 29 से 30

- अनुच्छेद 29 अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण
- अनुच्छेद 30 स्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार

संवैधानिक उपचारों का अधिकार – अनुच्छेद 32 से 35

डॉ० भीमराव अंबेडकर जी ने संवैधानिक उपचारों के अधिकार (अनुच्छेद 32–35) को 'संविधान का हृदय और आत्मा' की संज्ञा दी थी सांवैधानिक उपचार के अधिकार के अन्दर 5 प्रकार के प्रावधान हैं–

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण : बंदी प्रत्यक्षीकरण द्वारा किसी भी गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायालय के सामने प्रस्तुत किये जाने का आदेश जारी किया जाता है। यदि गिरफ्तारी का तरीका या कारण गैरकानूनी या संतोषजनक न हो तो न्यायालय व्यक्ति को छोड़ने का आदेश जारी कर सकता है।

2. परमादेश : यह आदेश उन परिस्थितियों में जारी किया जाता है जब न्यायालय को लगता है कि कोई सार्वजनिक पदाधिकारी अपने कानूनी और संवैधानिक कर्तव्यों का पालन नहीं कर रहा है और इससे किसी व्यक्ति का मौलिक अधिकार प्रभावित हो रहा है।

3. निषेधाज्ञा : जब कोई निचली अदालत अपने अधिकार क्षेत्र को अतिक्रमित कर किसी मुकदमें की सुनवाई करती है तो ऊपर की अदालतें उसे ऐसा करने से रोकने के लिए 'निषेधाज्ञा या प्रतिषेध लेख' जारी करती हैं।

4. अधिकार पृच्छा : जब न्यायालय को लगता है कि कोई व्यक्ति ऐसे पद पर नियुक्त हो गया है जिस पर उसका कोई कानूनी अधिकार नहीं है तब न्यायालय 'अधिकार पृच्छा आदेश' जारी कर

व्यक्ति को उस पद पर कार्य करने से रोक देता है।

5. उत्प्रेषण रिट : जब कोई निचली अदालत या सरकारी अधिकारी बिना अधिकार के कोई कार्य करता है तो न्यायालय उसके समक्ष विचाराधीन मामले को उससे लेकर उत्प्रेषण द्वारा उसे ऊपर की अदालत या सक्षम अधिकारी को हस्तांतरित कर देता है।

जब भी किसी अभियुक्त को पुलिस हिरासत में रखा जाए, तो मानव गरिमा का ध्यान रखा जाएगा। उच्चतम न्यायालय ने निरूद्ध व्यक्ति के प्रति उचित व्यवहार व चिकित्सा सुविधा देने के निर्देश दिये हैं। हिरासत में मारपीट व यातना की घटनाएँ मानवाधिकार सम्बन्धी निर्देशों का विरोध करते हैं। इस सम्बन्ध में प्रमुख निर्देश निम्नलिखित हैं–

(प) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20 (3) के अनुसार किसी अपराध के लिए अभियुक्त व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। इसका अर्थ यही है कि संस्वीकृति के लिए सख्त रवैया नहीं अपनाया जायेगा।

(पप) सिविल और राजनीतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय करार के अनुच्छेद 7 के अनुसार किसी व्यक्ति को यातना के या क्रूर, अमानवीय और निम्नकारी सजा के अधीन नहीं रखा जाएगा।

(पपप) भारतीय दण्ड संहिता में धारा 330 व 331 में किसी अभियुक्त से संस्वीकृति करवाने व अपराध के बारे में जानकारी लेने या सम्पत्ति बरामद करवाने के लिए मारपीट करने को दण्डनीय बनाया गया है। धारा 330 के उदाहरण (क) व (ख) पुलिस अधिकारी द्वारा यातना देकर संस्वीकृति कराने व चुराई गई सम्पत्ति बताने के लिए मजबूर करने बावत ही है।

अभियुक्त को अदालत में कानूनी रूप से प्रतिरक्षा करने का हक है। संविधान का अनुच्छेद 22 (1) यह उपबंध करता है कि गिरफ्तार व्यक्ति वकील से सलाह करने और उसके द्वारा प्रतिरक्षा प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जायेगा। धारा 303 के अनुसार अभियुक्त उसका यह अधिकार होगा कि उसके पसंद के प्लीडर द्वारा उसकी प्रतिरक्षा की जाये। धारा 207 प्रावधान करती है कि न्यायालय प्रत्येक रिकार्ड की एक प्रतिलिपि अभियुक्त को अविलंब निःशुल्क देगा।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1957 में कैदियों के मानवाधिकार सुनिश्चित करने के लिए स्वीकृत किये गये। महत्त्वपूर्ण मानवाधिकार नियम निम्नांकित हैं।

(प) कैदियों को पढ़ने के लिए पुस्तकें दी जायेगी।

(पप) कैदियों को धार्मिक विश्वास से न रोका जाएगा।

(पपप) कैदियों का श्रम पीड़ादायक नहीं होगा।

(पअ) कैदियों के उपचार के लिए उचित तरीके अपनाए जायेंगे।

(अ) गौर सुनवाई कैदियों के लिए अच्छी व्यवस्था की जाएगी।

(अप) सिविल कैदियों को भी अन्य कैदियों से अलग रखा जाएगा।

(अपप) कैदियों के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा। कैदियों के धार्मिक विश्वास का सम्मान किया जाएगा।

(अपपप) कैदियों को पृथक् रखा जाएगा।

(पग) कैदियों को रहने के लिए ऐसी जगह दी जाएगी जहाँ हवा, रोशनी, स्नान व सफाई की पूरी व्यवस्था हो। कैदियों को शरीर की देखभाल की सुविधा दी जाएगी। खाने–पीने का सामान स्वास्थ्यकर होगा।

(ग)–कैदियों को स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराई जाएगी।

(गप) अनुशासन व दंड के लिए नियमानुसार कार्यवाही होगी।

(गपप) कैदियों को शिकायत करने का अधिकार होगा।

भारत मानव अधिकारों के संदर्भ में काफी सक्रिय रहा है। विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के अभिप्राय से भारत में मानव अधिकारों की परंपरा को पुष्ट करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की मानव अधिकारों संबंधी सभी संधियों, कारकों और अभिसमयो को अपनाया ही है। संविधान प्रदत्त शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना भी की गई तथा अल्पसंख्यक आयोग, पिछड़ा वर्ग आयोग, अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग का भी गठन किया गया, जिससे व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा की जा सके। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की। इसमें वर्णित मानवाधिकारों को सभी व्यक्तियों और सभी राष्ट्रों के लिए एक सामान्य मानक के रूप में घोषित किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकार घोषणा पत्र इस प्रकार है (30 अनुच्छेद)–

अनुच्छेद 1– सभी मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र हैं और अधिकार और मर्यादा में समान हैं उनमें विवेक और बुद्धि है अतएव उन्हें एक–दूसरे के साथ भ्रातृत्व भावयुक्त व्यवहार रखना चाहिए।

अनुच्छेद 2– प्रत्येक व्यक्ति बिना जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति तथा सामाजिक उत्पत्ति, जन्म अथवा किसी दूसरे प्रकार के भेदभाव की इस घोषणा में व्यक्त किए हुए सभी अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का पात्र है। इसके अलावा किसी स्थान अथवा देश के साथ जिसका कि वह व्यक्ति नागरिक है राजनीतिक परिस्थिति के आधार पर भेद नहीं किया जाएगा। चाहे वह स्वतन्त्र हों, संरक्षित हों अथवा स्वशासनाधिकार से विहीन हों, अथवा अन्य प्रकार से अल्प प्रभु हों।

अनुच्छेद 3– प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 4–कोई व्यक्ति दासता या गुलामी में नहीं रखा जा सकेगा। दासता और दास व्यवहार सभी क्षेत्रों में सर्वथा निषिद्ध होगा।

अनुच्छेद 5– किसी व्यक्ति को क्रूर या अमानुषिक दंड नहीं दिया

जाएगा और न उसके साथ अपमानजनक बर्ताव किया जाएगा।

अनुच्छेद 6– प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह सर्वत्र कानून के अधीन व्यक्ति माना जाए।

अनुच्छेद 7–कानून के सामने सभी समान हैं और किसी भेदभाव के विना कानून की सुरक्षा के अधिकारी हैं।

अनुच्छेद 8–प्रत्येक व्यक्ति को संविधान या कानून द्वारा प्राप्त मौलिक अधिकारों को भंग करने वाले कार्यों के विपरीत राष्ट्रीय न्यायालयों के समक्ष संरक्षण पाने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 9– किसी व्यक्ति की अविहित गिरफ्तारी कैद अथवा निष्कासन न हो सकेगा।

अनुच्छेद 10–प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायालय द्वारा अपने अधिकारों और कर्तव्यों के तथा अपने विरुद्ध आरोपित किसी अपराध के निर्णय के लिए उचित और खुलेआम तरीके से सुने जाने का पूर्णतः समान अधिकार है।

अनुच्छेद 11–किसी व्यक्ति को केवल इसलिए बन्दी नहीं बनाया जाएगा कि वह अपने अनुबन्धित कर्तव्य का पालन करने में असमर्थ रहा है।

अनुच्छेद 12–एक राज्य के भू क्षेत्र कानूनी रूप में निवास कर रहे प्रत्येक व्यक्ति को क्षेत्र में घूमने–फिरने तथा निवास स्थापित करने का अधिकार होगा। प्रत्येक को अपने देश सहित किसी भी देश को छोड़ने की स्वतन्त्रता होगी। किसी को भी अपने देश में दाखिल होने से निरंकुशता पूर्वक रोका नहीं जाएगा।

अनुच्छेद 13– प्रत्येक व्यक्ति को अपने राज्य की सीमा के भीतर आवागमन और निवास की स्वतन्त्रता का अधिकार होगा तथा व्यक्ति को किसी भी देश को जिसमें उसका भी देश सम्मिलित है, छोड़ने का अधिकार है और अपने देश में लौट जाने का अधिकार है।

अनुच्छेद 14– सभी व्यक्ति न्यायालयों के सामने समान होंगे। किसी व्यक्ति के विरुद्ध किसी आपराधिक दोष या फिर उसके अधिकारों और उत्तरदायित्व का निर्धारण करते समय उसे कानून द्वारा स्थापित एक योग्य, स्वतन्त्र, तटस्थ अदालत में न्यायोचित सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 15– प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीयता का अधिकार है। कोई व्यक्ति अपनी राष्ट्रीयता से मनमाने ढंग से वंचित नहीं किया जा सकेगा और न उसको राष्ट्रीयता परिवर्तन करने के मान्य अधिकार से ही वंचित किया जाएगा।

अनुच्छेद 16–व्यस्क अवस्था वाले पुरुष और स्त्री को जाति, राष्ट्रीयता अथवा धर्म की सीमा के बिना विवाह करने और परिवार स्थापित करने का अधिकार प्राप्त है। उन्हें विवाह करने, वैवाहिक जीवन बिताने और वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद के समय समान अधिकार प्राप्त है। विवाह के इच्छुक दम्पत्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता और स्वीकृति पर विवाह सम्पन्न होगा।

अनुच्छेद 17 – प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अथवा दूसरों के साथ संपत्ति रखने का अधिकार है। कोई भी अपनी सम्पत्ति के मनमाने तौर पर वंचित नहीं किया जा सकता ।

अनुच्छेद 18–प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अनुभूति तथा धर्म स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपने धर्म या मत को परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता और अपने धर्म और मत का उपदेश, प्रयोग, पूजा और परिपालन सर्वसाधारण के सामने अथवा एकान्त में करने की स्वतन्त्रता सम्मिलित है।

अनुच्छेद 19–प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी हस्तक्षेप के अपने विचार रखने का अधिकार होगा। प्रत्येक को विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता होगी। इस अधिकार में लिखकर या बोलकर या कला के माध्यम से या जनसंचार साधनों द्वारा सूचना प्राप्त करने तथा देने की स्वतन्त्रता होगी।

अनुच्छेद 20– प्रत्येक को शान्तिपूर्ण इकट्ठे होने तथा संस्थाएँ बनाने का अधिकार है किसी को किसी संस्था का सदस्य बनने के लिए विवश नहीं किया जा सकता ।

अनुच्छेद 21 – प्रत्येक अपने देश की सरकार में, प्रत्यक्ष रूप में या फिर अपने द्वारा स्वतन्त्रता पूर्वक निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से, भाग लेने का अधिकार है। सभी को अपने देश में सार्वजनिक सेवा में पहुँच का समान अधिकार है।

अनुच्छेद 22–समाज का सदस्य होने के नाते प्रत्येक को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 23–प्रत्येक व्यक्ति को काम का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 24 – प्रत्येक को आराम करने तथा आनन्द प्राप्ति का अधिकार है इसमें काम के घंटों तथा वेतन सहित अवकाश प्राप्त करने की व्यवस्था निहित है।

अनुच्छेद 25–अपने तथा अपने परिवार के स्वास्थ्य के लिए प्रत्येक को जीवन के एक उचित मानदंड की प्राप्ति का अधिकार है।

अनुच्छेद 26– प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार।

अनुच्छेद 27–समुदाय की सांस्कृतिक जीवन, कला तथा वैज्ञानिक प्रगति की क्रिया में स्वतन्त्रतापूर्ण भागीदारी का अधिकार प्रत्येक को प्राप्त है। प्रत्येक को अपने द्वारा किए जाने वाले किसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक उद्यम का लाभ प्राप्त करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 28– प्रत्येक को एक ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शामिल होने का अधिकार है जिसमें इस घोषणा में दर्ज अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को प्राप्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद 29 – प्रत्येक के अपने समुदाय (समाज) जिसमें ही उसके व्यक्तित्व का विकास हो सकता है, के प्रति कर्तव्य हैं। प्रत्येक पर उसके अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं के सम्बन्ध में केवल वही प्रतिबन्ध या सीमाएँ लागू हो सकती है जो कि उसके कानून तथा समाज द्वारा उसके अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की सुरक्षा एवं मान्यता के लिए आवश्यक हो।

अनुच्छेद 30–इस घोषणा के किसी भी भाग की व्याख्या और विश्लेषण किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति के लिए इस प्रकार नहीं की जा सकती जिससे वह कोई ऐसी कार्यवाही को करने लगे जो कि इन अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को सीमित अथवा नष्ट करने की दिशा में हो।

सन्दर्भ :

1. डॉ. कृष्ण कुमार (2012), पुलिस और मानवाधिकार, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. ग्रेनविल ऑस्टिन (2017), भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. भारत का संविधान (2015) सेंट्रल लॉ पब्लिकेशंस इलाहाबाद।
4. नीलिमा सिंह (2012) भूमंडलीकरण और भारत में मानवाधिकार, अधिकार अध्ययन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
5. डॉक्टर टीपी त्रिपाठी, मानव अधिकार इलाहाबाद लॉ एजेंसी पब्लिकेशन इलाहाबाद।
6. डॉक्टर मधु मंजरी दूबे (2004) मानव अधिकार, राज पब्लिशिंग हाउस जयपुर।

Dr. Mamta Walia

Assistant Professor

SNRL, Jairam Girls College

Lohar Majra, Kurukshetra

24

'दो कलाकार' में अभिव्यक्त वैयक्तिक व सामाजिक मूल्य

स्निग्ध सिंह

सारांश

मूल्य विहीन समाज की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। 'मूल्य' समाज का मेरुदंड है, जिसके सहारे समाज अस्तित्ववान होता है। 'मूल्य' वे मानदंड अथवा दृष्टिकोण हैं, जिनके द्वारा हम किसी लक्ष्य, साधन, वस्तु, व्यवहार, गुण आदि को अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित ठहराते हैं। ये मूल्य समाज के अस्तित्व के लिए अत्यंत आवश्यक हैं और इसका पालन करना व्यक्ति का परम कर्तव्य है। परिणामतः सामान्य अर्थ में 'मूल्य' वह है जो व्यक्ति व समाज के लिए उपयोगी हो, जिसमें सभी का हित निहित हो व जिससे व्यक्ति का उत्कर्ष संभव हो। "मध्यकाल में कबीर, तुलसी तथा अनेक धार्मिक नेताओं और अठारहवीं–उन्नीसवीं शती के राजनैतिक क्षेत्र में राजा राम मोहन राय, विवेकानंद, दयानन्द, महात्मा गांधी आदि ने समन्वय की नीति को अपनाकर जनता को नये विचार, नये चिंतन, नये भाव तथा नये मूल्यों से जोड़ा।"1 भारतीय संस्कृति व उनकी कथाओं में ऐसे सुंदर मूल्य छिपे हुए हैं, जिनके होने से पूरी मनुष्यता का मार्ग सरल हो जाता है। छायावाद के मूर्धन्य कवि सुमित्रानंदन पंत ने मूल्यों के प्रति अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं–

"जितने भी मूल्य है, उनकी पीठिका सिर्फ समाज ही हो सकती है क्योंकि व्यक्ति का विकास तो समाज की दिशा में होता है। असल में प्रश्न यह है कि चाहे वे सामाजिक मूल्य हों, चाहे वैयक्तिक मूल्य हों, वे मानव मूल्य हैं या नहीं? वे उस सत्य को वाणी देते है या नहीं, चाहे वह व्यक्ति के रूप में हो, चाहे समाज के रूप में, मूल्य एक ही है।"2

विद्वानों ने मूल्यों की परिभाषा के आधार पर नैतिक मूल्य, राष्ट्रीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनीतिक मूल्य, पारिवारिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य आदि में वर्गीकृत किया है। वैश्विक धरातल में व्यक्ति ही प्रधान है। जिस प्रकार बूँदों से मिलकर समुद्र बना है, उसी प्रकार व्यक्ति से विश्व का निर्माण हुआ है। व्यक्ति का 'स्व' ही उसके जीवन में प्राथमिक भूमिका निभाता है। अर्थात् वर्त्तमान में वह किसी भी कीमत पर 'स्व' की बलि करने को तैयार नहीं है। अतः व्यक्ति आज के समय में अपने हित के लिए समस्त सामाजिक मूल्यों को ठुकराकर सर्वप्रथम 'स्व' के लिए सोच रहा है। इन्हीं कारणों से जो नये मूल्य बनते हैं वे 'वैयक्तिक मूल्य' कहलाते हैं। वहीं 'सामाजिक मूल्य' में प्रेम, सांप्रदायिक–सौहार्द, सामाजिक समरसता, लोकसेवा, परोपकार, आपसी भाईचारा, ईमानदारी, विश्वास, बुरे कार्यों के प्रति रोष, कृतज्ञता आदि भाव आते हैं। दीन–दुखी, उपेक्षित, शोषित, दलित, निम्न वर्ग आदि के प्रति सहानुभूति का भाव रखना सुसंस्कृत मानव का परम कर्तव्य होना चाहिए। सामाजिक मूल्य लोगों की भावनाओं से जुड़ा होता है। यही कारण है कि इनकी रक्षा हम वैयक्तिक हितों को त्यागकर भी करते हैं।

एक बात स्पष्ट है कि सामाजिक मूल्य को हम किसी समय–सीमा में नहीं बांध सकते क्योंकि देश–काल का प्रभाव इन मूल्यों पर निरंतर देखने को मिलता है। यह सदैव एक समान नहीं होते। अतः समाज की आवश्यकताओं के अनुसार ही इनमें भी बदलाव देखने को मिलता है। मानव एक सामाजिक पशु है और व्यक्ति की पहचान उसके सामाजिक गुणों के कारण ही होती है। मार्क्स के अनुसार–

"व्यक्ति का तत्त्व उसकी दाढ़ी या उसकी मूछों से नहीं, बल्कि उसके सामाजिक गुणों में रहता है।"3

मन्नू भण्डारी नई कहानी आंदोलन से जुड़ी सशक्त हस्ताक्षर व लोकप्रिय कथाकार के रूप में उपस्थित रही हैं। इनका कथा संसार विविध व विपुल है। इनके कहानी संग्रह 'मैं हार गई', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यही सच है' आदि में तत्कालीन परिवेश और जीवन की यथार्थता एवं चरित्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्वों का जीवंत चित्रण मिलता है। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री की व्यथा, दुख, प्रेम की कोमल भावनाएँ और उनके अस्तित्व पर चोट पहुंचाते सम्बन्धों की लाचारी आदि जैसे विविध पक्षों का सूक्ष्म चित्रण किया है। वैसे तो इनकी ज़्यादातर कृतियों का केन्द्र बिन्दु मध्यवर्गीय स्त्री की मनःस्थिति का सूक्ष्म अंकन ही रहा है, इसके अलावा भी बाल मनोविज्ञान पर आधारित 'आपका बंटी' उपन्यास जो अपनी तरह की एक क्लासिक कृति है और राजनीति पर लिखा गया 'महाभोज' उपन्यास हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुआ है।

इनका लेखन काल आज़ादी के बाद का रहा है व तत्कालीन परिवेश में जीवन मूल्यों के टूटने के साथ–साथ व्यक्ति भी टूट रहा था। संभवतः इसीलिए वे भी अपनी रचनाओं में बदलते जीवन मूल्यों का सामाजिक मनोभावों पर पड़ते प्रभाव का चित्रण करने से अछूती न रहीं। उन्होंने मानव मन की कुंठाओं का बड़ी ही सहजता व सजीवता से वर्णन किया है।

साहित्य व समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। बिना समाज के साहित्य की कल्पना ही नहीं हो सकती। लेखक या रचनाकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज से जुड़ा होता है व उसका उद्देश्य अपनी कृति के माध्यम से सिर्फ आनंद देना ही न होकर जीवन कि यथार्थता का बोध कराना भी होता है। 'दो कलाकार' कहानी में लेखिका ने चित्रा व अरुणा नामक पात्रों के माध्यम से जीवन जीने के दो मायनों

का जीवंत चित्रण किया है। चित्रा खुद को एक चित्रकार के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहती है, वहीं अरुणा अपना पूरा जीवन समाज के प्रति समर्पित करना चाहती है। लेखिका ने अरुणा नामक चरित्र के माध्यम से जीवन के आदर्श सामाजिक मूल्यों की स्थापना की है। अरुणा अपने आस–पास रहने वाले जमादार, दाइयों और चपरासियों के बच्चों को पढ़ाती है व उनके दुःख को अपना दुख समझकर उसे दूर करने जैसे समाजिक कार्यों में हमेशा संलग्न रहती है। वहीं चित्रा का एकमात्र उद्देश्य विदेश जाकर चित्रकारी का कोर्स करना व देश–विदेश में नाम कमाना है। अरुणा उसकी आलोचना करते हुए कहती है कि–

"मुझे तो यह सारी कला इतनी निरर्थक लगती है, इतनी बेमतलब लगती है कि बता नहीं सकती। किस काम कि ऐसी कला, जो आदमी को आदमी न रहने दे।"4

चित्रा के आत्मकेंद्रित भाव के कारण ही अरुणा उसकी निंदा करती है। चित्रा किसी की पीड़ा, दुख–दारिद्रय और करुणा का साकार चित्रण तो कर सकती है लेकिन उसे दूर करने का प्रयास नहीं करती। चित्रा का यह स्वभाव उसके मनुष्यता के अभाव का द्योतक है। वह हर घड़ी रंगों व तुलियों में डूबी रहती है व अपने चित्रों के लिए मॉडल ढूंढा करती है। वह अपने अहं की तुष्टि में लगी रहती है और सामर्थ्य होने के बावजूद भी किसी की मदद करने के लिए हाथ नहीं बढ़ाती है।

चित्रा और अरुणा दोनों को आत्मसंतुष्टि मिलती है किन्तु इन दोनों की आत्मसंतुष्टि में अंतर है। चित्रा को खुद को प्रतिष्ठित करके आत्मसंतोष मिलता है वहीं अरुणा को दीन–दुखियों की मदद करके, उनकी पीड़ा को कम या दूर करके आत्मसंतोष की अनुभूति होती है। अरुणा में लोकसेवा, परोपकार और सहिष्णुता आदि के भाव कूट–कूट कर भरे हुए हैं। वह अपने सुख, स्वार्थ आदि का ध्यान रखे बिना दूसरों के लिए अपने प्राणों को जोखिम में डाल देती है। वह मानव सेवा को ही सच्ची ईश्वर भक्ति मानती है। लेखिका ने अरुणा के माध्यम से सामाजिक मूल्यों की विशेषताओं का जीवंत अंकन किया है। उदाहरणस्वरूप जब कई दिनों से मूसलाधार वर्षा हो रही थी और अखबार बाढ़ की खबरों से भरे होते थे व बाढ़ पीड़ितों कि दशा निरंतर गिरती जा रही थी। उस समय चित्रा कल्पना के माध्यम से बाढ़ जैसी आपदा का सजीव चित्रण कर रही थी और अरुणा सारे दिन चंदा इकट्ठा करने में लगी रहती थी, जिससे वह बाढ़ पीड़ितों को जीवनदान दे सके। एक शाम वह प्रिन्सिपल से अनुमति लेकर स्वयंसेवकों के दल के साथ बाढ–पीड़ितों की सेवा–सुश्रुषा के लिए चली जाती है और पंद्रह दिनों के बाद लौटती है। उसकी हालत इतनी बुरी हो जाती है कि उसे देखकर ऐसा लगता है जैसे वह छः महीनों से बीमार है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अरुणा के लिए समाज के प्रति कर्तव्य सर्वोपरि है और उसे निभाने में वह कभी पीछे नहीं हटती है।

'दो कलाकार' कहानी में अरुणा हर क्षण दूसरों के हित में कार्य करने के लिए तत्पर रहती है। जब उसके पड़ोस में रहने वाली फुलिया दाई का बच्चा बीमार पड़ता है तो वह सारे दिन उसके पास बैठकर उसकी सेवा में लगी रहती है। इन सबके बावजूद भी वह उस बच्चे कि जान नहीं बचा पाती है। इसका असर उसपर इस प्रकार पड़ता है कि छात्रावास में लौटने के उपरांत चित्रा के लाख कहने पर भी भोजन नहीं करती है व कई दिनों तक उदास रहती है। 'दो कलाकार' कहानी में चित्रा दुख–दर्द, दया, करुणा आदि को महसूस तो करती है और अपने चित्रों में उसका यथावत अंकन भी करती है किन्तु उसे दूर करने के बारे में नहीं सोचती। वह चित्र बनाकर ही अपने कर्त्तव्य से इतिश्री कर लेती है। उसके इस व्यवहार के कारण ही अरुणा उससे कहती है कि–

"कागज पर इन निर्जीव चित्रों को बनाने कि बजाए दो–चार की जिंदगी क्यों नहीं बना देती, तेरे पास सामर्थ्य है, साधन है।"5

वहीं अरुणा किसी की पीड़ा को देखकर खुद को उसकी मदद करने से रोक नहीं पाती है। उदाहरण के लिए जब उसके छात्रावास के पास एक भिखारिन की मृत्यु हो जाती है और उसके दोनों बच्चे उससे चिपककर रोते बिलखते हैं तो यह दृश्य देखकर चित्रा इतनी प्रभावित होती है कि खुद को रोक नहीं पाती व उसका एक रफ स्केच बना लेती है। कालांतर में यही चित्र 'अनाथश शीर्षक से देश–विदेश में प्रख्यात होता है व प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत भी होता है। उस चित्र की जीवंतता के कारण ही लोग उसे देखते ही चकित व द्रवीभूत हो जाते हैं। वहीं अरुणा उन बच्चों को अपनाकर उन्हें एक अच्छा जीवन देने का प्रयास करती है व सामाजिक आदर्श का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती है। अरुणा सच्चे कलाकार की सभी विशेषताओं से परिपूर्ण होती है क्योंकि सच्चा कलाकार वह है जो किसी के जीवन को बनाए, उसे नया जीवन दे। अरुणा में उच्च मानवीय गुण विद्यमान हैं जैसे सेवा, कल्याण, मानवता, त्याग आदि।

निष्कर्ष–

इस कहानी में दो कलाकारों का वर्णन किया गया है। एक कलाकार चित्रकार है वहीं दूसरी समाज सेविका। लेखिका ने दोनों ही कलाकारों में संवेदना का समावेश तो किया है, इसके बावजूद भी दोनों के भाव अथवा विचार में अंतर देखने को मिलता है। चित्रा अपनी कला के माध्यम से दरिद्र, पीड़ित, असहाय व्यक्ति का ऐसा यथार्थ चित्रण करती है कि उस चित्र को देखने वाला व्यक्ति द्रवीभूत हो जाता है वहीं अरुणा किसी कि पीड़ा, दुख, दरिद्रय को देखकर उसे जड़ से मिटाने कि कोशिश करती है। इस कहानी को पढ़ने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में जो मूल्य संकट उपस्थित हो रहे हैं, उसका एक कारण व्यक्तिवादिता है और

जैसे–जैसे मूल्य बदलते हैं वैसे–वैसे ही व्यक्ति कि मानसिकता में भी बदलाव देखने को मिलता है। इसके माध्यम से लेखिका पाठक वर्ग के मन में यह प्रश्न छोड़ जाती हैं कि एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए किस प्रकार के कलाकार की आवश्यकता है? सच्चे कलाकार की परिभाषा क्या है? चित्रा किसी की पीड़ा का चित्रण पूरी यथार्थता के साथ करती है वहीं अरुणा पीड़ितों के जीवन को सँवारने का काम करती है। एक का उद्देश्य नाम कमाना है वहीं दूसरी अपने सामाजिक कर्तव्य को बखूबी निभाती है। परिणामतः लेखिका इस कहानी के माध्यम से वर्तमान की उस सजीवता का जीवंत वर्णन करती हैं जहाँ पर व्यक्तिवादिता सभी मूल्यों में सर्वोपरि हो गया है व व्यक्ति के लिए 'स्व' की तुष्टि की प्रमुख उद्देश्य बन गया है।

संदर्भः

(1.) शर्मा वासुदेव, साठोत्तर हिन्दी कहानीरूमूल्यों की तलाश, संस्करण प्रथम, 1999, पृ.सं–10

(2.) सिंह डॉ. मार्तंड, आधुनिक कथा साहित्य में मानव मूल्य, संस्करण 2021, अकादमिक बुक्स इंडिया, पृ.सं.– 22

(3.) डॉ. उमा, नागार्जुन के कथा साहित्य में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति, संस्करण 2013, ओमेगा पब्लिकेशन्स, पृ.सं.–188

(4.) भण्डारी मन्नू, मैं हार गई, संस्करण 2022, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.– 147

(5.) वही, पृ.सं.– 147

स्निग्ध सिंह

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

रमादेवी महिला विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर

सचल भाष– 7439481553

snigdhasingh099@gmail-com

25

संतराम बी0 ए0 की दृष्टि में समाज

सुषमा

सारांश

लोगों के व्यवस्थित समूह को समाज की संज्ञा दी जाती है। समाज के बिना मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। मानव और समाज एक–दूसरे के पूरक है। मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में रहकर ही करता है। जिसके लिए मनुष्य समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ संबंध स्थापित करता है। यह प्रवृति मनुष्य में स्वाभाविक रूप से पाई जाती है। समाज की प्रगति में मनुष्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। समाज, राष्ट्र, देश तभी उन्नति कर सकता है। जब वहां पर रहने वाले लोग आपस में प्रेम, सहयोग, एकता, भाइचारे से रहते हो। लोगों में आपसी फूट, दुर्व्यवहार, भेदभाव, ऊँच–नीच परस्पर विनाश का कारण बनता है। एक साहित्यकार जो समाज का ही हिस्सा होता है, अपने साहित्य के माध्यम से समाज का वो प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है जिसमें मानव के अच्छे, बुरे कर्मो को दर्शाया जाता है। जिससे प्ररेणा पाकर लोग समाज हित में लग जाते है। साहित्य समाज का ही लेखा–जोखा होता है। साहित्यकार के समय में समाज में क्या व्यवस्था रही है इसका वर्णन वह अपने साहित्य के माध्यम से करता है। संतराम बी0 ए0 ने अपनी कृतियों के माध्यम से जहाँ गैर–जरूरी आडम्बरों, पाखण्डों, कर्मकांडों, परम्पराओं को नकारा है वही समाज में फैली अस्पृश्यता, ऊँच–नीच, छूआ–छूत, शोषण भेदभाव, अलगाव की दुर्भावनाओं को र्निमूल साबित किया है। संतराम ने समाज के उत्थान तथा लोकोपकार के लिए विपुल साहित्य की रचना की। इनका साहित्य समाज के लिए मनोरंजनपरक कम तथा समाजोपयोगी अधिक साबित हुआ है। संतराम बी0 ए0 ने साहित्य सृजन को आजीविका का साधन न बनाकर, इसे समाज, राष्ट्र, देश व लोकोपकार को अर्पित कर दिया।

नारी की दशा के आधार पर किसी भी समाज एवं राष्ट्र की स्थिति को आँका जा सकता है। नारी जाति का सम्मान तथा उनके हितो की रक्षा करना भारतीय संस्कृति की पुरानी परम्परा रही है। परन्तु विडम्बना इस बात की है कि प्राचीन काल से वर्तमान काल तक आते–आते भारत में नारी की स्थिति अत्यंत विरोधाभासी हो गई है। वैदिक काल में नारी को उच्च स्थान प्राप्त था। वैदिक साहित्य के अनुसार उस समय नारी का बड़ा आदर होता था। वैदिक काल में नारी की प्रधांनता गृह–गृहस्थी तक सीमित न होकर घर के बाहर भी थी। उस समय स्त्री के बिना कोई भी धार्मिक कार्य, अनुष्ठान संपन्न नहीं हो सकता था परन्तु संतराम बी0 ए0 ने अपने समय में नारी की जिस स्थिति का वर्णन किया है वह बिल्कुल विपरीत मालूम पड़ती है। उस समय का समाज नारी को एक वस्तु की तरह समझकर व्यवहार करता था तथा पशु समझकर पशुओ की तरह हाँकता था। बात न मानने पर मारा–पीटा जाता था। परन्तु संतराम बी0 ए0 ने स्त्रियों के साथ इस तरह के व्यवहार का विरोध किया है। उनके इस विचार का पता उनकी आत्मकथा में लिखित इस टिप्पणी से हो जाता है, "स्त्रियों को पीटने वाले पति और बच्चों को पीटने वाले माता–पिता मुझे बहुत बुरे लगते हैं। मैं अपने सामने किसी स्त्री को और बच्चे को पिटता देखना सहन नहीं कर सकता। मैनें भी दो बच्चे पाले थे। पर मुझे याद नहीं कि मैंने कभी उनको पीटा हो।"1

इसके अतिरिक्त संतराम बी0 ए0 ने महिलाओं को शिक्षित करने पर भी जोर दिया। इसकी शुरूआत उन्होंने अपनी पत्नी से की। फलस्वरूप उनकी पत्नी गंगादेवी पुस्तकें पढ़ने लगी थी और हिन्दी में पत्र व्यवहार करने लगी थी। संतराम बी0 ए0 के इस प्रयास से समाज की अन्य महिलाओं को भी प्ररेणा मिली। उस समय प्रदा प्रथा भी प्रचलित थी। संतराम बी0 ए0 ने अपनी पत्नी का घुँघट भी काफी हद तक कम करा दिया था जिससे देहात में हलचल मच गई। संतराम बी0 ए0 की आर्थिक स्थिति आजीवन कमजोर ही रही परन्तु फिर भी उन्हें नारी के उत्थान के लिए उनकी शिक्षा तथा सम्मान की चिंता लगी रहती थी। इसका अंदाजा उनकी मुहँ बोली बहन पूर्णदेवी की शिक्षा के लिए सहायता करने के निश्चय से लगाया जा सकता है। इसका वर्णन उनकी आत्मकथा 'मेरे जीवन के अनुभव' में मिलता है, "इसके कुछ समय उपरांत पूर्णदेवी के पति का देहांत हो गया। वह विधवा हो गई। यह सन् 1930 की बात है। मैं पुनर्विवाह कर चुका था। अब वह मेरे पास लाहौर आ गई। मैनें उसे कन्या–महाविद्यालय, जालन्धर में भर्ती कराने का विचार किया, ताकि वहाँ उच्च–शिक्षा प्राप्त कर अपने पाँवों पर खड़ी हो सके। मेरी आर्थिक स्थिति उन दिनों यद्यपि अच्छी न थी तो भी मैं उसकी पढ़ाई का सारा व्यय वहन करने को तैयार हो गया। "2.

संतराम बी0 ए0 ने अपने सहित्य में समाज में फैली जाति–भेद की भयंकर व्याधि का वर्णन किया है। उस समय जाति व्यवस्था समाज में अपने पैर पसारे हुए थी। हिंदू और मुसलमानों का आपस में टकराव होता रहता था। हिंदु किसी भी मुसलमान को नहीं अपना सकता था परन्तु मुसलमान हिंदुओं को अपनाने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। जाति–भेद के चलते हिन्दुओं का मुसलमानों के साथा खान–पान न तो संभव था और न ही यह हिंदुओ के लिए उपयोगी था क्योंकि हिंदुओं को डर लगता था कि यदि वे मुसलमानों के साथ खान–पान कर लेगें तो मुसलमान उनकी बेटियों को ब्याह ले जाएगें। यदि समाज में जात–पात की समस्या ना हो तो हिंदू और मुसलमानों में

एकता स्थापित हो सकती है। तथा दोनों सम्प्रदाय एक–दूसरे के साथ भाईचारे की भावना से रह सकते है। संतराम बी0 ए0 लिखते है कि हिंदुओं का अपना ही दुर्व्यवहार इन्हें दूसरी जातियों के साथ मिलने नहीं देता और इस दुर्व्यवहार का कारण हिंदुओं का ये जाति–भेद ही है। संतराम बी0 ए0 अपनी पुस्तक 'हमारा समाज' में हिन्दुओं और मुसलमानों के गुण–दोश बताते हुए लिखते है, "हिन्दुओं का धर्म जितना पवित्र है, इनकी समाज–रचना उतनी ही दूषित एवं गंदी है। वह एक प्रकार से हमारे पवित्र धर्मरूपी स्वादिश्ट खीर पर राख, बिखेर रही है। हिंदू शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक रूप से भी किसी से कम नहीं। इनमें बड़े–बड़े वैज्ञानिक, दार्शनिक, व्यापारी और शूर उत्पन्न होते हैं। इन सब गुणों के रहते भी ये पनप नहीं पाते, इनका संगठन नहीं हो पाता। इसका कारण इनकी जाति–भेद मूलक सामाजिक व्यवस्था ही है। इस्लाम में जहां सैंकड़ो त्रुटियां है वहां सामाजिक समता एवं बंधुता का एक ऐसा बहुमूल्य सद्गुण है जो उन सब त्रुटियों को दबा कर इस्लाम को संसार में बराबर फैलाता जा रहा है। इसके विपरीत हिंदुओं में सैंकड़ों देवदुर्लभ सद्गुण रहते हुए भी जाति–भेद का एक ऐसा घातक दुर्गुण है जो गत 1300 वर्ष से इन्हें दिन पर दिन डुबाता जा रहा है।"3.

संतराम बी0 ए0 ने अपने समय में समाज में फैली वर्ण–व्यवस्था का भी यथार्थवादी चित्रण किया है। वर्ण–व्यवस्था भी उनकी रचनाओं का मूल स्वर रही है। संतराम बी0 ए0 की अंतदृष्टि बहुत गहन थी। उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण कृति 'हमारा समाज', मेरे जीवन के अनुभव में इस समस्या को उठाया। यह समस्या समाज को पतन की ओर ले जा रही है। समाज चार वर्गो में बंटा हुआ था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र। ब्राह्मण वर्ग स्वंय को श्रेष्ठ तथा उच्च समझता था। सत्ता पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए ब्राह्मण तथा क्षत्रिय एक–दूसरे के साथ शड्यंत्र रचते थे। परन्तु ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के सब प्रयास असफल कर दिए। ब्राह्मणों ने वर्ण को जन्म के आधार पर मानना शुरू कर दिया। क्षत्रियों ने ब्राह्मविद्या में ब्राह्मणों को पछाड़कर अपने आपको सर्वोच्च घोशित कर दिया। ब्राह्मण इस हार को चुपचाप सहन नहीं कर पाए। तब ब्राह्मण ने कर्म का बखेड़ा छोड़कर जन्म से ही ब्राह्मण का होना प्रतिष्ठित कर दिया। वर्तमान में भी वर्ण–व्यवस्था गुण–कर्म के आधार पर नहीं जन्म के आधार पर ही निर्धारित की जाती है। शुद्रों के विशय में संतराम बी0 ए0 अपनी पुस्तक 'हमारा समाज' में लिखते है, "इस जन्ममूलक वर्ण–व्यवस्था में शुद्र के साथ बहुत कठोरता और अन्याय किया गया है। उनके लिए उन्नति के सब मार्ग रोक दिए गए हैं। उसके जीवन को नरकमय बना दिया गया है। उसकी आत्मा में जोंक लगाकर उसे जीवनमृत कर दिया गया है।"4. संतराम बी0 ए0 ने समाज में शुद्रों के साथ जो अमानवीय व्यवहार होता था का वर्णन किया है। उच्चवर्ग शुद्रों को अपनी सेवा के लिए रखते थे। उच्च वर्ग की धारणा थी की शुद्रों को झूठा भोजन, पुराने कपड़े पुराने बर्तन देने चाहिए। शुद्रों को योग्यता होते हुए भी धन कमाने या कोई व्यवसाय करने का अधिकार नहीं था। ब्राह्मणों को लगता था कि यदि शुद्र जाति धन कमाकर धनवान बन गई तो वह हमारे मार्ग में बाधा उत्पन्न कर सकती है। शुद्रों को वेद पढ़ने, यहां तक कि वेद को सुनने तक का अधिकार प्राप्त नहीं था। शुद्रों का मन्दिरों में प्रवेश निशेध था। शुद्रों को यज्ञ आदि करने की अनुमति नहीं थी। शुद्रों को अछूत समझा जाता था। शुद्रों का कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। यदि देखा जाए तो ब्राह्मणों ने समाज के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संतराम बी0 ए0 समाजसुधारक का व्यक्तित्व रखने वाले साहित्यकार थे। उन्होंने समाज में फैले अंधविश्वास, पाखण्ड, छूआछूत, अस्पृष्यता का खुलकर विरोध अपनी रचनाओं में किया है। वे समाज को नई दिशा देने के मार्ग पर अग्रसर थे। संतराम बी0 ए0 आजीवन इन कुरीतियों से समाज को छुटकारा दिलाने में लगे रहे। उस समय छुआछूत की समस्या समाज में लगातार बढ़ती ही जा रही थी। हिन्दुओं में ही अनेक जातियां बनी हुई थी। किसी जाति को पूजनीय माना जाता था तो किसी जाति को अछूत कहकर अपमानित किया जाता था। किसी को उच्च तो किसी को निम्न जाति की संज्ञा दी गई थी। 'हमारा समाज पुस्तक में संतराम बी0 ए0 जी लिखते है, "हिंदुओं का जाति–भेद सचमुच कल्पित, अस्वाभाविक और भ्रम–मूलक है। इसकी कोई ठीक–ठीक परिभाषा करना, इसे किसी विदेशी को समझा सकना बड़ा कठिन है। यदि हम जाति–भेद को एक रोग मान लें तो इसके बड़े–बड़े बाह्य लक्षण ये हैं– स्पर्ष–बंदी, व्यवसाय–बंदी, रोटी–बंदी और बैटी–बंदी। अर्थात् जिस व्यक्ति या जन–समूह में जाति–भेद पाया जाता हैं, वह कुछ लोगों को छूने से इंकार कर देता है, वह कुछ व्यवसाय अपने लिए निशिद्ध मान लेता है, वह थोड़े से लोगों के सिवा शेष सबके साथ रोटी–बेटी का व्यवहार करने से इंकार करने लगता है। वह एक मैले मनुष्य को छू लेगा, उसके हाथ का बना खा लेगा, पर दूसरे साफ–सुथरे मनुष्य को न छुएगा और न उसका बना भोजन ग्रहण करेगा। वह एक अपनी जाति के कुरूप, अनपढ़ और दुराचारी लड़के को तो अपनी सुंदरी एवं सुशिक्षित लड़की दे देगा, पर दूसरी जाति के सुशिक्षित, सदाचारी और सुंदर युवक को देने से इंकार कर देगा। वह चोरी करेगा, जुआ खेलेगा, भीख मांग लेगा पर ईमानदारी और परिश्रम से किसी के जूठे बर्तन साफ कर, टोकरी ढो या जूते सी कर पेट पालने को तैयार न होगा। इस स्पर्श–बंदी, व्यवसाय–बंदी, रोटी–बंदी को कोई वैज्ञानिक या युक्तिसंगत कारण उसके पास नहीं रहता। उसे केवल भ्रम रहा है कि इन बंदियो को तोड़ने से मेरी जाति चली जाएगी और मेरा धर्म डूब जाएगा। जाति–भेद को मानने वाला एक छोटे से मनुश्य–समूह को ही अपना सारा संसार मान बैठता है। उसी के भीतर उसका खान–पान,

रहन–सहन, ब्याह–शादी और जीवन–मरण होता रहता है। उसी छोटे से समूह के लोग उसके दुःख–सुख में भाग लेते हैं। मालवीय ब्राह्मण के शव को मालवीय के सिवा कोई दूसरा ब्राह्मण भी नहीं उठा सकता।"5.

संतराम बी0 ए0 ने आर्थिक लाभ के लिए एक कम्पनी में नौकरी कर ली। वे लगभग छः महीने इस कम्पनी के कर्मचारी रहे। नौकरी के दौरान इन्हें आर्थिक लाभ तो कुछ खास नहीं हुआ परंतु देशाटन के पर्याप्त अवसर मिले। कम्पनी के जंगल शिमला के किन्नौर प्रदेश में थे। तिब्बत की सीमा पर बसा यह प्रदेश बहुत ही आर्कशक तथा सुहावना है। यहाँ की स्त्रियों की सुन्दरता देखते ही बनती है। मैदानी प्रदेश की सामाजिक व्यवस्था की तरह यहां के समाज में पर्दा प्रथा नहीं है। स्त्रियां यहां स्वतन्त्र रहती है। परन्तु यहां निर्धनता अधिक है। इसलिए यहां के समाज में बेगारी का बहुत बुरा राजनियम है। राजनियम के अनुसार परिवार से एक व्यक्ति को बारी–बारी से इस राजनियम का पालन करना पड़ता है। परिवार की स्त्रियों को इस राजनियम का पालन करना पड़ता है जिससे व्यभिचार बढ़ता है। मैदानी भागों से जो सैलानी यहां आते हैं ये लोग उनका सामान (बोझा) एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव तक ले जाते है जिसका इन मजदूरों को पर्याप्त पैसा भी नहीं मिलता। इससे दास प्रथा को बल मिलता है। इस प्रकार संतराम बी0 ए0 ने इस समाज में फैली प्रथा का वर्णन किया है।

संतराम बी0 ए0 के साहित्य का अध्ययन करने से समाज में हो रहे अंतरजातीय विवाह का भी पता चलता है। संतराम बी0 ए0 अंतरजातीय विवाह के पक्षधर थे। संतराम बी0 ए0 जाति को मिटाने का शक्तिशाली औजार अंतरजातीय विवाह को मानते थे। इनका मानना है कि यदि उच्च वर्ग भेदभाव मिटाकर निम्न वर्ग के साथ रोटी–बेटी व्यवहार करने लग जाए तो समाज में समानता आ जाएगी, और समाज उन्नति की तरफ अग्रसर हो जाएगा। संतराम बी0 ए0 की आत्मकथा 'मेरे जीवन के अनुभव की कुछ पंक्यिाँ देखिए, "ऊँच–नीच मूलक जात–पात तोड़ने का आन्दोलन कोई नया नहीं। समाज–हितैशी सज्जन, जब से यह हानिकारक वर्ण–व्यवस्था बनी है तभी से इसे तोड़ने का आन्दोलन करते आए है। बुद्ध, कबीर, नानक, तुकाराम, सर्वेश्वर राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन और दयानन्द प्रभृति महानुभव सब इस जात–पात के विरूद्ध प्रचार करते रहे हैं। आधुनिक काल में पंजाब वरन समूचे आर्य–समाज में जात–पात के बन्धनों को कार्यतः तोड़ने वाले पहले नर–शार्दूल महात्मा मुंशीराम (बाद को स्वामी श्रद्धानन्द) थे। उन्होंने अपनी संतराम का विवाह जाति–भेद को तोड़कर ऐसे समय में किया था जब कि बड़े–बड़े सुधारवादी स्त्री का परदा तक उठाने का साहस न कर सकते थे इस दृश्टि से जाति–पाति तोड़क आन्दोलन में स्वामी जी का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।"6. संतराम बी0 ए0 की मनोकामना थी की अंतरजातीय विवाह को कानूनी मान्यता प्राप्त हो। इसके लिए उन्होंने भरसक प्रयास भी किए और सफल भी हुए। संतराम बी0 ए0 की कथनी और करनी में अंतर नहीं था। संतराम बी0 ए0 ने स्वंय अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात एक विधवा से अंतरजातीय विवाह किया था।

संतराम बी0 ए0 के लेखन को पढ़ कर मन में कुछ शंकाएं जन्म ले रही है। जिन पुर्वजों ने समाज में से प्रथाएं जैसे – सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि बनाई। ये क्यों बनाई? अवश्य ही इनके पीछे कोई कारण रहा होगा। जो उस समय के समाज के हिसाब से सही होगी। परन्तु आज के समाज को इन प्रथाओं की आवश्यकता नहीं। यदि आज इन प्रथाओं के हिसाब से समाज में व्यवहार किया जाए तो समाज उन्नति नहीं कर सकता। और नारी जाति की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जाएगी। स्त्रियों को उन्नति का कोई भी मार्ग प्राप्त नहीं होगा। इसी संबंध में संतराम बी0 ए0 की पुस्तक हमारा समाज में कहा गया है कि, "हमारे पूर्वज मूर्ख न थे। उन्होनें समाज के लिए जो व्यवस्था बनाई थी वह अपने समय और परिस्थिति को देखकर बनाई थी। समय और परिस्थिति के बदलने के साथ वे अपने सामाजिक नियमों को भी बदलते रहते थे। नाना स्मृतियां इस बात का प्रमाण हैं। यदि वे आज जीते होते तो आज की परिस्थिति के अनुकूल सामाजिक प्रथाओं में अवश्य परिवर्तन कर देते। जो लोग समझते हैं कि हमारे पूर्वजों में काल की गति को पहचानने और उसके अनुसार अपने आपको ढ़ालकर उन्नति करने की बुद्धि न थी, वे ही उनको मूर्ख समझते हैं। सभी पुरानी प्रथाएं अच्छी और सभी नई बाते बुरी नहीं। हमें पुरानी बातों में से जो इस युग में हमारे लिए हितकर है रख लेनी चाहिए और जो हानिकारक बन गई हैं उनके साथ चिपटे रहकर मृत्यु को नहीं बुलाना चाहिए।"7.

संतराम बी0 ए0 ने समाज में ब्राह्मणों ने किस प्रकार वर्चस्व स्थापित कर रखा था का भी वर्णन किया है। ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के श्रेश्ठ बनने के प्रयास को विफल करने के लिए अपने चातुर्थ से बौद्ध धर्म को भारत से विदा कर दिया। क्षत्रिय लोग अपने इस निरंतर प्रयास को असफल होता देख निराश हो गए तथा ब्राह्मणों का मनोबल, और सत्ता की प्रचण्डता दस गुना अधिक बढ़ गई। इसके बाद किसी ने ब्राह्मणों का विरोध नहीं किया। दिन प्रतिदिन इनकी शक्ति बढ़ती गई। "पौराणिक काल में चालाक ब्राह्मणों को 'भूसुर' अर्थात् पृथ्वी के देवता की उपाधि दी गई। पर अब तक भी ब्राह्मणों को पूजनीय होने के लिए विद्वान होना आवश्यक था। गरूड़ पुराण में तो अशिक्षित ब्राह्मण का श्राद्ध आदि कर्मो में सम्मिलित होना भी निशिद्ध है।"8. परंतु आगे चल कर ऐसी–ऐसी अड़चनों को भी हटा दिया गया। ग्रंथों में ऐसे–ऐसे श्लोकों की रचना कर के लिख दिया गया जिनमें यह बात कही गई

थी कि कुछ विशेश घराने ऐसे है जिनमें जन्म लेने मात्र से व्यक्ति ब्राह्मण कहलाएगा। उसके आचार–विचार, योग्यता व ज्ञान की बिल्कुल भी परवाह नहीं की गई। महाभारत के आधार पर ब्राह्मण चाहे अच्छे कर्म करे या बुरे किसी भी स्थिति में ब्राह्मण का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। समाज में ब्राह्मणों की श्रेश्ठता को दर्शाते हुए संतराम बी0 ए0 अपनी पुस्तक 'हमारा समाज' में लिखते है "ब्राह्मण जन्म लेते ही पृथ्वी के समस्त जीवों में श्रेश्ठ होता है, सब प्राणियों का ईश्वर होता है और धर्म के खजाने का पोशक होता है (मनु 1–99)। जैसे अग्नि, चाहे संस्कार–युक्त हो और चाहे संस्कार रहित, महान देवता है, वैसे ही ब्राह्मण, चाहे विद्वान हो और चाहे मूर्ख, बहुत बड़ा देवता है। जैसे महा तेजवाला अग्नि मरघट में शव को जलाने से भी दूशित नहीं होता, किंतु यज्ञ में हवन किए जाने पर फिर वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही सब अनिश्ट और पाप–कर्म करते रहने पर भी ब्राह्मण सदा पूज्य ही है, क्योंकि वह परम महान् देवता है (मनु . 9/317–319)। पाराशर–स्मृति कहती है कि ब्राह्मण चाहे बुरे चरित्र वाला भी हो, पुज्य; है, पर शुद्र चाहे जितेन्द्रिय हो, पुज्य नहीं। इसी प्रकार 'नारायण' सार–संग्रह' में लिखा मिलता है कि ब्राह्मण चाहे मैला हो चाहे पवित्र, वह मेरी पूजा कर सकता है। पर स्त्री और शुद्र का कर–स्पर्श मुझे वज्र से भी अधिक कठोर लगता है। "गोस्वामी तुलसीदास ने तो स्पष्ट ही कह दिया है–

पूजिए विप्र भील–गुण–हीना। भूद्र न गुन–गन–ज्ञान प्रवीना।"9.

निष्कर्ष:

अतः संतराम बी0 ए0 समाज के प्रति व्यापक दृष्टिकोण रखने वाले लेखक, साहित्यकार व समाज सुधारक रहे है। उन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग को जागरूक करके उन्हें ऊंचा उठाने का भरसक प्रयत्न किया। वे समाज में फैले जात–पात, ऊंच–नीच, भेदभाव को पूरी तरह से खत्म कर देना चाहते थे। क्योंकि इन सब समस्याओं के रहते समाज उन्नति नहीं कर सकता। वे नारी जाति को प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के समान देखना चाहते थे। वे चाहते थे कि स्त्रियां आत्मनिर्भर बने। वे समाज के प्रत्येक वर्ग को शिक्षित होने की प्रेरणा देते थे और यह तभी संभव है जब प्रत्येक वर्ग में समानता हो, स्वतन्त्रता हो, बंधुता हो, भाइचारा हो, तभी एक राष्ट्र उन्नति कर सकता है। इस प्रकार स्पश्ट होता है कि संतराम बी0 ए0 एक सामाजिक एवं चिंतनशील साहित्यकार थे। वे हमेशा समाज हित को ही सर्वोपरि रखते थे। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों को जनता के सामने प्रस्तुत कर इनका समाधान करने का भी प्रयास किया है। इन कुरीतियों के कारण समाज खोखला, तनावग्रस्त बनता जा रहा है। उन्होंने समाज में फैले पाखण्ड, बाह्य आडम्बर, छुआछूत जैसी दुर्भावनाओं को खत्म करने का प्रयत्न किया क्योंकि इन दुर्भावनाओं के रहते समाज में हिंसा तथा विरोध की भावना फैलती है। संतराम बी0 ए0 के साहित्य ने समाज के स्वरूप को समझकर लोगो को जागरूक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. संतराम बी0 ए0, मेरे जीवन के अनुभव, पृ0 स0 – 59
2. संतराम बी0 ए0, मेरे जीवन के अनुभव, पृ0 स0 – 42
3. संतराम बी0 ए0, हमारा समाज, पृ0 स0 – 128
4. संतराम बी0 ए0, हमारा समाज, पृ0 स0 – 54
5. संतराम बी0 ए0, हमारा समाज, पृ0 स0 – 16
6. संतराम बी0 ए0, मेरे जीवन के अनुभव, पृ0 स0 –116
7. संतराम बी0 ए0, हमारा समाज, पृ0 स0 – 171
8. संतराम बी0 ए0, हमारा समाज, पृ0 स0 – 50
9. संतराम बी0 ए0, हमारा समाज, पृ0 स0 – 50

सुषमा
शोधार्थी पी.एच.डी.
(हिन्दी विभाग)
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
रोहतक (हरियाणा)

26

पर्यावरण और संत नितानंद की वाणी

अनुराधा

सारांश

मनुष्य की उत्पत्ति से हजारों सालों पहले से प्रकृति का विकास हो गया था। जब प्रकृति का पूर्ण विकास हुआ इसके बाद इस पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति हुई। हमारे पुराणों के अनुसार इस पृथ्वी पर 86 लाख प्रकार की योनियाँ है इन सभी के जीवन का आधार, इन सभी के भरण–पोशण का भार प्रकृति पर ही है। सभी जीवों के जीवन का आधार प्रकृति ही है। सभी जीवों की चाहे कोई भी आवश्यकता हो उसकी पूर्ति प्रकृति के द्वारा ही होती है। इन सभी जीवों में मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जो प्रकृति के साथ खिलवाड़ करता है। अन्य जीव तो प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितने में उनका पेट भर जाए। मनुष्य अपने विकास और आराम के लिए प्रकृति को दोहन करता है। इस प्रकृति की रक्षा ही पर्यावरण रक्षा है। प्रत्येक के चारों तरफ फैले आवरण को पर्यावरण कहते हैं।

मनुष्य और पर्यावरण का संबंध मनुष्य की उत्पत्ति से ही है। मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं की शर्तों के लिए प्रकृति पर निर्भर करता है। मनुष्य के सुख–दुख का आधार प्रकृति ही है। मनुष्य की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय संस्कृति में पर्यावरण का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी नाते सनातन संस्कृति को पर्यावरण या प्रकृति की संस्कृति कहा जाता है। सनातन संस्कृति के सभी ग्रंथों में प्रकृति की महिला का गुणगान किया गया है। हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथों में पर्यावरण की महत्ता को इस प्रकार दिखाया गया है–

दा–कूपः समावापी, दावापी समोहूदः।
दा हूदः समः पुत्रो, दापुत्रो समोद्रुमः।।

अर्थात् – दस कुओं के समान एक बावड़ी है, दस बावड़ियों के समान एक तालाब है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के समानन एक वृक्ष का महत्व है।

पर्यावरण के विशय में ऐसे विचार सनातन धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदायों की पुस्तक में नहीं मिलते। जिस संस्कृति में पुत्र के समान वृक्ष का महत्व हो उस संस्कृति की महानता का आकलन सहज ही किया जा सकता है।

प्रकृति की रक्षा का विधान आदिकाल से ऋषि महात्माओं द्वारा किया जाता रहा है। इस प्रकृति और मनुष्य के संबंध पर हमारे संतों ने अपने विचार व्यक्त किए है। कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, जामसी, सुन्दरदास, नितानन्द आदि अनेक संतों ने प्रकृति के महत्व को समझा व उसे अपनी वाणी के माध्यम से जनता तक पहुँचाया। स्वामी नितानन्द की वाणियों में मनुष्य और प्रकृति के संबंध मधुर करने पर बल दिया गया है। संत नितानन्द की वाणियों में पर्यावरण संरक्षण के सूत्र विद्यमान है। ये सूत्र सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शन करने में सक्षम है। पर्यावरण के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखने के कारण ही मनुष्य की जीवन यात्राा सौ वर्षों से भी कम होती जा रही है।

आधुनिक मनुष्य प्रकृति का शत्रु बनकर उस पर विजय प्राप्त करना चाहता है। हमारी संस्कृति जो मधुर सम्बन्ध बनाने की सीख हमें देती है, मनुष्य उस सीख को भूल गया है। प्रकृति और मनुष्य के मधुर सम्बन्धों का ह्रास जिस गति से हो रहा है, वह मानव को विनाश के समीप ले जा रहा है। संतों की शिक्षाएं ही उसकी इस प्रवृति को बदल सकती हैं। नितानन्द जी की वाणियां मनुष्य जीवन को खतरों से निकालकर स्थायित्व प्रदान करती हैं, इसलिए आज उनकी वाणियों की प्रासंगिकता बनी हुई है।

संतों ने हमेशा से ही बाह्य और आन्तरिक शुद्धि पर बल दिया है। संत ब्रह्मानन्द सरस्वती के अनुसार भगवान् को शुद्ध–बुद्ध–मुक्त स्वभाव कहा गया है। वे पवित्रता को भगवान का स्वरूप मानते थे। इस संदर्भ में वे लिखते हैं–

''शरीर शुद्ध वस्त्र शुद्ध बर्तन शुद्ध स्थान।
विचार शुद्ध मन शुद्ध बुद्धि शुद्ध मकान।।
जल शुद्ध अन्न शुद्ध दूध घी शुद्ध।
अग्नि शुद्ध पृथ्वी शुद्ध आकाश शुद्ध।।
प्राण शुद्ध हवन शुद्ध सामग्री शुद्ध।
लोक शुद्ध परलोक शुद्ध।।[1]

पूरे वातावरण को शुद्ध स्वच्छ बनाने का स्वप्न उन्होंने देखा था। इसी संदर्भ में वे आगे लिखते हैं –

''धरती का कागज करूं, वृक्षों की कलम बनाए।
समुद्र दवात पर्वत स्यामी शेष, शारदा बोले लिखे,
फिर भी पर्यावरण शुद्धि का पार न पाए।।[2]

संत कवि जानते थे कि स्वच्छ वातावरण में ही जीवन फूलता फलता है। इसी प्रकार नितानन्द जी ने भी स्वच्छता के महत्त्व को स्वीकार किया है। नितानन्द जी ने आन्तरिक और बाहरी दोनों प्रकार की स्वच्छता को अनिवार्य बताया है।

उन्होंने आन्तरिक शुद्धि के द्वारा बाह्य जगत् को शुद्ध करने का प्रयास किया है। जहां शुद्धता होती है वहीं परमेश्वर वास करते हैं। स्वामी जी कहते हैं जिनके हृदय में कपट का प्रदूषण भरा हुआ है वह कभी–भी भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता है–

''जिन के चित्त में कपट है, सहै जमहुं की मार।
नितानन्द चित्त शुद्ध कर, निर्भय उतरो पार।।[3]

स्वामी जी पेड़–पौधों के महत्त्व से भली–भांति परिचित थे इसलिए वे अपने आश्रम में अधिक से अधिक पेड़–पौधे लगाने पर जोर देते थे। उन्होंने तुलसी के पौधे लगाने पर विशेष जोर दिया है, क्योंकि तुलसी का पौधा शरीर और पर्यावरण दोनों के लिए लाभदायक होता है। हिन्दू धर्म में तुलसी को जगत–जननी माना जाता है। तुलसी को हमेशा स्वच्छ स्थान पर लगाया जाता है। सनातन काल से ही तुलसी हमारी संस्कृति और धर्म का अभिन्न अंग रही है।

संत नितानन्द प्रकृति के पुजारी थे। उनका आश्रम अनेक प्रकार के पेड–पौधों से घिरा हुआ था। वे एकान्त प्रकृति में ही अपनी समाधि लगाते थे। प्रकृति उनके लिए दिव्य संगीत के समान थी। पक्षियों और गायों के झुण्ड आज भी उनके आश्रम में दिखाई देते हैं और वहां की हरितिमा मन को मोह लेती है। ये स्वामी जी के दिये संस्कार ही हैं कि उनके क्षेत्र के लोग आज भी वृक्षों के प्रति विशेष लगाव दिखाते हैं।

स्वामी जी प्रकृति की पूजा करना सिखाते हैं न कि प्रकृति का शोषण करना। वे वृक्षों को सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के दृष्टिकोण से निहारते हैं। यही कारण है कि हरे वृक्षों में पीपल, बरगद, आंवला तथा तुलसी आदि की आज भी पूजा होती है।[4] उन्होंने अपनी वाणियों की रचना भी स्वच्छ एवं सुरम्य प्रकृति के बीच ही की थी। स्वामी जी मानते हैं कि प्रकृति की रक्षा करने वाला व्यक्ति हमेशा प्रसन्न, खुशहाल तथा चिन्ताओं से मुक्त रहता है। इसके विपरीत प्रकृति के कार्यों में हस्तक्षेप करने वाले व्यक्ति को इसका फल भुगतना पड़ता है, परमात्मा उसे दण्डित करते हैं और अंत में उसे नरक जाना पड़ता है।

वैश्वीकरण की इस अंधी दौड़ में हम पर्यावरण के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूल कर बैठ गये हैं। विकास के नाम पर प्रकृति को नजर अंदाज करना एक बहुत बड़ी भूल है। लेकिन मानव और प्रकृति का सम्बन्ध उसके जन्म से प्रारंभ होकर मृत्यु–पर्यंत चलता है। संत नितानन्द इसी अटूट सम्बन्ध को मजबूत करने का कार्य करते हैं। उन्होंने प्रकृति की अपार नैसर्गिक सम्पदा की रक्षा की है। भारतीय संस्कृति वस्तुतः त्याग, तप, लोक–मंगल की संस्कृति है। संत नितानन्द ने इस संस्कृति को पर्यावरण की सघन छाया में चिन्हित करने का प्रयास किया है। आज मानव द्वारा पर्यावरण का क्षय हो रहा है। स्वामी नितानन्द ने अपनी वाणी में पर्यावरण के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण विकसित किया है, वह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उपादेह है।

प्रकृति की रक्षा करना ही सर्वोपरि धर्म है, संत नितानन्द यही संदेश अपनी वाणी के माध्यम से सम्प्रेषित करना चाहते थे। तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में प्रकृति की सुदर कल्पना करके प्रकृति के महत्त्व, उसकी उपयोगिता और उसके संरक्षण का प्रयास किया है।

''तुलसी तरूवर विविध सुहाय।
कहुं सीता कहुं लखन लगाए।।''[5]
''तीर–तीर देवन्ह कर मंदिर।
चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुंदर।।''[6]

इसी प्रकार स्वामी नितानन्द भी प्रकृति के प्रति पूर्ण रूप से सचेत थे। इसीलिए उन्होंने पशु–पक्षी, जल–थल, पेड़–पौधे सबको अपनी वाणियों में स्थान दिया है। नितानन्द जी जानते थे कि पर्यावरण का सन्तुलन में रहना अति आवश्यक है। यदि प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ता है तो मनुष्य का जीवन भी अस्त–व्यस्त हो जाएगा। प्रकृति ही मानव मन को नियंत्रित और प्रभावित करती है। मानव के अंदर विद्यमान सहिष्णुता, सहनशीलता और सौमनस्यता पर्यावरण का ही प्रतिफल है।

आज पर्यावरण को लेकर वैश्विक स्तर पर विशेषज्ञों का चिंतन–मनन जारी है। पर्यावरण के प्रति आज सभी सचेत हैं। जिन सिद्धांतों को लेकर आज के वैज्ञानिक पर्यावरण का अध्ययन और अनुशीलन कर रहे हैं, वे सभी बातें संत नितानन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त की हैं। प्रकृति के स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों के दर्शन संत नितानन्द जी की वाणी में होते हैं। आज यह धारणा व्याप्त है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति ही मानवता की रक्षा कर सकती है। संत नितानन्द की प्रकृति विषयक वाणी एक मात्र साधन है जिसे अपनाकर मानवता की रक्षा की जा सकती है।

नितानन्द जी जानते थे कि पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले प्रायः वे ही लोग होते हैं, जिनके पारिवारिक संस्कार, संस्कृति, जीवन–मूल्य आदि निम्न स्तर के होते हैं। ऐसे व्यक्ति संकीर्ण विचारधारा के भी होते हैं। स्थान–स्थान पर गंदगी फैलाना और प्रदूषण करना इनके आनन्द का साधन है। आज परिस्थिति बहुत ही भयानक बन गई है। आज पढ़े–लिखे और संस्कारी लोगों द्वारा तो इस प्रकार प्रकृति को दूषित किया जा रहा है, जिसका कोई समाधान नहीं है। अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु वे असंख्य वृक्षों को काटते हैं. पानी को प्रदूषित करते हैं, जीव जन्तुओं की हत्या करते हैं और इस प्रकार पर्यावरण में असंतुलन पैदा कर देते हैं। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के प्रति जो प्रेम था वह समाप्त होता जा रहा है। प्रकृति के तत्त्वों का दिन प्रतिदिन दोहन कर, आज का मनुष्य प्राकृतिक आपदाओं को आमंत्रित कर रहा है। भारतीय संस्कृति में जो नियम बनाए गए हैं वे पूर्ण रूप से वैज्ञानिक और प्रकृति के अनुकूल ही थे। भारतीय संस्कृति के अनुसार जीवन यापन करने वाले व्यक्ति, पर्यावरण को दूषित न करते हुए, शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहकर दीर्घायु प्राप्त करते थे।

आज का मानव अपनी संस्कृति को भुलाकर पश्चिम की चकाचौंध की तरफ आकर्षित है और स्वयं के जीवन को नष्ट करने पर तुला है। पश्चिम के लोग हमारी संस्कृति और हमारे आध्यात्मिक मूल्यों में सुख और शांति की खोज कर रहे हैं। वे लोग हमारी

संस्कृति को अपना रहे हैं और हम अपनी सात्विक संस्कृति से दूर भाग रहे हैं। इसलिए आवश्यकता है हमारी संस्कृति को अपनाने और उसका प्रचार करने की। अपनी इसी संस्कृति को अपनाकर हम पर्यावरण को दूषित होने से बचा सकते हैं।

इसलिए आवश्यकता है संत नितानन्द की और उनके जैसे संतों की वाणियों की। उनकी वाणियों में पर्यावरणीय संरक्षण का व्यावहारिक ज्ञान है, जो पर्यावरण–चेतना विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उनकी वाणियों की पर्यावरणीय प्रासंगिकता असंदिग्ध है। उन्होंने पर्यावरण के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण विकसित किया था, वह सम्पूर्ण संसार के लिए उपादेय है।

निष्कर्ष:

संदर्भ ग्रंथ सूची

- उद्धृत – डॉ. बाबूराम, संत ब्रह्मानन्द सरस्वती ग्रंथावली, पृ. 66
- वही, पृ० 66
- भोलादास प्रज्ञाचक्षु, सत्य सिद्धांत प्रकाश, पृ. 310
- वही, पृ० 318
- तुलसीदास, रामचरितमानस, पृ० 603
- वही, पृ० 604

अनुराधा

पीएच०डी० शोधार्थी (हिन्दी विभाग)

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,

रोहतक

हरियाणा, भारत

डॉ० जयकरण यादव

शोध निर्देशक हिन्दी विभाग,

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,

रोहतक,

27

उपन्यास 'खुदा गवाह है' में नारी का शोषण एक संघर्ष

डॉ0 प्रीति कुमारी

सारांश

नारी विमर्श के प्रमुख चिंतक उपन्यासकार राजेन्द्र मोहन भटनागर का खुदा गवाह है उपन्यास रेगिस्तानी जिन्दगी में स्त्री शोषण उत्पीड़न और संघर्ष का जीवन्त दस्तावेज है । इस उपन्यास में मुस्लिम समाज की पृष्टभूमि को आधार बनाकर चित्रित करने का सफल प्रयास किया गया है । शबनम के अम्मी, अब्बा और भाईजान हिन्दुस्तान की सरहद पार करते हुए मारे गये । उनके दोस्त ने ही उन तीनों को गोली मारकर अपने रास्ते से हटा दिया और कमसिन शबनम की और बढ़ा । शबनम रेगिस्तान में आँधी सी दौड़ पड़ी थी बहुत दूर निकल गई । रास्ते में उसे इमरान मिलता है। शबनम ने अपनी सारी कहानी बता दी । ''घबराओ मत, शबनम वह यहाँ आ गया तो खुदा कसम उसे हम जिन्दा नहीं लौट जाने देंगे।''1 इमरान ने जोश से कहा । जब इमरान को मालूम चलता है कि उसका निकाह नहीं हुआ है तो वह शबनम से निकाह की बात करता है । ''शबनम वक्त की नजाकत पहचानों। खूब जानता–समझता हूँ कि इस वक्त तुम पर क्या गुजर रही है ? मुझे तुम्हारे सामने बेहूदा प्रस्ताव नहीं रखना चाहिए था।..कुत्ते.. भेड़िए सब जगह हैं ।... उनकी निगाहें तुम्हें खा जायेगी । तब तुम.. । ऐ मेरे मौला यह क्या इन्तहान ले रहा है हम गरीबों का ?''2

दरअसल यह गाँव इमरान का नहीं था । यह गाँव उसके चाचाजान के दोस्त का है जो यहाँ पर पशु मेले में होनेवाले मुशायरा में बुलाया है । भागते भागते शबनम का पाँव जख्मी हो गया था । अचानक वह बेहोश होकर गिर गई । इमरान उसे चाचाजान के दोस्त के घर ले आता है । वह मौलाना के पास जाना चाहता है, लेकिन उसके चाचाजान मना कर देते है कि जुबान बंद रखे । 2

शबनम की आँख खुलती है, तो उसे पता चलता है कि वह सज्जाद अली की हरम में है । सलमा, चम्पा से मालूम चलता है, कि सज्जाद अली दरिन्दा अब तक न जाने कितनी मासूमों को अपना हवस का शिकार बनाया है ।

सज्जाद अली पहले बुरा इंसान नहीं था । खुदा से खौफ खाता था । जब से मौलवी आया है, तभी से उसने सज्जाद को धर्म के नाम पर इंसान से शैतान बना डाला । चम्पा तेरह वर्ष की थी, उसको मौलवी ने राजस्थान के एक मंदिर से उठवा लिया और सज्जाद के सामने पेश कर दिया । रोते–रोते उसकी आँखें सूज गई । गला बैठ गया । खालाओं ने उसे समझाया ''बेटी अब तेरा कोई घर नहीं ...। अब तेरे कोई माँ बाप नहीं ... । ... अब तेरा कोई गाँव नहीं । ... तू यदि अर्ज विनती करके सज्जाद मियाँ की दया भी पा जाए तो तेरे माता–पिता अब तुझे स्वीकार नही करेंगे । .. कोई नामुराद तुझसे चकला चलवाएगा या कोई छूछूँदर की औलाद तुझे कोठे पर बिठा आयेगा ।.. फिर तेरी जवानी गन्दी नाली बनके गुजरेगी और बुढ़ापा भीख माँगकर ।''3

अचानक इमराम की तबीयत खराब हो गई उसके मन में सज्जाद का डर बैठ गया था। अब वह वहाँ से शबनम को निकालने की सोच रहा था, लेकिन मौत के भय से वह कांप उठता था। वह शबनम से नहीं मिल सका केवल खबर सुनी थी कि वह सख्त बीमार है ।

सज्जाद अली चार वर्ष का था तभी किसी ने उसे रेगिस्तान में फेंक दिया था । रामदास बाबा उसे उठाकर ले आये । उन्होंने उसके माता–पिता की बहुत तलाश की लेकिन वह नहीं मिले । गले में धर्म की तावीज देख उसका नाम सज्जाद रख दिया । कोई भी उस मासूम को अपनाने के लिए तैयार नहीं हुआ । बाबा ने खुद उसकी परवरिश की और तालीम दी । कुरान का सार समझाया । एक नेक इंसान बनाया । बाबा हिमालय पर चले गये ।

बीस वर्ष बाद लौटे तो सज्जाद अली की ख्याति दूर से ही सुन लिया कि वह एक खूँखार जालिम और खौफनाक दरिन्दा है शैतान है । बाबा के वापस आने पर वह बाबा से बार–बार आग्रह करता है लेकिन बाबा उसके पास चलने से साफ इंकार कर देते हैं । उसे अब अपने आपसे नफरत होने लगी ।3

रमजान सज्जाद अली का भरोसेमंद आदमी है । कारे पहलवान को सज्जाद ने धोखे से मरवा दिया था लेकिन नसीब से बच गया । सज्जाद को मौलवी भड़काता है, कि रमजान गद्दारी कर रहा है । सज्जाद उसका पीछा करता पुष्पा के घर जाता है । पुष्पा को नंगा कर बलात्कार करता है और भाग जाता है । पुष्पा हाँसिये से अपना पेट चीर लेती है, उसकी अँतड़िया बाहर निकल आती है । रमजान उसे बहन मानता थ । वह पुष्पा के झोपड़ी में आता है उसके नंगी देह पर कपड़ा डालता है उसीका रूह विद्रोह कर देता है रमजान तूने यह क्या किया ? उस कल्लाँच को बचाया .... वह कसाई क्या बचाने लायक था । अब न जाने वह कितनों के घर और उजाड़ेगा । कितनों की माँग का सिन्दूर पोछेगा .... यह उसने क्या क्या ''4 कहते–कहते उसने हँसिये पुष्पा के पेट से निकालकर अपने पेट में दे मारा ।

शबनम और इमरान को भागने में खाला मदद करती है, क्योंकि शमरेश खाँ शबनम को अपने हरम में ले जाना चाहता है । उन दोनों को बचाओ–बचाओ की आवाज सुनाई देती, उधर जाते है तो देख अवाक् रह जाते हैं कि ऊँट पागल हो गया था । आदमखोर ऊँट अपने पीठ पर सज्जाद अली को लेकर बदहवास दौड़ रहा था। शबनम इमरान से उसकी मदद करने कहती है पर वह मना करता है लेकिन शबनम के जोर देने पर वह मान जाता है । एक बूढ़े इंसान की मदद से वह रेगिस्तान से बाहर आता है ।

सज्जाद के नहीं लौटने पर शमशेर बहादूर खां ने मौलवी के कहने पर अफवाह फेला दी कि सज्जाद अली को मरवाने में बाबा का हाथ है, वह लोग हिन्दू मुसलमानों को आपस में लड़ाना चाहते थे।

बाबा बार–बार मिन्नते कर रहे थे'' नहीं मेरे प्यारे बच्चों यह सब गलत है ।

आपस में प्रेम से रहते आये हो, वैसे ही बने रहो।... भाई–भाई लड़ेंगे तो जीना हराम हो जायेगा, और बाहरी ताकतें हमें खतम कर देंगी''5 बाबा रामसिंह प्रार्थना कर रहे थे।''हिन्दुओं को गीता की सौगंध और मुसलमानों को कुरान शरीफ की कसम जो आपस में नहीं लड़े–भिड़ें।''6 शमशेर बहादुर खाँ खुश होते हैं, कि इस बार हिन्दू मुसलमान आपस में टकरा गए तो मजा आ जायेगा । अहमद बाबा रामसिह के हाथ पैर बाँध देता है, बाबा उफ् तक नहीं करते । चारों तरफ खून खराबा चालू हो जाता है तभी कारे पहलवान हाथ में बंदूक थामे वहाँ 4 पहुँचता है । शमशेर बहादुर खाँ चुपचाप खिड़की से यह नजारा देख रहा था और सोचता है कि अब उसके रास्ते का काँटा पलभर में साफ हो जायेगा । तभी कारे पहलवान बाबा के चरणों में अपना सिर रख दिया और बाबा ने आशिर्वाद दिया। कारे पहलवान बाबा रामसिंह से कहता है सज्जाद चाहिए । ''मेरे लिए तू भी सज्जाद है, बेटे और सज्जाद कारे पहलवान।...

नफरत हम सबकी दुश्मन है । ..मैं नहीं चाहता कि नफरत की चिनगारी हम सबके वजूद को मिटाकर राख कर दें।''7 कारे पहलवान बाबा का शुक्रिया अदा कर साथ में चेतावनी भी दिया कि अब यहाँ कोई खुन खराबा नहीं होनी चाहिए । बाबा रामसिंह जो कहें वह इस इलाके के प्रत्येक इंसान के लिए खुदा का कानून है गीता है कुरान है । उनकी बात सबको माननी है ।

फिर बाबा रामसिंह का पाँव छू कर और शमशेर बहादुर खाँ के पाँव में गोली मारकर ऊँट पर सवार होकर चल दिया।

सज्जाद की हालत में काफी सुधार हो चुका था । बैद्य की दवा और शबनम व इमरान की रात दिन की सेवा से वह चंगा हो रहा था । इमरान एक दोपहर शबनम से कहता है, ''यह कैसी मुसीबत मोल ले ली । जानती हो कि हम घायल शेर को दूध पिला रहे है ।...

सज्जाद आहत शेर है, ठीक होने पर वह सबसे पहले...8 आगे वह नहीं कह सका । शबनम इशारा समझ गई । हालाँकि अंदर ही अंदर कई बार वह भी डर गई थी । कई दिनों पश्चात सज्जाद को होश आता है । वह शबनम से बहुत कुछ कहना चाहता है, लेकिन कह नहीं पाता ।'' वह बात दिमाग से निकाल दो । ... वह मेरा फर्ज था सज्जाद ''8 शबनम ने गंभीर होकर कहा । जग्गा सज्जाद को ढूढते वहाँ आ जाता है । जग्गा के कंधे पर झुलती बंदूक को देख शबनम का मन शंका में डूब गया । इमरान को अच्छा अवसर हाथ लगा । वह सोच रहा था कि रास्ते का काँटा ही हट जाये । दूर से बोल पड़ा ''शबनम सज्जाद बुला रहा है।''9 जग्गा बिना रूके अंदर चला गया । सज्जाद शबनम के बारे में बताता है कि किस तरह उसने उसकी जान बचाई । सज्जाद खुदापरस्त हो चला था । उसका मन इबादत में लगने लगा था। बाबा के पास रहकर वह अपनी बाकी जिन्दगी बिता देना चाहता है। इमरान जाने की तैयारी करने लगा उधर जग्गा भी अपने वफादार साथियों के साथ सज्जाद अली को लेने आ पहुँचता है । ऊँट को देख उसे पुष्पा के ऊँट की याद आती है । जानवर को अच्छे बुरे की पहचान होती है, लेकिन आदमी को क्यों नहीं । पुष्पा की याद उसे तन्हा दलदल में ले जाता है, जितना जोर लगाता उतना ही धँसता जाता था । ... ''यह पापात्मा उसमें कहाँ से आ जमी । कहाँ गया था, तब उसका जमीन ?.. ''ऊँट ने अपनी मालकिन का बदला लेने के लिए क्या कुछ नहीं किया । जबकि वह एक ही नस्ल का है ।.. या खुदा .. ।''10

निष्कर्ष:

सज्जाद के हाथ दया के लिए उठ गए ।.. वह परवरदिगार से अपना गुनाह कबूल करता है और सजा के पाने के लिए तैयार था । शबनम चाहती है कि यदि सज्जाद प्यार का इजहार करेगा तो वह इनकार नहीं करेगी । लेकिन सज्जाद अली उसे पहले एयाशी का एक हसीन साधन मानता था और आज जब उसे उसका खोया हुआ होश लौट आया है । तब वह शबनम को खुदा मानता है, उसकी पूजा करता है ।

संदर्भ सूचि :–

1. डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर – खुदा गवाह है – पृ. सं.–14
2. तथैव – पृ. सं.–16
3. तथैव – पृ. सं.–45
4. तथैव – पृ. सं.–143
5. तथैव – पृ. सं.–206
6. तथैव – पृ. सं.–216
7. तथैव – पृ. सं.–217
8. तथैव – पृ. सं.–230
9. तथैव – पृ. सं.–225
10. तथैव – पृ. सं.–230

डॉ0 प्रीति कुमारी
सहायक प्राध्यापिका
रमेश झा महिला कॉलेज,
सहरसा

28

21वीं सदी की हिन्दी कविता में सामाजिक चिंतन

कविता देवी

सारांश

''कविता'' साहित्य की सबसे महीन विधा है। कविता का जन्म मनुष्य के जन्म के साथ ही माना जाता है, इसी कारण कविता को मनुष्यता की मातृभाषा कहा गया है। कविता मनुष्य की चेतना, बुद्धि और कल्पना ही नहीं, उसके बोध, संवेदना और परिवश की सारभूत समष्टि है। कविता भले ही अपने समय के परिवेशगत जीवन को प्रत्यक्ष रूप से झंकृत न करे किन्तु वह मानव मन का हिस्सा जरूर बनती है।[1]

भक्तिकाल के कवियों, सन्तों और भक्तों ने परपीड़ा की अनुभूति पर विशेष बल दिया है। वस्तुतः परपीड़ा को समझना, हमदर्द होना और यथाशक्ति निःस्वार्थ भाव से सहयोग के लिए उतावला हो जाना ही संवेदना की सही पहचान है। संवेदनशील कवि ही जनता के दुःख–दर्द को समझ सकता है। इस मायने में भक्ति–युग के कवि त्याग में संत और राग में संसारी थे। इस युग–जैसी प्रखर एवं मार्मिक काव्यसंवेदना रीतिकाल और आधुनिक युग के कवियों में प्रायः कम देखने को मिलती है।[2]

प्रत्येक काल में अलग–अलग धाराओं और प्रवृत्तियों की कविताऐं लिखी जाती रहीं हैं और लिखी जाती रहेंगी। इन कविताओं से जो प्रभावी व प्रमुद्य स्वर उभरकर आता है, वही उस काल का प्रतिनिधि स्वर बन जाता हैं

21वीं सदी की कविता नवयौवन तुल्य है, इसलिए इसके समय, समाज और साहित्यिक गतिविधियों, नवीन परम्पराओं एवं विकास की सम्भावनाओं के संदर्भ में विचार करना एक बच्चे के भविष्य के विषय में वक्तत्व देने जैसा है।

21वीं सदी की हिन्दी कविता अपने साथ समय की परिवर्तनशीलता को लेकर साहित्य क्षितिज पर उदित होती हुई सामने आई है। इस कविता का बीजांकुर 20वीं सदी के अन्तिम दशकों की कविताओ में निहित है। इस सदी की कविता को 20वीं सदी के उत्तरार्ध की कविता का विस्तार समझा जाऐ तो अनुचित नहीं होगा।

साहित्य, संस्कृति, समाज सापेक्ष होता है, इसलिए इस पर समाज का हाथ निश्चित रूप से होता है। रचनाकार समाज का अंग होने के कारण इस दिशा में सक्रिय रहता है और अपनी सृजनात्मक क्रियाशीलता के माध्यम से वह समय सापेक्ष परिस्थितियों को उजागर करते हुए आगे बढ़ता है, अर्थात् उसके काव्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से युग बोलता है। साहित्य हृदय की भावनाओं के प्रकटीकरण का उत्तम और सशक्त माध्यम है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी भावनाओं को व्यंग्य और चिंतन अथवा सम–सामयिक विषयों के माध्यम से उजागर करता है।

अब बात यह आती है कि मौजुदा साहित्य का उपयोग कितना और किस तरह हो रहा है? क्या यह साहित्य जनोपयोगी, राष्ट्रोपयोगी अथवा विश्वोपयागी है? अच्छे साहित्य में इन बातों का होना अनिवार्य शर्त होती है तथा ऐसा साहित्य सांस्कृतिक चेतना और प्रेरणा को जगाने का कार्य भी करता है।

21वीं सदी अनेक संभावनाओं की सदी है। समाज, साहित्य, संस्कृति व परिवेश के प्रति सजगता इस कविता में जैसी दिखाई देती है वैसी सजगता पहले शायद ही किसी कविता में दिखाई दे। आज का लेखक या कवि एक उम्मीद, एक आस, एक विश्वास है। कवि समाज व संस्कृति की स्पष्ट झलक प्रस्तुत कर रहा है।

यद्यपि इस सदी के समाज में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक एवं नैतिक विषमताएँ भी दिखाई देती हैं। कविगण इस विषमता पर कठोर प्रहार करते हैं ताकि समता की स्थापना की जा सके। युग परिवर्तन के इस काल में परिस्थितियाँ भी सतत् रूप से परिवर्तित हो रही हैं। जब परिस्थितियाँ करवट लेती हैं तो सामाजिक मूल्य भी उनसे निश्चित रूप से प्रभावित होते हैं, जिनके परिणाम स्वरूप जीवन–मूल्य और संवेदनाएँ भी बदलती हैं। समाज में क्षीण होती संवेदनाओं को व्यक्त करते हुए 'अरूण कमल' जी ने अपने काव्य संग्रह **'मैं वो शंख महाशंख'** में **'क्रिया'** कविता में लिखा है–

''घाट पर तीन शव जल रहे थे। यह अन्तिम था। पुत्र रो रहा था और लोग भी। साथ–साथ लोग हंसी–मजाक भी कर रहे थे। डोम ने अग्नि दान के वक्त हुज्जत की तो किसी ने शव के शव के पियक्कड़ स्वभाव का वास्ता दिया। सालों ने बहनोइयों से मजाक किए। पंडित ने खैनी ठोंकी। लम्बी पीक मारी। सबने मिलकर अन्तिम क्रिया की।

सप्त भूमि पर कानी उँगली से राम
नाम लिखा। गंगा जल माथे पर
छींटा। घर चले।''[3]

वर्तमान समय में सर्वत्र परिवर्तन की आँधी आई हुई है। सम्पूर्ण विश्व बदलाव की ओर अग्रसर है। प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से जीवन यापन करना चाहता है। इस स्वतन्त्रता से पर्याय–मानव देह का सार्थक उपभोग है। वर्तमान परिवेश में सब कुछ मानव–देह के चारों ओर घूम रहा हैं मानव–देह प्रदर्शन और संभोग का पर्याय बन चुकी है। मानव शरीर को रिश्वत के रूप में परोसा जा रहा है और इस कृत्य पर उसे कोई पश्चाताप भी नहीं है। इस परिवर्तन के कारण उसकी सोच–समझ भी परिवर्तित हो गई है। देवेन्द्र आर्य जी इस भाव को प्रकट करते हुए लिखते हैं –

''बँटते–बँटते कटते–कटते
सिकुड के दिल हो गया निकाय
सुख–दुख डिब्बा बन्द हो गये
रिश्ते हुए वे भी चाय।''[4]

21वीं सदी में भूमंडलीकरण और बाजारवाद के साथ एक

प्रमुख विकृति ने इस दशक में जन्म लिया, वह है – धर्मोन्माद। जहाँ सभ्यता को भी धर्म का पर्याय बनाकर प्रस्तुत कर दिया गया। फलतः घृणा, हिंसा और प्रतिशोध की आग में समाज जल रहा है। इसी उन्माद को कवि इस प्रकार व्यक्त करता है–

''कि कहीं मिलता है आधा जला हुआ दुपट्टा,
कहीं आधा जला हुआ खिलौना,
कहीं अधजली बीड़ी,
कहीं दमकलों के पाइप
कहीं दिलजले
कहीं–कहीं तो
केवल जलन मालूम होते हैं।[5]

अनुपमा वर्मा ने अपनी कृति 'दस्तक' में देश में धार्मिक रूप से भड़कने वाले दंगों का उल्लेख इस प्रकार किया है–

''दंगों में हज़ारों लोग मारे गये,
बस्तियाँ लुट गई
जलते चुल्हे जलकर,
खाक हो गये।''[6]

21वीं सदी में समय बहुत तेजी से बढ़ रहा है। समाज, राष्ट्र और विश्व स्तर पर गाँव से लेकर शहर तक रोज कुछ–न–कुछ बन और बिगड़ रहा है। आज की स्थितियों में बदलाव के साथ–साथ बदल रही हैं लोगों की मनोवृत्तियाँ और मनोदशाएँ। इसी बदलाव और असुरक्षा को लेकर कवि का कथन है–

''ऐसे में कुछ भी निश्चित नहीं
नहीं जानता कल शाम को छह बजे
आऊँगा या नहीं।
कुछ भी पक्का नहीं।[7]

इतनी तेजी से बदल रही दुनिया में लोगों में संवेदनाएँ समाप्त होती जा रही हैं। आपसी प्रेम में कमी आ गई है। परिवार छोटे होते जा रहे हैं तथा अकेले रहने की प्रथा–सी चली हुई है। कवि इन भावों को व्यक्त करता हुआ कहता है–

''खाली घट और खाली स्टेशन उम्मीद में रहते हैं
लोग आते हैं
खिलखिला उठता है घर
लोग जाते हैं
और प्रेमी की आँख–सा
उदास हो जाता है स्टेशन
लोग न हों तो
बेमानी हो जाते हैं
घर और स्टेशन।''[8]

21वीं सदी का कवि मानव–मूल्यों को बचाने का पक्षधर है। वह वर्तमान युग–परिवेश की परिस्थितियों से घिरे मानव–जीवन का सजीवांकन करता है तथा साथ ही समकालीन चुनौतियों से भी दो–चार होता है। कवि इस भाव सत्य को उद्घाटित करते हुए कहता है–

''घरघराते हवाई जहाज सुबह–सुबह भरते हैं उड़ान,
बुरी खबरें हमारे दरवाजे पर फेंक दी जाती हैं।
किसी का ध्यान नहीं गया इस ओर शायद,
कितनी लम्बी हो गयी हैं,
हमारे जीवन की रातें, सुबह कितनी छोटी।''[9]

21वीं सदी की कविता ने साहित्य समाज और राजनीति तथा धर्म एवं संस्कृति के प्रत्येक पक्ष को स्पर्श करके लोगों को जागरूक करने का सार्थक प्रयास किया है। कविता में राजनीति के झूठ, छल–प्रपंच, कपट, षड़यंत्र और बैर–भावना, प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है। अरूण कमल जी ने 'योगफल' काव्य संग्रह में राजनीति का सत्य उजागर किया है –

''पहले ही दिन सरकार ने आँगनबाड़ी सेविकाओं पर लाठियाँ भाँजी
दूसरे दिन वृद्धावस्था पेंशन प्रदर्शन पर पानी के फौव्वारे
तीसरे दिन छँटनीग्रस्त शिक्षामित्रों के धरने पर कुत्ते छोड़े
चौथे दिन उजड़े झोंपड़वासियों पर घोड़े दौड़ाए
पाँचवें दिन बेरोजगारों के जुलूस को जीपों से रौंदा
छठे दिन मूक–बधिर–नेत्रहीनों पर आँसू गैंस के गोले ठोंके
सातवें दिन बालिका हत्या का विरोध करती औरतों पर गोलियाँ दागीं
और सात को मौके पर ढेर किया
सबने स्वर से गाया
ऐसी लोकप्रिय न्यायप्रिय
देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी सरकार
धम्माशोक बाद कभी नहीं आयी
कभी नहीं
नहीं !''[10]

राजनीति में जहाँ एक तरफ स्वार्थ का बोलबाला है, वहीं दूसरी ओर भ्रष्टाचार भी चरम–शिखर पर पहुँच चुका है। उदयभानु हंस जी इसका कच्चा चिट्ठा खोलते हुए कहते हैं–

''सभी क्षेत्रों में पनप रहा है भ्रष्टाचार निरन्तर,
आज अधिक जो भीड़ जुटा ले, नेता वही धुरन्धर।
पद की ही पूजा और अब तो सत्ता का सम्मान,
स्वार्थ–सिद्धि ही ध्येय बन गई, पैसा ही भगवान।''[11]

नेताओं की कथनी व करनी में प्रयाप्त अन्तर है। राजनीतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो चुका है। राजनेता चुनाव के समय झूठे वायदे करते हैं तथा सिंहासनारूढ़ होते ही सब भूल जाते हैं। हंस जी आहत होकर लिखते हैं –

''मिट ना सकेगी कभी गरीबी, कागज पर योजना बनाकर,
कैसे खाली पेट भरेंगे आकर्षक आँकड़े चबाकर,

कितना गीता ज्ञान सुनाओ, या समता का शोर मचाओ,

जब तक हो ना हृदय परिवर्तन, युग परिवर्तन व्यर्थ रहेगा।''[12]

21वीं सदी की कविता में वर्तमान की झलक है। आज का मनुष्य भौतिक उन्नति के लिए उत्यधिक व्यस्त है। इसी व्यस्तता और उन्नति की लालसा से जीवन में तनाव और दबाव है, जो कविता में विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। इस सदी की कविता को तनाव व दबाव की कविता कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी। मनुष्य के लिए स्वार्थ सर्वोपरि हो गया है। लोग मुखौटा पहने हुए दोहरा जीवन जी रहे हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व में अंतः व बाह्य समन्वय का अभाव है। इसी को व्यक्त करते हुए कवि कहता है–

''आपा–धापी में, भागदौड़ भरी जिन्दगियाँ
मुखौटा ओढ़े
बहला–फुसला, भटक रही
ना किसी की जान पहचान
अपना बन काट रही,
बाहर से साफ–सुथरा
अन्दर की मलिनता
कचोट रही।''[13]

परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है– ''नये इलाके में संग्रह की कविताओं में कई बार व्यक्त है– हमारा समय। क्रूर विसंगतियों से भरा हुआ समय। शताब्दी का अवसान। जब भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र को लेकर घनघोर संकीर्णतावाद और सनक उभार पर है। हिंसा का वर्चस्व है।''[14]

''फहरा रही है पछवा हवा में
स्वाधीनता की जर्जर पताका
दुनिया की विधानसभाओं से बहिस्कृत
खड़े हैं कवि भग्नमूर्ति के पास नंगे पाँव
विफल हो चुका दासों का विद्रोह
रौंदा जा रहा है पवित्र गर्भगृह
स्पार्टेकस मारा गया मारा गया प्रमथ्सु
झोंका गया आग में जिन्दा
जो वैकुण्ड से चुराकर लाया था आग।''[15]

प्रफुल्ल कोलख्यान का मानना है कि ''इस कठिन समय में चुनौतियों से जूझने को देखना और दिखलाना भी साहित्य का दायित्व है। समझदार लोग इन चुनौतियों को कहाँ सुन पाते हैं। अरूण कमल उनके मन को पढ़ते हैं, 'इस तेज बहुत तेज चलती पृथ्वी के अन्धड़ मै।। जैसे मैं बहुत–सारी आवाज सुन पा रहा हूँ। वैसे ही तो होंगे वे लोग भी जो सुन नहीं पाते गोली चलने की आवाज ताबड़तोड़। और पूछते हैं– कहाँ है पृथ्वी पर चीख?''[16]

21वीं सदी की हिन्दी कविता में स्त्री पीड़ा का भी मार्मिक चित्रण है। आधुनिक युग में भी नारी को समानता का अधिकार केवल कागज़ों में ही मिला है, समाज में तो अब भी उसे अनेक असमानताओं और दुर्व्यवहारों का सामना करना पड़ता है। आज भी बेटे और बेटी में भेद किया जाता है। समाज में फैली कुरीतियों के कारण नारी के मन में असुरक्षा की भावना व्याप्त है। एक बेटी के मन की भावनाओं को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

मैं इक चिड़िया हूँ पापा
देखो तो।
धरती चिड़िया के पास है
आसमान उसकी आस है
पंख उसके पास हैं
बिना रोक–टोक वह उड़ती है
थक जाए तो
जिस टहनी पर चाहती है
बैठती है
गीत अपने गाती है
देखो तो पापा
चिड़िया कितनी खुश है।
दाना उसकी चोंच में है।
उसका घर उसकी पसन्द है
देखो तो पापा
उसका घर !
वह दुनिया की पहली वास्तुकार
कितनी सजग उसकी दृष्टि
कितना सघन संसार
सोचो तो पापा
मैं तुम्हारी बिटिया
इक चिड़िया हूँ
अपने मन की !
सोचो तो पापा
सोचो न ![17]

समाज में नारी आज भी संघर्षरत है तथा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए तत्पर है। नारी के समान सहनशीलता अन्यत्र दुर्लभ है। कुमार अंबुज ने 'सहनशीलता' कविता में लिखा है –

पृथ्वी, स्त्री, निर्धन और गुलाम,
इसके कुछ विचारणीय उदाहरण हैं।
यह हर उस कदम के खिलाफ होती है
जो उसी वक़्त ज़रूरी है।
आप पत्थर, लोहे या पेड़ से भी कुछ सीख सकते हैं,
हालाँकि आप पेड़, पत्थर या लोहा नहीं हैं।[18]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 21वीं सदी की हिन्दी कविता में सामाजिक चिंतन प्रत्येक कवि का ध्येय लक्षित होता है। इस कविता ने अपने समय के यथार्थ को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफलता हासिल की है। कवि ने समाज में व्याप्त समस्याओं के प्रत्येक पहलू को समझने तथा व्यक्त करने का प्रयास किया है। इस

सदी का कवि तत्कालीन समस्याओं विद्रूपताओं के प्रति आक्रोश व्यक्त करने के साथ–साथ मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन का आकांक्षी रहा है। एक ओर वह नवीन जीवन–मूल्यों और विचारों को महत्व देना चाहता है तो दूसरी ओर समाज और संस्कारों के प्रति उनका मोह देखने को मिलता है।

निष्कर्षः

इस सदीं की कविता ने पुरानी घिसी–पिटी लकीरों पर चलने की बजाय अपना नया रास्ता चुना है। नये तेवर के साथ नवीनतम विषय–वस्तुओं को अपनाया है। इसके साथ ही समाज में व्याप्त बुराइयों पर प्रहार किया है तथा सामाजिक चिंतन की नई भाव–भूमि प्रदान की है। इस सदी की कविता मानव जीवन के सभी पहलुओं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक को समेटकर सामने आती है तथा युगीन प्रवृत्तियों एवं विकृत्तियों से साक्षात्कार करवाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रविन्द्रनाथ मिश्र, अन्तिम दशक की हिन्दी कविता, पृ. 7
2. रविन्द्रनाथ मिश्र, अन्तिम दशक की हिन्दी कविता, पृ. 8
3. अरूण कमल, मैं वो शंख महाशंख, पृ. 45, संस्करण–2012
4. देवेन्द्र आर्य, इक्कीसवीं सदी का आल्हा, पृ. 128
5. अष्टभुजा शुक्ल, बस्ती एक धीमा जहर है, अंक–10, पृ. 113
6. अनुपमा वर्मा और दस्तक
7. रविन्द्रनाथ मिश्र, अन्तिम दशक की हिन्दी कविता, पृ. 74, संस्करण–2013
8. जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुन्दर–सुन्दर, पृ. 83, संस्करण–2008
9. रविन्द्र कालिया, वागर्थ, पृ. 39, फरवरी–2005
10. अरूण कमल, योगफल, पृ. 68, संस्करण–2019
11. डॉ. रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस के प्रतिनिधि गीत (समय की चुनौती) पृ. 85
12. डॉ. रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस के प्रतिनिधि गीत (अभूत कलश) पृ. 28
13. डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश', निर्मला (मुखौटा) पृ. 30 संस्करण–2016
14. परमानन्द श्रीवास्तव, कविता का अर्थात् पृ. 36
15. अरूण कमल, नये इलाके में, पृ. 4
16. रविन्द्रनाथ मिश्र, अन्तिम दशक की हिन्दी कविता, पृ. 78, संस्करण–2013
17. जितेन्द्र श्रीवास्तव, असुन्दर–सुन्दर, पृ. 21, संस्करण–2008
18. कुमार अंबुज, अमीरी रेखा, पृ. 59, संस्करण–2019

कविता देवी

मोबाइल नं. 8901050489

ई–मेल– kavitamehra1080@gmail.com

पताः 251 बी, आदर्श नगर,

सोनीपत

पिन –13100

29

हरियाणवी लोकगाथाएँ

मधु शर्मा

सारांश

सारांश लोक साहित्य की निर्झरणी अनादि काल से लोक जीवन एवं लोक संस्कृति को अमृत आसव का आचमन करवाती चली आ रही है। उसकी अजस्त्र–धारा में लोकगाथाओं का अपना वैशिष्टय है। लोक साहित्य की अनेक अन्य विधाओं की भांति लोकगाथाओं की परंपरा भी वेद विहित– सी प्रतीत होती है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में 'गाथा शब्द का प्रयोग पद्य या गीत के अर्थ में हुआ है, 1 जबकि गाने वाले को 'गाथिन की संज्ञा से अभिहित किया गया है। 2 ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में भी गाथाओं की अस्मिता का उल्लेख हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण ने इन्हें कहीं 'महा गाथा' तो कहीं 'गाथा' कहा गया है। 3 यास्क के निरुक्त में भी 'गाथा की चर्चा हुई है, जिसकी व्याख्या दुर्गाचार्य ने इस प्रकार की है –

4 " सः पुनरितिहासः ऋग्वद्धो गाथाबद्धश्च। ऋक् प्रकार एवं कश्चित गाथेत्युच्यते । गाथाः शंसति, नाराशंसीः इति उक्तं गाथानां कुर्वतीति। " अर्थात् वैदिक सूक्त में कहीं–कहीं जो इतिहास मिलता है वह कहीं ऋचाओं एवं कहीं गाथाओं में अनुस्यूत है । महाभारत में दुष्यंत पुत्र भरत की महिमा संबंधी अनेक गाथाओं का आकलन है। श्री मद् भागवत के सप्तम स्कंद में भी इनकी कमी नहीं है। गृहसूत्रों में भी गाथाओं की परंपरा अक्षुण्ण रूप में उपलब्ध है।5

लोकगाथा– ग्रिम महोदय के कथनानुसार बैलेड लोकगाथा जनता के द्वारा, जनता के लिए जनता का काव्य है । 6 अमेरिकन विद्वान मैकएडवर्ड लीच ने बैलेड को प्रबंधात्मक लोक गीत का एक प्रकार माना है । 7

लोकगाथा वह लोकरंजक प्रबंधात्मक लंबा गीत है, जिसमें गेयता के साथ ही कथानक की भी प्रधानता हो । इसलिए इसे कहीं 'कथा गीत 8 तो कहीं 'गीत कथा 9 कहां गया है । सा दृष्य की दृष्टि से लोक गाथा को अंग्रेजी में बैलेड शब्द का पर्याय माना जा सकता है । लोकगाथा का प्रचलन केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं है बल्कि विश्व साहित्य में भी है । हिंदी में जिसे लोकगाथा कहा जाता है, अंग्रेजी में उसे बैलेड" कहते हैं, जिसका अर्थ है वीरगाथा लोक गाथा गद्य और पद्य मिश्रित रचना होती है, जिसे संस्कृत में चंपू कहते हैं। प्रो. किटरिज के अनुसार बैलेड– ए स्टोरी टोल्ड इन वर्सेज– बैलेड ' वह कथा है, जो गीतों में कही गई हो।10 'लोक गाथा किसी व्यक्ति विशेष की संपत्ति ना होकर संपूर्ण जाति की धरोहर होती है। 11 गाने वाली जातियां पीढ़ी दर पीढ़ी इन गाथाओं को जीविकोपार्जन के लिए आगे बढ़ाती रहती है तथा इस प्रकार गाथा रचना प्रक्रिया का कार्य चलता रहता है।

लोकगाथा की विशेषताएँ–

ए. बी. गमियर 12 ने एवं डॉक्टर कृष्ण देव उपाध्याय ने लोकगाथाओं की जो विशेषताएं रेखांकित की हैं, वे सब की सब हरियाणा की लोक गाथाओं में भी उपलब्ध है। इन विशेषताओं को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

1) उसमें आत्मव्यन्जक तत्व का पूर्णतः अभाव होता है अर्थात् वह अनिवार्यतः वस्तुव्यन्जक होता है।

2) कन्ठानुकन्ठ प्रसार और प्रचार होने के कारण उसका निश्चित पाठ नहीं होता।

3) उसमें श्रम–साध्य कलात्मकता नहीं होती किंतु यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति अधिक होती है।

4) उसमें सहजोच्छवास भावनात्मकता और सरल कल्पना की मात्रा जितनी अधिक होती है उतनी बौद्धिकता एवं कल्पना की ऊंची उड़ान नहीं होती।

5) उसमें भाषा विचारों की सरलता एवं ऊपरले दर्जे की नैसर्गिकता होती है।

6) उसमें अनावश्यक शब्दाडंबर एवं अस्वाभाविक और श्रम साध्य अलंकारों का अभाव होता है द्य उसमें प्रयुक्त शब्द एवं अलंकार व्यवहारिक जीवन से गृहीत होते हैं , परंपरागत साहित्यिक स्रोतों से नही।

7) उसमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव होता है।

8) उसमें दीर्घ कथानक की विद्यमानता रहती है।

9) उसका छन्द सीधा–साधा और सरल होता है और तुकों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

10) उसमें संगीत एवं नृत्य का अभिन्न साहचर्य रहता है ।

11) उसमें प्रतिपाद्य में इतिहास की संदिग्धता होती है ।

12) उसमें स्थानीयता की गंध खूब गमकती है।

हरियाणा की लोकगाथाओं में जीवन के विविध आयामों का मणिकांचन संयोजन हुआ है द्य भाषा, भाव, पत्र, अभिप्राय आदि कथा तत्वों के गहन अध्ययन के लिए इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा रहा है –

1. प्रेम गाथाएँ
2. वीर गाथाएँ
3. अलौकिक गाथाएँ

प्रेम गाथाओं में प्रेम और असाधारण परिस्थिति एवं विषम वातावरण में अंकुरित होकर कड़ा संघर्ष उत्पन्न करता है । 'कंवर निहालदे'' और 'नर सुल्तान' का प्रणयाख्यान इस वर्ग का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है द्य 'भरथरी' की गाथा में अभिव्यंजित प्रेम की कश्मकश भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। हरियाणा के गाँवों में पूरा सावन जोगी रात–रात भर ''नर सुल्तान' और ''निहालदे' ' का किस्सा गाते हैं। इस गाथा में नर–सुल्तान और 'कंवर निहालदे' ' की प्रणय– पींग के झूंटे तो लोक मानस को आह्लदित करते ही हैं, इसके साथ ही मरवण और सुल्तान के बीच बहन भाई का पावन प्रेम भी अपनी पराकाष्ठा पर

दिखाया गया है। गोधू पूनिया तथा ज्यानी चोर के साथ सुल्तान की मित्रता का निर्वाह वस्तुतः लोक आदर्श का स्तुत्य दृष्टांत बन पड़ा है। दिसौटे के दिनों में सुल्तान चलते–चलते नरवगढ़ में पहुंच गया। वहां के राजा ढोल की महारानी 'मरवण' का रूप सौंदर्य दूर–दूर तक चर्चा का विषय बना हुआ था। सांवल सिंह बंजारे ने उस अनि। सुंदरी की रूप राशि का वर्णन अपने चाचा भीम सिंह के सामने कुछ इस प्रकार किया–

हाथ जोड़ के सांवल बोला
सुणले चाचा साफ जवाब
रानी देक्खी नल के ढोलकी
इन्द राज्जा के देक्कखी नांय
मूंगफली–सी राणी की आंगली
बेल्लण–बेल्ली राणी की बाँह ।
शीश बण्याँ छोटटा–सा नारियल
नेन्तर ल्याई मिरग के मांग
हास्सै तै भर दे मोती के थाल
भों मन्डल मैं कोन्या इसी पद्मनी
इन्द राजा की कहता नांय । 13

ऐसा रूप लावण्य किसी के भी मन को डावांडोल कर सकता है, किंतु महल में बुलाए जाने पर सुल्तान मरवण को बहन कहकर संबोधित करता है तथा भाई के रूप में ही उसके यहां नौकरी करता है ं मरवण के पति राजा ढोल को सुल्तान और अपनी महारानी मरवण के भाई बहन के पवित्र संबंध पर संदेह हो जाता है तो वह मारवण को इस प्रकार प्रताड़ित करता है–

पकड़ भुजा नल का ढोल बोलता,
सुण राणी मेरी बात
सड़ासड़ मारू बदन पै कोलड़े,
मार उड़ा दूँ तेरी खाल ।
मर्दजै बदलै सिर की पागड़ी
तिरिजा बदलै सिर के चीर।
तन्नै के बदल्या कुंगर सुल्तान तै,
मन की दे ना सान्च बताय
इतनी कह मारू कै मारया कोलड़ा
दीवान नै पकड़ा राजा का हाथ । 14

सुल्तान के शौर्य पूर्ण कारनामों से दरबारी जलने लगे तथा उन्होंने बहन भाई के प्रेम को बदनाम करने की ठान ली द्य यह बात कानोंकान निहालदे तक भी पहुंच गई द्य अब क्या था, निहालदे सौतिया डाह से जल उठी और उसने मरवण को चौरासी परवाने लिख डाले । उन परवानों के कुछ अंश इस प्रकार हैं –

मरवण मोह के मेरा पति तू बणी सुहागण डोलत
कटज्या तेरी जीभ भाई भी के मुहँ ले कै बोल्लै ॥

हरियाणा के दूसरे प्रकार के किस्से 'वीरगाथाएं' हैं इन गाथाओं में किसी वीर नायक के उत्साहपूर्ण एवं शौर्य संपन्न कार्यों का उल्लेख रहता है कभी वह वीर पुरुष अपने संस्कृति के ऋणार्थ प्राणों की बाजी लगाता है,कभी अपने शत्रुओं से बदला लेता हुआ पाठक और श्रोताओं के समक्ष आता है। कभी किसी अबला के सतीत्वरक्षार्थ अपनी तलवार से प्रशस्ति लेख लिखता है। हरियाणवी प्रदेश में अत्यंत लोकप्रिय वीर रस प्रधान गायन शैली है– जोगियों के 'साके' जोगियों के 'साकों' में 'भूरा बादल' नामक वीर गाथा एक अत्यंत लोकप्रिय कृति है, जो हरियाणवी क्षेत्र में लगभग सभी योगियों द्वारा गाई जाती है। इस गाथा के कुछ अंश उद्धृत किए जाते हैं। कथा सूत्र इस प्रकार है कि राणा रत्तसेन को जब धोखे से बादशाह खिलजी ने गिरफ्तार कर लिया तो अपने देवर भूरे बादल से सहायता मांगने के लिए महारानी पद्मावत भूरे बादल की हवेली पर पहुंची द्य पर घर की कलह के कारण देवर तो रूठे हुए थे द्यमहारानी क्या कहती है–

सुनिए देवर भूरे हो तू शर्म हजूर।
ना म्हारे गोदी आंगली म्हारा पीहर दूर ।
बेडा पड्या समद में खेवटिया दूर,
राणा कोबंध छुड़ादे देवर तू शर्म हुजूर ।
भूरे ने उदासीनता दिखाते हुए अपनी भाभी को कह दिया,
भूरा बादल बोलता चितौड़ राणा,

राणी हाथ बंध्यो मेरे कांगणा,
मनैं व्याहवण जाणा
राणी कंवारी रहज्या पीहर लाग्गे लाणा
आठ लाख अस्सी हजार शाह का तुरकाणा
सिर के ऊपर कौण धरै आज बैर बिराणा ,

तभी भूरे की माँ ने झिडकते हुए कहा –

भूरे की माता बोलती सुण भूरा मेरा
ये सोल्हा सौ पद्मनी तेरे खड़ी चौफेरा,
तनै देवर–देवर कह रही क्यों मुखड़ा फेरा।
रे राणी आँसु गेरैं मोरज्यों हिया लरजै मेरया।
तोड़ बगा दे कांगणा पकड़ो समसेरा।
गौरी शाह के दलों में रै व्याह होज्या मेरा,

सांग्याँ होज्या आरता तलवारां फेरा,
बैरी था तै के हुआ भाई था तेरा,
सेर गढ़या कै पकड़िये तू रहा भगेरा,
तू ओढ़े नै चूंद्ड़ी मनै दे दे चीरा,
मै पडू दलाँ मैं टूट कै मार ठादूँ ढेरा ।15

'भूरे बादल' की तरह ही दूसरी लोकप्रिय वीरगाथा 'फत्ता जयमल' है। इस वीरगाथा में फत्ता और जयमल के अपूर्व शौर्य का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है। 'मालदे' के आरते पर जयमल की अत्यन्त

रूपवती रानी 'शिशबदनी' को 'मालदेश ने जब देखा, तो सुधबुध खो बैठा। उसने हठ की कि वह अपना आरता 'शिशबदनी' से ही करवाएगा। इसी पर एक बवंडर उठा और विवाह का मंडप रणक्षेत्र बन गया।16

शिशबदनी राणी कूकती दीवान पियारा,
मालदे चढ़ग्या महल मै कौणरोकणा हारा,
कमरयां तैं लिया सड़ाक दे खांडडा दो धारा,
आरते ऊपर मालदे आ मारयां आरा ।
मालदे के सिर खेवै तेग जणें जलै अंगारा,
आरते पै काटटै राजपूत न कंवर अठारा
जख्मी होग्ये बाधियाँ दो दसौ और बारा । 17

हरियाणे का वीराख्यान 'हरफूल जाट जुलाणी वालाश एक विशेष स्थान का अधिकारी है। इस युवक ने गोमाता की रक्षा करते हुए विधर्मियों की क्या–2 खबर ली, यह उन श्रोताओं पर भलीभांति व्यक्त है, जिन्होंने श्हरफूलश गाते हुए जोगियों को सुना है।

अलौकिक गाथाएँ –

हरियाणा में तीसरे प्रकार के, जो किस्से मिलते हैं, उनमें अद्भूत तत्त्वों का सम्मिश्रण है। उनमें साहसिक कार्यों का उल्लेख होता है और अलौकिक तत्त्व प्रयोग में लाए जाते हैं। श्शीलादेश, 'पूरन भक्तश, 'भरथरीश, 'गौरां का ब्याह' और श्गुरु गंगाश इस वर्ग की गाथाओं में अग्रणी है। 'शीलादेश गाथा में शीला के महल के दीप, द्वार आदि बोलकर राजा को चकित कर देते हैं। इन मानवेत्तर तत्त्वों के द्वारा श्रोताओं का आश्चर्य अपनी सीमा तोड़ देता हैं। 'गुरू गूगा श गाथा में गूगा जब गर्भ में है, तभी से वह चमत्कार दिखाता है। रथ के बैलों को साँप डस लेता है, तो माता को स्वप्न में दर्शन दे विपत्ति से मुक्ति का उपाय सुझाता है।

गुरु गोरखनाथ की अनुकम्पा से उसे इतना बल मिला कि पर्वत तथा महल हिल गये, उसका शरीर इतना विस्तृत और विशाल हो गया कि पिलंग भी उसके भार में टूट गया –
लगे कलेजे बोल जगै जिब साध सनेही
गिखर कंप्ये ,हाल महल तै चिटकी रेही
टूटे पिलंग के साल पीर की फूली देही ।

'पूर्णभक्त के हाथ– पाँव काटकर कुएँ में गिरवाना तथा गोरखनाथ द्वारा उन्हें पुनः पूर्ववत् कर देना, स्यालकोट के बागों का सूखना तथा पूर्णभक्त के आगमन पर पुनः हरा हो जाना, इच्छरादे की दुद्धी (स्तन) से स्वतः दूध की धार निकलकर पूर्णभक्त के मुँह तक पहुँचना आदि, सब के सब चमत्कारी तत्व ही तो हैं।

निष्कर्ष :–

हरियाणा की इन लोकगाथाओं में कथानक रुढ़ियों या अभिप्रायों का प्रयोग कथाचक्र को अचानक नया मोड़ देने के लिए स्थान–स्थान पर किया गया है। चकवा–चकवी का नायक या नायिका को भावी घटनाओं से सूचित करना, मृतक का जीवित और जीवित का मृतक हो जाना, पशु–पक्षियों द्वारा आपत्तिकाल में मानव की सहायता करना, अमरफल खाकर अमरत्व को प्राप्त करना जादू की कारामात ने मनुष्य का पशु या पक्षी बना देना, जैसे अनेक अभिप्राय लोकगाथाओं को रोमांचक एवं विस्मयकारी बना देते हैं द्य इन्हीं तत्वों के कारण हरियाणा के लोक मानस का भरपूर मनोरंजन हो पाता है।

सन्दर्भ–

1. डॉ पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणवी साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ – 73
2. इन्द्रभिद गथिनों बृहदिंद्रमर्केभिरकिंणः । ऋ, वे० 1.7.2
3. तदेषाऽभि यज्ञगाथागीयते । तां गाथां दर्शयति। ऐ० बा० 39–7
4. निरुक्त 4–6 की व्याख्या ।
5. पारस्कर गृह्यसूत्र काण्ड । खण्डिका 7(ख) आश्वलायन ब्रह्मसूत्र 1–15
6. दि पोएटरी आफ दि पीपुल, बाई दि पीपुल, फार दी पीपुल (गूमर ओल्ड इंगलिश बैलेड्स)
7. ए फार्म आफ नरेटिव फोक, सांग, डिक्शनरी आफ फोकलोर, पृष्ठ–106.
8. श्री झवेरचन्द मेधाणी, लोक साहित्य ,पृ०–50
9. श्री सूर्यकरण पारीख, राजस्थानी लोकगीत, पृ०–18.
10. इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स, भूमिका, पृ०1
11. गूमर ओल्ड इंगलिश बैलेड्स, भूमिका, पृ०–36–37
12. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ –688
13. लोकसाहित्य की भूमिका, पृष्ठ –81–104
14. डॉ० पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणवी साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ –77
15. डॉ पूर्णचन्द्र शर्मा, हरियाणवी साहित्य और संस्कृति , पृष्ठ –77
16. डॉ पूर्णचन्द्र शर्मा, हरियाणवी साहित्य और संस्कृति , पृष्ठ –78
17. रघुवीर सिंह मथाणा डॉ० बाबूराम, हरियाणवी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ –71

मधु शर्मा
शोधार्थी पी०एच०डी०
हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविधालय
रोहतक , हरियाणा
रजिस्ट्रेशन संख्या– 21–BMU–6314
मोबाइल न – 8607106868
पता– 8थ, खन्ना कालोनी ,
सोनीपत ,131001, हरियाणा

30

ओमप्रकाश बाल्मिकि के साहित्य में स्त्री विमर्श

कविता देवी

सारांश

ओमप्रकाश बाल्मिकि वर्तमान दलित साहित्य के प्रतिनिधि रचनाकारों में से एक हैं। दलित साहित्य के विकास में ओमप्रकाश वाल्मिकि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने अपने साहित्य लेखन में प्रेम, भाईचारे, सद्भाव, समता, समानता एवं अहिंसा की प्रतिति की है। ओमप्रकाश वाल्मिकि सामाजिक ताने–बाने को बनाये रखना चाहते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मिकि के साहित्य में दो प्रकार के स्त्री समाज को दर्शाया गया है। एक ओर दलित समाज की नारियाँ हैं तो दूसरी स्वर्ण महिलाएँ हैं। दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मण वर्ण–व्यवस्था का तो दूसरी ओर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है। ''साहित्य, इतिहास, राजनीतिक और समाज–शास्त्रीय स्त्रोतों को खंगालने से दलित महिलाओं के संदर्भ में मुक्तिकामी, भीमस्मृति और दासता की प्रतीक मनुस्मृति के सह–अस्तित्व के तथ्य सामने आ सकते हैं।''[1]

''सवर्ण स्त्री को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। उसे केवल सनातनी और प्रतिक्रियावादी विचारधारा से संघर्ष करना पड़ता है। उसके इस संघर्ष में कम–अधिक रूप से सवर्ण पुरूष भी सहयोग देता है। परन्तु दलित स्त्री की व्याथा–कथा ही भिन्न है। घोर आर्थिक दरिद्रता, संपूर्ण समाज द्वारा निरंतर होने वाला अपमान, अशिक्षित माँ–बाप, पूर्णत प्रतिकूल स्थितियाँ तथा वासना से भरी भूखी सवर्ण आँखें, इन सबसे गुजरते हुए शिक्षा प्राप्त कर सम्मानित जीवन जीने की इस स्त्री की कोशिश वास्तव में महाकाव्य का ही विषय है।''[2]

कहने को तो 'यत्र नार्यस्तु पुज्यते रमते तत्र देवता' भारत का देववाक्य रहा है, किन्तु कोई भी युग ऐसा नहीं रहा, जब नारी का शोषण न हुआ हो। भारतीय वर्णव्यवस्था ने आज तक नारियों को समाज में जो स्थान दिया है, वह उसके हित के लिए नहीं अपितु अपने स्वार्थ की दृष्टि से दिया है। औरतों के संदर्भ में बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा है कि भारतीय महिलाएँ दलितों में भी दलित हैं।

डॉ. बाबा साहेब ने 1942 में अखिल 'भारतीय महिला सम्मेलन' में कहा था कि 'किसी भी समाज की प्रगति का सही अन्दाजा स्त्रियों में हुई प्रगति से ही लगाया जा सकता है। आप घरों से निकलकर यहाँ तक आयी निश्चय ही आप प्रगति के पथ पर हैं, आप अपने पतियों के सामाजिक कार्यों में सहयोग करें। पति की दासी नहीं मित्र बनें, बच्चे कम पैदा करें तथा उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने पर ही, उनकी राय के अनुकूल शादियाँ करें। बेटा–बेटी दोनों को ही उच्च शिक्षा दें, पति यदि शराब पीरक घर में घुसें तो उनके लिए घरों के दरवाजे बंद कर दें। अधिक नहीं तो थोड़ी–सी बातों पर अम्ल करें तो निश्चय ही आपकी प्रगति होगी।''[3]

ओमप्रकाश बाल्मिकी बाबा साहेब के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हैं। उनकी आत्मकथा 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मिकि की 'माँ' का चित्रण दलित स्त्री के द्वारा परिवर्तन की नींव से रखा गया है। उनकी माँ सुखदेव त्यागी के घर लड़की की शादी में झूठन इकट्ठा करने गई थी क्योंकि वह उनके घर में काम करती थी। 'जूठन' से अलग कथाकार की माँ ने जब अलग से पत्तल मांगी तो सुखदेव त्यागी पत्तल देने से इंकार कर देता है कि ''अपनी औकात में रह चूहड़ी, उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन– इन वाक्यों ने उनके दिलोदिमाग को बरछी की तरह छलनी कर दिया था। उनकी माँ तिलमिला गई थी, आँखें सुर्ख हो गई थी। उन्होंने वहीं टोकरा बिखेर दिया था और सख्त लहजे में सुखदेव से कहा था, इसे ठाके घर में धरले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देणा।''[4]

इस प्रकार दलित स्त्रियाँ बेशक दलितों में भी दलित हैं, लेकिन वे समाज में परिवर्तन की नींव रखती हैं। दुर्वव्यहार से उनके अन्दर आक्रोश और परिवर्तन की ज्वाला फूट पड़ती है।

जिस दिन स्त्रियों में चेतना आ जाऐगी, उस दिन व्यवस्था की चूलें हिल जाएंगी। सामाजिक कुरीतियों की ढूह भरभराकर गिर जाएगी। स्त्रियों का आक्रोश उसे जलाकर भस्म कर देगा। आज की स्त्री समाज से बाहर तथा अपने अन्दर के समाज को जानने की इच्छा रखती है। ताकि वो भी समाज की मुख्यधारा से जुड़ सके।

''बाहर एक दुनिया है
जिसे वह पकड़ना चाहती है
भीतर एक दुनिया है
जिसे वह जानना चाहती''[5]

दलित महिलाओं पर हो रहे अत्याचार व शोषण का विरोध करते हुए कवि सवर्ण समाज से पूछता है–

''यदि तुम्हें
नदी के तेज बहाव में
उल्टा बहना पड़े
दर्द का दरवाजा खोलकर
भेजना पड़े नयी नवेली दुल्हन को
पहली रात ठाकुर की हवेली
तब तुम क्या करोगे।''6

ओमप्रकाश वाल्मिकी ने स्त्री शोषण का मार्मिक चित्रांकन किया है। दलितों को अछूत समझा जाता है और उनके स्पर्श को पाप माना जाता है, जबकि दलित स्त्रियों के साथ ऐसा कृत्य ये तो स्वार्थ की पराकाष्ठा हो गई। कामपिपासा में अंधे समाज के ठेकेदार भूल जाते हैं कि अगर ऐसी परिस्थितियों में उनके घर की औरतों, बहू, बेटियों, बहनों को रहना पड़े तब तुम क्या करोगे? कुलीनों की, ब्राह्मणों की प्रवृत्तियों पर यह करारा तमाचा है। किसी भी नारी का सबसे

शोषित रूप वेश्यावृत्ति ही होती है। भारतीय सभ्य, उच्च कहे जाने वाले समाज पर 'देवदासी' वृत्ति एक कोढ़ के समान है। धर्म के नाम पर अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु भगवान को समर्पित कन्याओं से वेश्या की तरह व्यवहार किया जाना अमानवीयता नहीं तो क्या है?

''यदि तुम्हें
सरेआम बेइज्जत किया जाऐ
छीन ली जाऐ सम्पति तुम्हारी
धर्म के नाम पर
कहा जाऐ बनने को देवदासी
तुम्हारी स्त्रियों को
कराये जाऐ उनसे वेश्यावृत्ति
तब तुम क्या करोगे?''[7]

ओमप्रकाश वाल्मिकि सवर्णों से इस प्रकार के प्रश्न करके उनकी आत्मा को झकझोरना चाहते हैं।

पूर्व हिन्दी साहित्य लेखन में दलितों के दुःख–दर्द, पीड़ा, वेदना, अत्याचार, छुआछूत, अस्पृश्य–स्पृश्य एवं अन्याय और शोषण इत्यादि को केन्द्रित करके काव्य सृजन नहीं किया गया है। हाँ, प्रगतिवादी लेखन में निराला, पंत, नागार्जुन, त्रिलोचन जैसे संवेदनशील रचनाकारों ने कलम चलाने की कोशिश की, किन्तु वे भी पीछे हट गये। इसीलिए ओमप्रकाश वाल्मिकि उस पूर्व युग को पाखण्डी की संज्ञा देते है। ओमप्रकाश वाल्मिकि की कविता 'पण्डित का चेहरा' में वर्णित पद्याशों का अर्थ अपनी सुविधानुसार लोगों ने गढ़ लिए, उनके अर्थ बदल दिए। कवि अभिमत है –

शब्द कभी झूठ नहीं बोलते
झूठ बोलते हैं उनके अर्थ।[8]

ओमप्रकाश वाल्मिकि ने दलित जीवन स्तर को गहराई से अनुभव किया है। वे स्वयं भी उससे गुजरे हैं। जो रचनाकार स्वयं ऐसी परिस्थितियों से गुजरा हो, उस जीवन को भोगा हो, यदि वह लेखन में चित्रित करेगा तो वास्तविकता के साथ करेगा। कवि दलित स्त्रियों की दशा का चित्रण करते हुए कहता है –

''हाथ में लिए झाड़ू
और टूटा–फूटा कनस्तर
सुबह मुँह अँधेरे
घर से निकलती माँ को देखकर
कभी नहीं रोया बच्चा
डरा नहीं अकेले घर में
अंधेरे कोने से
या गली में गुर्राते कुत्ते से।''[9]

इस प्रकार कवि ने कामगार स्त्री का चित्रण भी किया है। जो सुबह–शाम अपने झाड़ू से गलियों की सफाई करने के लिए निकल पड़ती हैं।

'दलित साहित्य का सौन्दर्याशास्त्र' में ओमप्रकाश वाल्मिकि लिखते हैं–

''जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ठ मर्दित पस्त, हत्तोत्साहित वंचित वह दलित है।''[10]

ओमप्रकाश वाल्मिकि की सम्पूर्ण कविताओं में हिन्दू वर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोह है। जिस व्यवस्था ने दलितों को सभी अधिकारों से वंचित रखा है। आज दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और स्त्री साहित्य ने हजारों सालों की चुप्पी तोड़ी है। आज उन्हें समझ आया कि अपने हक के लिए स्वयं ही आवाज उठानी होगी। अपने हिस्से का सच कोई दूसरा नहीं बोलेगा, आपको खुद ही कहना पड़ेगा, ''बस्स!! बहुत हो चुका'। इस काव्य–संग्रह में कवि का आक्रोश अभिव्यक्त होता है।

''और मैं चुपचाप सुनता रहा
निरंतर बजता रहा
मेरे भीतर अनहद नाद
सन्नाटों की खामोश चीख–सा।''[11]

ओमप्रकाश वाल्मिकि ने अपने साहित्य के माध्यम से दलित समाज की प्रत्येक समस्या को सामने लाने का सफल प्रयत्न किया है। दलित साहित्य की निर्मिती में डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा का प्रभाव मुख्य रूप से दर्शित होता है। इसीलिए उन्होंने मानवता को केन्द्र में रखा है। शरण कुमार लिंबाले के अनुसार, ''दलित साहित्य अपना केन्द्र बिन्दु मानवता को मानता है। डॉ. अंबेडकर के विचारों से दलित को अपनी गुलामी का अहसास हुआ। उसकी वेदना को वाणी मिली। दलितों की वह वेदना, दलित साहित्य की जन्मदात्री है। दलित साहित्य की वेदना मैं की वेदना नहीं, समाज की वेदना है।''[12]

निष्कर्ष :–

ओमप्रकाश वाल्मिकि ने अपने साहित्य में दलित समाज की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। कवि ने स्वयं जिए हुए, भोगे हुए यथार्थ को कविता में पिरोया है। उनकी अनुभूति पूर्वजों एवं स्वयं पर हुए अत्याचार, अन्याय व शोषण से आत्मा कराह उठती है।

ओमप्रकाश वाल्मिकि ने अपनी आत्मकथा ''जूठन'' में स्त्रियों की पीड़ा के अपनी माँ की पीड़ा के समतुल्य माना है। इसलिए उनकी कविता 'स्वानुभूति की पीड़ा' का जीता–जागता उदाहरण है। वाल्मिकि जी ने समाज में व्याप्त बुराइयों पर साहित्य के माध्यम से तीव्र प्रहार किया है तथा समाज को जागने का आग्रह किया है। उनके साहित्य में दलित समाज तथा स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार, अनाचार का जो वर्णन है, वह प्रामाणिक लेखन है, यह काल्पनिक लेखन नहीं है। वाल्मिकि जी ने अपने लेखन में प्रतिकार, नकार, तेवर, प्रतिशोध, प्रहार, अव्यवस्था, जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था का पुर–जोर विरोध किया है। वे सामंतवादी मूल्यों, मान्यताओं, ब्राह्मणवादी व्यवस्था, छूआछूत इत्यादि का प्रतिकार करना काव्य का लक्ष्य समझते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मिकि संवेदनशील कवि है। वे मानवता का विरोध नहीं करते। अपितु अपने रचना संसार में समता–समानता, मानवता, बन्धुता के पक्षधर हैं। उनके काव्य में समाज को बेहतर बनाने की संकल्पना है। हताशा, निराशा, यातना, उपेक्षा, शोषण, अन्याय, पीड़ा, दर्द, उपहास आदि को झेलते हुए भी वे निराश दिखाई नहीं पड़ते। उन्होंने नारी को जागरूक करने का प्रयास किया है। नारी पर हो रहे अत्याचारों का पुरजोर विरोध करते हुए साहित्य रचना की है। आज की नारी शिक्षित हो रही है तथा पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है। जैसी स्थिति पूर्व में थी, वैसी वर्तमान में नहीं है तथा आने वाले समय अर्थात् भविष्य में नारी की स्थिति ओर भी अच्छी होगी। 'तनी मुटिठ्याँ' शीर्षक कविता में संघर्ष से जूझ रही पीढ़ी का वर्णन है। कवि कहता है कि एक दिन ऐसा आएगा, जब सभी महिलाएँ संगठित होकर उठेंगी, संघर्ष करेंगी तथा इतिहास बदलकर नया इतिहास लिखेंगी। कवि कहता है –

''मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर
खोद लिया है संघर्ष
जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिंगारी फूटेगी
जलती झोंपड़ी से उठते धुएँ में
तनी मुट्ठियाँ
तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास रचेंगी।''[13]

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. अपेक्षा–पत्रिका, अंक जुलाई–सितम्बर, 2003, पृ. 52
2. अपेक्षा–पत्रिका, अंक जुलाई–सितम्बर, 2003, पृ. 55
3. आश्वस्त–पत्रिका, अंक जुलाई–2004
4. ओमप्रकाश वाल्मिकि, 'जूठन' (आत्मकथा) संस्करण–2008, पृ. 21
5. ओमप्रकाश वाल्मिकि, बस्स! बहुत हो चुका (काव्य–संग्रह) पृ. 53
6. ओमप्रकाश वाल्मिकि, सदियों का संताप (काव्य–संग्रह) पृ. 37
7. ओमप्रकाश वाल्मिकि, सदियों का संताप, पृ. 53
8. ओमप्रकाश वाल्मिकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृ. 32
9. ओमप्रकाश वाल्मिकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृ. 81
10. ओमप्रकाश वाल्मिकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ. 13
11. ओमप्रकाश वाल्मिकि, बस्स! बहुत हो चुका (आदिम रूप) पृ. 28
12. सम्पा– पुन्नी सिंह, भारतीय दलित साहित्य, पृ. 325
13. ओमप्रकाश वाल्मिकि, सदियों का संताप, पृ. 30

–कविता देवी
पी.एच.डी. हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक
रजिस्ट्रेशन नं. 21–BMU–6330

31

हरियाणवी साहित्य का वर्गीकरण

मधु शर्मा

सारांश

सारांशः– 'हरियाणा जहाँ दूध दही का खाना' इस लोकक्ति से हम सब परिचित है। हरियाणा शब्द सुनते ही हमारे मस्तिष्क में एक ऐसी छवी अंकित हो जाती है जिसकी ना तो भूमि नई है, न ही भाषा, न ही इसकी संस्कृति और साहित्य। क्योंकि जब भी हम अपने प्राचीन महाकाव्य महाभारत को पढ़ते एवं सुनते है तो उसमें कौरवों एवं पांडवो का युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ था जो कि हरियाणा का ही एक जिला है। यहीं पर पुराणों के लेखक उपनिषदों के रचयिता एवं वेदो के विद्धान हुए है। भारत भर में इसकी अपनी एक व्यक्त–अव्यक्त पहचान है। ''इसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है, जो परिष्कार औपचारिकता ओढ़ी हुई विशिष्टता से दूर रहकर जीवन को उसके आदिम, शुद्ध, ताजे रुप में जीने की कायल है।'' [1]

हरियाणवी साहित्य का वर्गीकरणः– किसी भी साहित्य को समझने के लिए उसकी भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है। ग्राम निवासी एवं नगरों की अर्द्धशिक्षित जनता जब अपने सहज स्वभाव में बादल को देखकर मुग्ध मयूरी की भाँति नृत्य करने लगती है, तभी लोक–साहित्य अथवा जनवाङ्मय का सृजन होता है। आरम्भ में यह काव्य–कविता, गीत मौखिक ही होते है। शिष्ट समुदाय की स्वीकृति मिलने पर यही लोक वाङ्मय शिष्ट साहित्य का रुप धारण कर लेता है। हिन्दी का लोक साहित्य अंग्रेजी फोक–लिटरेचर का पर्यायवाची है। फोक के अनुवाद के विषय में कुछ मतभेद है कुछ इसके लिए 'लोक' शब्द उपयुक्त मानते है और कुछ 'जन' अतः इस विवाद को हल करने के लिए 'लोक' एवं 'जन' दोनों शब्दों पर विवेचन अपेक्षित हो जाता है।

लोक शब्द की प्राचीनताः– 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शनें धातु से 'धन' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है।'[2] इस धातु का अर्थ देखना होता है, अतः लोक शब्द का अर्थ देखने वाला। अतः वह समस्त जन–समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा। लोक शब्द अत्यंत प्राचीन है। वेदों में भी साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है। ''ऋग्वेद में लोक शब्द के लिए ''जन'' का भी प्रयोग उपलब्ध है।''[3] उपनिषदों में अनेक स्थानों पर 'लोक' शब्द व्यवहृत हुआ है। ''जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में कहा गया है कि यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह प्रसूत या व्याप्त है। कौन प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह से जान सकता है।'' [4] महावैयाकरण पाणिनी ने अपनी 'अष्यध्यायी' में लोक एवं सर्वलोक शब्दों का उल्लेख किया है तथा इनमें उन प्रत्यय करने पर लौकिक एवं सार्वलौकिक शब्दों की निष्पति की है। पाणिनी अनेक शब्दों की निष्पति बतलाते हुए लिखते है कि वेद में इसका रुप अमूक प्रकार है परन्तु लोक में इसका स्वरुप भिन्न प्रकार का समझना चाहिए भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र के चौदहवें अध्याय में अनेक नाट्य धर्मो तथा लोक धर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महर्षि ब्यास ने अपनी शतसाहस्त्री संहिता की विशेषताओं का वर्जन करते हुए लिखा है कि ''यह ग्रन्थ (महाभारत) अज्ञान रुपी अंधकार से अंधे होकर व्यथित लोक (साधारण जनता) की आँखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है।''[5]

''भगवद्गीता में 'लोक' एवं 'लोक संग्रह' आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है।''[6] इसी प्रकार महाभारत में वर्णित विषयों की चर्चा करते हुए 1) लोक–यात्रा का उल्लेख किया गया है। इसी पर्व में एक अन्य स्थान पर पुण्य कर्म करने वाले लोक का वर्णन उपलब्ध होता है।

2) ''जो व्यक्ति लोक को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है, वहीं उसे सम्यक रूप से जान सकता है।''[7]

लोक शब्द का प्रयोग साधारण जन–मानस के लिए प्रयोग किया गया है। फिर चाहे वह वेद हो या उपनिषद् महाभारत हो या फिर भगवद्गीता सभी में अनेक स्थानों पर लोक शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहाँ तक कि महाकवि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में, वररुचि ने अपनें वर्तिकों में भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में लोक शब्द का उल्लेख किया है।

जन शब्द की प्राचीनताः– जन शब्द के समर्थक इसकी पुरातन परम्परा एवं ऐतिहासिक आधार की ओर इंगित करते हुए इस शब्द की उपयुक्तता पर बल देते है।

''वैदिक साहित्य में जन शब्द सभी मनुष्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है।''[8] इसी प्रकार संस्कृत एवं पालि ग्रन्थों से इस अर्थ की पुष्टि होती है। बुद्ध के उपदेश 'बहुजन हिताय' तथा 'बहुजन सुखाय' होते थे। ग्रामों के समुदाय को ही प्राचीन परिभाषा में जनपद कहा गया। डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल ने जनपद की निम्न ढंग से व्याख्या की है– ''वह भौमिक इकाई, जिसमें बोली एवं जन संस्कृति की दृष्टि से जनता में पारस्परिक साम्य अधिक है, जनपद कही गई है।[9]

धीरे–धीरे आर्यजनों की राष्ट्रीय भूमिका जनपद कहलाने लगी। बौद्ध काल में महाजनपद विकसित हुए, जन और जनसाहित्य शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। श्री कृष्णानंद गुप्त ने अपनी पत्रिका लोकवार्त्ता में (1944) इसका प्रयोग किया है।

राहुल सांस्कृत्यायन ने लोक साहित्य के स्थान पर जन–साहित्य शब्द प्रयुक्त किया है। डॉ॰ दशरण ओझा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी नाटक साहित्य का उद्भव और विकास' में 'जन–नाटक' शब्द प्रयुक्त किया है। 'हिमालय की लोक कथाएँ'' नामक पुस्तक में जन–साहित्य' शब्द का प्रयोग भी इसी संदर्भ में हुआ है। पंजाब के हिन्दी भाषा विभाग ने अपनी एक मासिक पत्रिका का नाम 'जन–साहित्य' रखा है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'लोक' तथा 'जन' शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्राचीन समय से चले आ रहे हैं। कुछ विद् वानों ने लोक–साहित्य के नाम के

स्थान पर 'जन– साहित्य' कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ा था, परन्तु औद्योगिक क्रांति के समय में 'जन' शब्द का राजनीतिकरण हो जाने के कारण इस शब्द का मोह त्याग दिया गया और 'जन– साहित्य' एक ऐसे साहित्य के अर्थ में माना जाने लगा, जो एक विशेष राजनीतिक विचारधारा का बोध कराता था।

लोकगाथा को तीन भाषा में वर्गीकृत किया गया है– लोक साहित्य, जन साहित्य एवं शिष्टसाहित्य।

'लोक साहित्य' शब्द अंग्रेजी के 'फोक लिटरेचर का अनुवाद है। श्लोक साहित्यश लोकचित्त की ऐसी ललित मौखिक अभिव्यक्ति है, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक कलम और प्रत्येक लहजा लोक का अपना होता है– अत्यंत सहज और स्वाभाविक। यही कारण है कि इसमें लोक मानस का प्रतिबिम्ब झलकता है । 10

वस्तुतः प्रत्येक प्रदेश के जीवन की अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मिता होती है, जो उसके लिखित तथा मौखिक नाना साहित्य के रूप में अभिव्यंजित होती है। जहाँ मौखिक एवं लौकिक लोक साहित्य में लोक मानस का बिम्ब अपेक्षाकृत अधिक सहज, सरल और सीधा होता है वहाँ उसमें खालिसपन, असलियत तथा परिवेशजन्य ढंग से उत्पन्न आँचलिकता का समावेश लबालब भरा रहता है। लोक साहित्य कच्चे दूध की भाँति पवित्र एवं जीजीविषा की पुष्टि से परिपूर्ण है।11 अर्थात लोकसाहित्य, साहित्य का वह रूप है, जिसमें अलंकारों के प्रति आग्रह न होकर सहज प्रयोग हो, सादगी, स्वाभाविकता और सरलता हो, उपदेशात्मक के प्रति आग्रह न होकर अन्तर्मन की सहज अभिव्यक्ति अपने प्राकृतिक रूप में बिना किसी लुकाव– छिपाव के अभिव्यक्त हुई हो । 12

डॉ. सत्येन्द्र लोक साहित्य की परिभाषा देते हुए लिखते हैं – वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने न गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक–समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी– साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिविम्बित रहता है। इसी कारण जिसके किसी भी शब्द में रचना चौतन्य नहीं मिलता, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है, और उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है। 13 डॉ. कन्हैला लाल सहल इसी बात को इस प्रकार कहते हैं– नीति शास्त्र, विवेक शास्त्र, साहित्य शास्त्र और भाषा शास्त्र के कृत्रिम नियमों का जहाँ बंधन नहीं है और जहाँ मनुष्य के भावों का नैसर्गिक प्रवाह बिना किसी रुकावट के कल–कल करता हुआ आगे बढ़ता है, वहीं लोक साहित्य जन्म ग्रहण करता है।14

लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य की भिन्नता तथा इनके आन्तरिक सम्बन्ध की अभिव्यक्ति अत्यन्त सहज रूप में लोक लहजे की उत्कृष्टता को दर्शाते हुए हरिचन्द पाराशर ने इस प्रकार की है– जिस तरह गन्ने की मिठास खांड में अवतरित होती है, जिस तरह पूर्वजों का रक्त संतति में अवतीर्ण होता है, जिस तरह लोक मानस मुनि मानस में विकसित होता है, ठीक उसी तरह लोक साहित्य शिष्ट साहित्य में रूपान्तरित होता रहता है। जीवन की अनुभूतियाँ जब सहज अभिव्यक्ति में प्रकट होती हैं, तो लोक साहित्य कहलाती हैं और जब मनीषिता एवं सांस्कारिता से टकराकर आलंकारिकता का आवरण ओढ़कर प्रकट होती है, तो शिष्ट साहित्य कहलाती है।15 शिष्ट साहित्य की प्रवृत्ति संस्कार और परिष्कार की प्रवृत्ति है, जैसे कोल्हू सरसों के ढेर को 'तेल' और 'खल' में अलग–अलग कर देता है, वैसे ही शिष्ट साहित्यकार लोकवार्ता अथवा लोकसाहित्य के ढेर में से शाश्वत और सामयिक को अलग– अलग कर देता है।

विद्वानों ने लोकसाहित्य और जन साहित्य को एक–दूसरे का पर्यायवाची माना है जबकि इन दोनों में सूक्ष्म अंतर है। यदि हम लोकसाहित्य को जन साहित्य कहें, तो विद्वानों द्वारा स्थापित लोक साहित्य की परिभाषा खिसक जाएगी, क्योंकि लोक साहित्य में विद्वानों की परिभाषानुसार जो साहित्य लिया गया है, वह समस्त लोक द्वारा, समस्त लोक के लिए होता है। यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि जो साहित्य लोक प्रकृति के अनुकूल लोक के ही रचनाकार द्वारा उसी की भाषा में तैयार किया जाता है, उसे कहाँ रखा जाए। लोक साहित्य जहाँ लोक के लिए लोक के ही द्वारा रचित साहित्य है, वहाँ जन साहित्य लोक के लिए लोक में से ही व्यक्ति विशिष्ट द्वारा रचित साहित्य है। लोक साहित्य में रचयिता अनुपस्थित है जबकि जन साहित्य में रचयिता रचना में उपस्थित है। लोक साहित्य, लोक मनोभावों का तीव्र वेग है, जिस पर कोई नियम लागू नहीं होता । यहाँ पर हम सांग का उदाहरण देना उपयुक्त समझते हैं। सांग में गद्य व पद्य या दोनों शैलियों का प्रयोग होता है। इसमें दोहा, सोरठा, चम्बोला, रागनी आदि छन्दों का प्रयोग किया जा रहा है।

लोक साहित्य और जन साहित्य में एक अन्य सूक्ष्म भेद अनुभव विशिष्टता का है। लोक में से ही एक व्यक्ति के पास अनुभव विशिष्टता होती है, जिसे प्रतिभा भी कहा जा सकता है। परंतु वह कम पढ़ा लिखा होने के कारण शास्त्रीय मापदंड के साहित्य की रचना नहीं कर सकता, तो वह अपनी प्रतिभा के बल पर लोक–भावना अनुरुप, लोकभाषा में लोक–आकांक्षाओं एवं आस्थाओं की अभिव्यक्ति में कुछ नया तैयार कर देता है, बाद में उसकी इसी नई उपज को लोक सहमति मिल जाती है। हरियाणवी सांग परंपरा में ऐसे असंख्य उदाहरण हैं।

संगीतकार 'अलिबख्श' के नाम से 'अलिबख्श', नत्थासिंह के नाम से 'नत्था', राधेश्याम के नाम से ' राधेश्याम', पंडित लख्मीचंद के नाम से 'डोल्ली', श्री हरध्यान सिंह के नाम से 'हरध्यान', योगेश्वर बालक राम के नाम से 'बालकराम' नामक काव्य पद्धतियां एवं शैलियाँ प्रचलित हो गई। इन सभी पद्य पद्धतियों एवं शैलियों की अपनी एक विशिष्टता है परंतु ये शास्त्रीय नहीं है। यदि हम इन तीनों की संक्षेप में परिभाषा देना चाहे, तो कह सकते हैं –

लोक– साहित्य, मनोभावों का तीव्र वेग है, जिस पर कोई नियम लागू नहीं द्य जन साहित्य में इन लोक मनोभावों की अभिव्यकति की लोक माँग है, जिसकी अपनी अवधारणाएँ एवं नियमावली है, शिष्ट साहित्य शास्त्रीय मापदण्ड पर खरा उतरने वाला विद्धता का प्रदर्शन है। लोक साहित्य अथवा शिष्टसाहित्य के बीच सीधी विभाजक रेखा खींचना भी उतना आसान कार्य नहीं। किसी जमाने में कबीर व सूरदास के साहित्य भी लोक साहित्य ही थे, किन्तु लिखित होने पर, शोध का विषय बनने पर और शिष्ट समाज द्वारा पूरी तरह स्वीकृत होने पर, शोध का आज भी शिष्टसाहित्य में ही स्थान रखते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि लोकसाहित्य भी अपनी साहित्यिक यात्रा से जनसाहित्य (जिसमें लेखक का नाम स्पष्ट हो) का स्वरूप धारण कर कालांतर में शिष्ट साहित्य बन सकता है।

लोक साहित्य के रंगों द्वारा ही जन साहित्य आकृति प्राप्त करता है और जनसाहित्य से शिष्टसाहित्य ऊर्जा ग्रहण करता है। इस प्रकार जनसाहित्य, लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य के मध्य कड़ी का काम करता है। डॉ० पूर्णचन्द शर्मा ने भाषा का क्रमिक विकास बिल्कुल साहित्य के इसी वर्गीकरण अनुरूप दिया है– वस्तुतः कोई भी बोली जब अपने नटखट कौमार्य को पारकर किशोर अवस्था में पदार्पण करती है, तो उसमे अदम्य अभिव्यंजना शक्ति होती है। नव–यौवना के रूप में उसकी अल्हड़ता व्याकरण के झीने घूंघट में नहीं समाती, प्रौढ़ा होने पर वह साहित्यिक भाषा का लबादा पहन लेती है और फिर धीरे–धीरे संस्कृत की तरह निस्तेज वृद्धा हो जाती है। 16

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त उदाहरण में नटखट कौमार्य – लोक साहित्य, नवयौवना अवस्था–जनसाहित्य और प्रौढ़ा शिष्ट साहित्य का प्रतीक है। 'महाभारत' और 'रामायण' जनसाहित्य है और उसने लोक परम्पराओं, विश्वासों, आस्थाओं, स्मृतियों, श्रुतियों लोकवार्ताओं आदि से अपना प्रारूप तैयार किया है। आगे चल कर जन साहित्य के इन महाकाव्यों ने शिष्ट साहित्य के लिए पृष्ठभूमि उपलब्ध कराई है। रही बात श्जनश शब्द के राजनीतिकरण की, साहित्य कभी किसी विशेष विचारधारा के दबाव में स्थिर नही हुआ करता अपितु उसे एक नाम देकर आगे के पड़ाव की ओर कदम बढ़ा दिया करता है। अतः जन साहित्य औधोगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले जन का साहित्य नहीं है अपितु लोक की आत्मा से स्पन्दित भवनाओं की धड़कन है, जिसको उसी लोक का प्रतिभा सम्पन्न विशिष्ट व्यक्ति सुनता है और उसे शब्दों का रुप देता है। लोक साहित्य में लोक आत्मा की अभिव्यक्ति लोक द्वारा होती है। जन साहित्य शिष्ट व्यक्ति द्वारा रचा हुआ वह साहित्य है, जो सह–संवेदना के फल स्वरुप सामान्य जन के लिये अभिव्यक्त होता है।

संदर्भ सूची

1. ' 'रघुबीर सिंह मथाना एवं डा० बाबूराम'', हरियाणवी साहित्य का इतिहास पेज कृमांक 41
2. जयभगवान गोयल, हरियाणा पुरातत्व, इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं लोकवार्ता, प्राक्कथन से पृष्ठ 14
3. ऋग्वेद,3 / 53 / 12
4. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण,3 / 28
5. (अज्ञान तिमिरांधस्य लोकस्यतुविचेष्टतः। ज्ञानांजन श्लाकाभिजेंत्रोन्मीलननकारकम्)
6. भगवद्गीता, 3 / 3, 3 / 20, 3 / 22, 3 / 24
7. प्रत्यक्षदर्शी लोकाना सर्वदर्शी भवेन्नरः
8. यथेमां वाच कल्याणीमा व दानि जर्नेभ्यः। ब्रह्माराजन्याभ्यां शूद्राय चार्चाय च स्वाय चार वाय च। बा॰से॰ 26 / 2

9– पृथ्वी पुत्र, पृष्ठ 70–71

10. डॉ० रामपत यादव, लेख, लोक साहित्य का स्वरूप, हरियाणा का लोक साहित्य, संपादक डॉ० लालचन्द गुप्त 'मंगल', पृ० 20
11. डॉ० बाबूराम, लेख, हरियाणा के लोकगीत, पृ० 176
12. रघुवीर सिंह मथाना, हरियाणा लोक–नाटय परम्परा एवं कवि शिरोमणि पं० मांगे राम, पृ० 2
13. डॉ० सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृ० 120
14. डॉ० कन्हैला लाल सहल, लोक साहित्य का महत्व, व जन साहित्य पत्रिका, अक्तूबर–नवम्बर 1965, पृ० 102
15. हरिचन्द पाराशर, लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य, जन साहित्य पत्रिका, अक्तूबर–नवम्बर, 1965, पृ० ।।।

16– डा० पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणवी और उसकी बोलियों का अध्ययन

मधु शर्मा
शोधार्थी पी०एच०डी०
हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविधालय
रोहतक , हरियाणा

रजिस्ट्रेशन संख्या– 21–BMU–6314
मोबाइल न – 8607106868
पता– 8F, खन्ना कालोनी ,
सोनीपत , 131001
हरियाणा

32

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना

राजश्री गुप्ता

सारांश

''श्वनों को मिलता दूध, वस्त्र
भूखे बालक अकुलाते हैं।
मां की छाती से चिपक ठिठुर
जाड़े की रात बिताते हैं।''

प्रगतिवादी कवि दिनकर वर्ग रहित, शोषण रहित, समतामूलक समाज की स्थापना करना चाहते थे। 'रश्मिरथी' काव्य के माध्यम से उन्होंने समाज में ऊंच–नीच, जाति–पाती का भेद समाप्त करके सामाजिक समानता लाने का प्रयास किया।

'दिनकर' जी कहते हैं– ''युद्ध की समस्या मनुष्य के सारे समस्याओं की जड़ है। युद्ध निंदित और क्रूर कर्म है; किंतु उसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर जो अनितियों का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है? या उस पर जो जाल को छिन्न–भिन्न कर देने के लिए आतुर रहता है? यह कुछ मोटी बातें हैं जिन पर सोचते सोचते यह काव्य पूरा हो गया।'

दिनकर जी की एक बड़ी प्रसिद्ध कविता है ''सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'' यह कविता प्रजातंत्र की शक्ति की एक मिशाल है।

प्रजातंत्र में कुर्सी पर बैठने वाला कोई भी व्यक्ति बड़ा या छोटा नहीं होता। बड़ी हमेशा जनता होती है और जनता ही उसे बड़ा या छोटा बनाती है। अभिमान में हमें कभी भी यह बातें नहीं बोलनी चाहिए क्योंकि जनता कभी भी बोल सकती है कि ''सिंहासन खाली करो कि जनता आती है''।

''सदियों की ठण्डी–बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है;
दो राह, समय के रथ का घर्घर–नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।''

रामधारी सिंह दिनकर का साहित्यिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व भारतवर्ष के राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में जनतंत्र यात्रा से जुड़ा हुआ है। यह वह समय था जब भारतीय जनता गुलामी की जंजीरों में जकड़ छटपटा रही थी अर्थात जब स्वाधीनता आंदोलन का व्यापक संघर्ष अपने चरम पर था। 'वंदे मातरम्' की गूंज से पूरा देश राष्ट्रभक्ति में डूब रहा था। इस समसामयिक राजनीतिक और साहित्यिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय और क्रांतिकारी भावनाएं दिनकर जी की रचनाओं में भी परिलक्षित होती हैं।

राष्ट्रीय का संबंध देश के स्थूल सुख–दुख और आक्रोश के चित्रण से ही नहीं होता, बल्कि 'राष्ट्र की आत्मा' या चेतना की पहचान से होता है।

दिनकर जी की रचनाओं में जहां ब्रिटिश शासन के आतंक एवं सामंत ताकतों के प्रति विद्रोह की भावना है वही सील के गौरव गान, परतंत्रता की कष्ट की अनुभूति तथा अन्याय व शोषण के प्रति विद्रोह के स्वर विद्यमान हैं। कविता संग्रह 'रेणुका' एवं प्रकाशन तक राष्ट्रीय चेतना उनके काव्य का अनिवार्य स्वर बन जाता है।

राष्ट्रीय चेतना एवं जनवादी चेतना की दृष्टि से 'दिनकर' की कविता ने आम आदमी के दिल में जगह बनाई। उनके स्वर में राष्ट्र का स्पंदन रहा है। उनका अहम् राष्ट्र का अहम् है, उनका शौर्य राष्ट्र का शौर्य है।

'दिनकर' जी ने 'दिल्ली' और 'मास्को' जैसी कविता भी लिखी है जिनमें कवि साम्यवाद के माध्यम से ही भारतीय समाजवाद की स्थापना करना चाहता है पर बाद में यह साम्यवाद महात्मा गांधी के मानवतावाद और नेहरू के समाजवाद में परिवर्तित हो जाता है। कालजयी काव्य की दृष्टि से जब हम 'दिनकर' के काव्य का मूल्यांकन करते हैं तो कुरुक्षेत्र में विश्व की शाश्वत समस्या, युद्ध और शांति विचार प्राप्त करते हैं। 'रश्मिरथी' और 'उर्वशी' उन्हें एक कालजयी रचनाकार बनाती है।

''मनुज का श्रेय'' दिनकर जी के काव्य ''कुरुक्षेत्र'' के अंतर्गत है। इसमें कवि ने स्पष्टतया विध्वंस–प्रधान विज्ञान को पृथ्वी के मनुष्य का श्रेय मानने से इनकार करता हुआ कहता है।

''सावधान, मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दें फेंक, तंज पर मोह, स्मृति के पार ।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान;
फूल–कांटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार;
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार ।''

अंततः महाकवि दिनकर ने राष्ट्रीयता को सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का जो सपना देखा था उसका विकास तभी संभव है जब बुद्धि के ऊपर संवेदनशील हृदय का शासन हो। ''कुरुक्षेत्र'' में भीष्म के माध्य बुद्धि से वस्तुस्थिति की इन पंक्तियों में तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख साम्राज्य की स्थापना का सुंदर समन्वय हुआ है उसकी पताका आज भी राष्ट्रकवि 'दिनकर' की कालजयिता का प्रासंगिक प्रमाण है–

''कर पाता यदि मुक्त हृदय को
मस्तक के शासन से
उत्तर पकड़ता बांह दलित की
मंत्री के आसन से ।''

राष्ट्रीय शब्द अपने वर्तमान रूप में आधुनिक है, जिसमें जाति, सम्प्रदाय, धर्म, सीमित भू–भाग आदि की संकीर्णता के आधार या स्थान पर लोगों का संश्लिष्ट सामूहिक रूप उभरता गया है।

वास्तव में पूरे भारतवर्ष की एकता अर्थ में 'राष्ट्रीयता' का विकास आधुनिक काल में हुआ।

राष्ट्रीयता का विकास सबसे पहले पश्चिम में हुआ, विशेष – तथा इंग्लैण्ड में। देखा जाए तो भारतीय राष्ट्रीयता में यदि स्व–रक्षा का भाव प्रधान था, जबकि स्वतंत्र पश्चिमी देश में स्व–विकाश का । जहाँ तक आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, कहा जाता है कि वह भारतेन्दुकालीन कविताओं से प्रारंभ होती है। किन्तु राष्ट्रीयता का स्वरूप तब से ले कर आज तक विकसित होता रहा है। आरंभ में छोटे–मोटे दुःख–दर्दो, सहज भावात्मक प्रतिक्रियाओं तथा अतीत–स्मरण के रूप में लक्षित होने वाली राष्ट्रीयता धीरे–धीरे जटिल और संश्लिष्ट होती गयी तथा अनेक मानवीय और सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनाओं से संपन्न होती चली गयी। नयी–नयी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने जटिल रूप धारण किया। द्विवेदी–काल तक भारतीय राष्ट्रीयता बहुत–कुछ हिन्दू –राष्ट्रवाद के रूप में दिखायी पड़ती है।

राष्ट्रीयता का जो सबसे स्थूल रूप है, वह है विदेशी शासन के अत्याचारों, उससे उत्पन्न जन–यातनाओं और जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों का चित्रण। इस प्रकार की राष्ट्रीय कविताओं का स्वर प्रस्तुत अवधि में 'दिनकर', 'सोहनलाल द्विवेदी, नवीन', 'माखनलाल चतुर्वेदी' आदि की कृतियों में सुनायी पड़ती है। सन् 1938 के आसपास के राष्ट्रीय जीवन की यातना और आक्रोश के स्वर में एक नया उभार लक्षित होता है किन्तु वामपंथी दलों के उदय, समाजवादी सिद्धान्तों के प्रचार तथा विदेशी शासन के झूठे वायदों और अधिकाधिक कठोर, विषम एवं जटिल होती परिस्थितियों के कारण साहित्य का स्वर अधिक उग्र, यथार्थवादी और लोकोन्मख होता गया । दूसरी बात यह हुई कि प्रगतिवाद के प्रभाव से देश के भीतर बनते हुए शोषकों और शोषितों के अनेक वर्गों की पहचान होती गयी। यह लड़ाई केवल अंग्रेजी सत्ता से ही नहीं है। बल्कि सामंती, महाजनी सभ्यता और प्रतिनिधि देशी शोषकों से भी है, जो अपने ही देश की जनता के लिए अपने–अपने ढंग से भयंकर शोषण के अस्त्र–शस्त्र आज भी स्वाधीन भारत के 76वीं वर्ष के उपरान्त भी विद्यमान है। राष्ट्रीयता का यह नया स्वर 'दिनकर' जी कविताओं में अधिक उभर कर आया। 'दिनकर' जी को सबसे बड़ी विशेषता है अपने देश और युग–सत्य के प्रति जागरूकता है।

'दिनकर' जी छायावाद काल के कवियों में हैं। उनका जन्म 23 सितम्बर 1908 ई. में तथा मृत्यु 24 अप्रैल 1974 को हुई। 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक उनका विराट गद्य ग्रन्थ 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित हुआ तो 'उर्वशी' नामक महाकाव्य 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इस प्रकार गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में दिनकर की प्रतिभा का आलोक विकीर्ण हुआ है। राष्ट्रीय भावना 'रेणुका', 'हुंकार', 'सामधेनी' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' में 'दिनकर' जी एक उत्कृष्ट कोटि के राष्ट्रीय कवि के रूप में दिखाई देते हैं। 'हिमालय' में उनकी देश भक्ति की भावना परिलक्षित होती हैः–

''कितनी मणियाँ लुट गई ? मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष !
तू ध्यान मग्न ही रहा, इधर,
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश ।''

'दिनकर' जी क्रांति के अनूठे गायक हैं। उनकी विशुद्ध विप्लव भावना का यह आवेग हैः–

''जरा तू बोल तो, सारी धरा हम फूँक देंगे।
पड़ा जो पंथ में गिरि, कर उसे दो टूक देंगे ।
कहीं कुछ पूछने बूढ़ा विधाता आज आया,
कहेंगे– हाँ, तुम्हारी सृष्टि की हमने मिटाया।।''

'कुरुक्षेत्र' में युद्ध के पक्ष–विपक्ष में महत्व को प्रस्तुत करते हुए कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जो युद्ध ज्वलंत प्रतिशोध की भावना पर खड़ा है, वह पाप नहीं हो सकता।

'दिनकर' जी राष्ट्रीय चेतना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वरूप यह है कि उनकी कविताओं में राष्ट्रीय स्वर धीरे–धीरे ऊपर उठकर मानवतावादी का स्वर ग्रहण कर लेती है। इस स्तर पर इनकी राष्ट्रीय भावना–मंगलकामना, विश्व–प्रेम, और विश्वशांति के रूप में व्यापक आकार ग्रहण लेती है। इसी विश्वशांति की प्राप्ति के लिए उन्होंने 'विज्ञान' को मानव जाति के लिए विध्वंसकारी मानकर उससे दूर रहने की बात ''मनुज का श्रेय'' शीर्षक कविता में करते है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' की पहली रचना है 'प्रणभंग'। यह प्रबन्धकाव्य है। उनके गीतों और कविताओं के दो संग्रह प्रकाशित है–'रेणुका' और 'हुंकार'।

रामधारी सिंह 'दिनकर' जी का साहित्यिक व्यक्तित्व भारतवर्ष की राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास की यात्रा से जुड़ा हुआ है। यह वह समय था, जब स्वाधीनता आन्दोलन का व्यापक संघर्ष, अपने चरम पर था। उस समय आजादी की दीवानों की संघर्ष और बलिदान के साथ 'वंदे मातरम' की गूंज से सारा वातावरण राष्ट्रीय भावना में डूबे रहा था। इस समसामयिक राजनीतिक और साहित्यिक चेतना के परिदृश्य में राष्ट्रीय और क्रांतिकारी भावनाएँ 'दिनकर' जी पर भी प्रभावी हुई और उन्होंने समूचे अस्तित्व, को राष्ट्रीय अनुभूतियों के अधीन कर लिया । उन्होंने प्रगतिवादी चेतना के मूल में समन्वयवादी अवधारणा की ग्रहण किया। दरअसल युग की संवेदना के अनुरूप द्विवेदीयुगीन स्पष्टता और अपनी निर्भीकता के साथ वे अपनी राष्ट्रीय भावना और मानवीय भावबोध जागृत करते चले गये।

रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रबन्धात्मक रचनाओं का परिचय अन्यत्र 'प्रबन्ध काव्य परम्परा' और उनकी राष्ट्रीयता–प्रधान मुलक गीति रचनाओं में 'रेणुका' (1935), 'हुंकार' (1938), 'रसवन्ती' (1940), 'सामधेनी' (1996), 'धूप और धुआँ' (1951), 'इतिहास के आँसू' (1951), 'नील कुसुम' (1954) आदि में 'दिनकर' जी का

स्वस्थ, ओजस्वी एवं प्रगतिशील स्वर व्यापक मानवता के क्षेत्र में निनादित हुआ है। यहाँ वर्ग–वैषम्य का चित्रण द्रष्टव्य है–

वे भी यही दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं।
ये बच्चे भी यही, कब्र में दूध दूध जो चिल्लाते है।
बेकसूर नन्हें देवों का शाप विश्व पर पड़ा हिमालय !
हिला चाहता मूल सृष्टि का, देख रहा क्या बड़ा हिमालय!
हटो व्योम के मेघ, पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
'दूध दूध' जो वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।
– 'हुंकार' (1938)

क्रांति का आह्वानः–

हुँकारों से महलों की नीव उखड़ जाती,
सांसो के बलू से ताज हवा में उड़ता है,
जनता की रोके राह, समय में ताब कहाँ,
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है।
– 'नील कुसुम' (1954)

कवि 'दिनकर' जी का यह क्रांतिकारी दृष्टिकोण मार्क्सवाद के अनुकूल प्रतीत होता है पर उस पर वह आधारित नहीं है। वे मार्क्स की अपेक्षा गाँधी के सर्वोदय से अधिक प्रभावित हैं, इसलिए वे कहते हैं–

कहो मार्क्स से डरे हुओं का,
गाँधी चौकीदार नहीं है।
''सर्वोदय का दूत किसी
संचय का पहरेदार नहीं है।''
–'नील कुसुम'

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि 'दिनकर' जी न तो मार्क्सवाद के अन्ध–अनुयायिओं में से है और न गाँधी जी के नकली भक्तों में से, अपितु वे वाद–विशेष की संकीर्ण, सीमाओं से मुक्त है। उन्होंने उन सब तत्वों को निःसकोच भाव से ग्रहण किया है जो मानव–हित के अनुकूल पड़ते हैं। अपने इसी स्वस्थ, संतुलित एवं व्यापक दृष्टिकोण के कारण हम 'दिनकर' जी को आज का सबसे अधिक प्रबुद्ध एवं युग–चेतना कवि मान सकते हैं तथा उन्हें. एक सच्चे प्रगतिशील साहित्यकार के रूप में स्वीकार कर सकते है

संदर्भ और सहायक ग्रंथ सूची

1. सिंह रामधारी 'दिनकर', ''कुरूक्षेत्र'', राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट, दिल्ली–110006, पृ0सं0–71
2. सम्पादकः डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैंक्स, छठा संशोधित संस्करणः 2017, पृ.स. 602, 603 (ISBN: 978–81–7198–156–9)
3. यादव डॉ. उषा,''हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ'', प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ–226020, (पृ.स. 341)
4. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'', प्रकाशन संस्थान,नयी दिल्ली–110002 संस्करणः सन् 2019 (ISBN: 81–7714–083–3)
5. जागरण दैनिक, समाचार पत्रिका, पृ0सं0 –11 राँची 24 अप्रैल 2012
6. गुप्त डॉ. गणपतिचन्द्र , हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, बारहवाँ संस्करण–2018, पृ0सं0–110–111, (ISBN: 978-81-8031-8204-5)

राजश्री गुप्ता, पति ललित प्रसाद साहु,
घर सं.–302, कामडारा बस्ती (गुप्ता स्टोर),
ग्राम+पोस्ट+थाना– कामडारा, जिला गुमला (झारखण्ड)
–835227 चलभाषः– 8709769044
इमेल– rajshreegupta71065@gmail.com

33

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन :समकालीन झुकाव :

डॉ0 अजय मलिक

सारांश

गुटनिरपेक्षता का उदय शीतयुद्ध की राजनीति व नव–निर्मित राष्ट्रों की स्वाभिमान से रहने की इच्छा का परिणाम था। किन्तु पिछले 19–20 वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बहुत सारे परिवर्तन हुए है, यथा– शीतयुद्ध का अन्त हो चुका है, सोवियत संघ का विघटन हो चुका है, पूर्वी–यूरोप के राष्ट्रों में साम्यवाद को कब्र में दफनाया जा चुका है, वारसा पैक्ट भंग कर दिया गया है, नाटो की भूमिका में बदलाव आ रहा है, तथा जर्मनी का एकीकरणश हो चुका है।

बदलती विश्व राजनीति के कारण गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में भी कुछ लचीलापन व परिवर्तन आया है जिन्हें हम गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के समकालीन झुकाव भी कह सकते हैं–1

1. नाम (NAM) की सदस्यता में वृद्धि हो रही है। छोटे से रूप को लेकर उत्पन्न हुआ नाम (NAM) अब विस्तृत आकार अपना चुका है। बेलग्रेड शिखर सम्मेलन (1961 ई.) में मात्र 25 राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया था, जबकि शर्म–अल–शेख (2009 ई.) में सम्पन्न 15वे गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में 118 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी। आशा की जा रही है कि आगे भी इनकी सख्या में बढ़ौतरी होती रहेगी। कुछ केन्द्रीय एशियाई गणतन्त्र (ब्मदजतंस ेपंद त्मचनइसपब) तथा पूर्वी यूरोप के भूतपूर्व समाजवादी राष्ट्र भी इसके सदस्य बनने के इच्छुक दिखाई दे रहे हैं।2

2. शीतयुद्धोत्तर काल के नाम (NAM) में कुछ ढीलापन आया है। राजनीतिक मुद्दों के स्थान पर आर्थिक मुद्दों को वरीयता प्रदान की जाने लगी है। दिनेश चन्द्र पाण्डे के अनुसार, गुटनिरपेक्षता का अभिप्राय आज औद्योगिक और सैनिक आत्म निर्भरता को प्राप्त करना है। इसको कैसे प्राप्त किया जाए यह इसकी मूल समस्या है। इसके अतिरिक्त विभिन्न मुद्दों पर नाम (NAM) की असफलता भी सिद्ध हो चुकी है। वर्तमान परिस्थितियों में यह अधिकतर प्रस्ताव पास करने वाला आन्दोलन ही बनकर रह गया है। चाहे अमेरिकी वर्चस्व को चुनौती देना हो, निःशस्त्रीकरण, पर्यावरण प्रदूषण, NIEO आदि मुद्दों पर इसे सीमित मात्रा में ही सफलता प्राप्त हो सकी है।3

3. नाम (NAM) के कुछ सदस्य राष्ट्र जैसे, पाकिस्तान व कुछ अन्य इस्लामिक राष्ट्र अपने आपको नाम (NAM) के अन्दर ही एक अलग समूह के रूप में देखते हैं।4 इन राष्ट्रों की कोशिश यह रहती है कि किसी भी तरह से मात्र अपने हितों की रक्षा की जाए। दूसरे शब्दों में इनका ध्येय सम्पूर्ण तृतीय विश्व न होकर मात्र स्वय के हित ही होते हैं।

4. गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के नए लक्ष्यों का संबंध 5D से है– 1. उपनिवेशवाद (Decolonisation) 2. विकास (Development) 3. तनाव शैथिल्य (Detente) 4. निःशस्त्रीकरण (Disarnment) 5. लोकतन्त्रीकरण (De&mocratisation) निर्गुट राष्ट्रों के प्रत्येक शिखर सम्मेलन में इससे सम्बद्ध मांगें उठाई जाती हैं। उपनिवेशवाद को विश्व की भयंकर समस्या माना जाता है तो तनाव शैथिल्य, निःशस्त्रीकरण, विकास, लोकतन्त्रीकरण को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता।

5. अमेरिका का प्रभाव भी नाम (NAM) राष्ट्रों पर देखा जा सकता है। जकार्ता शिखर सम्मेलन (1992 ई.) में नाम (NAM) के एक सदस्य इराक को संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा उड़ान वर्जित क्षेत्र घोषित किया जाना, बगदाद द्वारा नाम (NAM) का समर्थन प्राप्त करने के लिए गंभीर प्रयत्नों के बावजूद भी महत्त्वपूर्ण मुद्दा नहीं बन सका।5 राजनीतिक मुद्दों पर जारी दस्तावेज में मात्र राष्ट्र तथा सरकारों के अध्यक्षों ने युद्ध की समाप्ति तथा कुवैत की प्रभुसत्ता, स्वतंत्रता व एकता की पुनः स्थापना का समर्थन किया। इसी तरह डरबन शिखर सम्मेलन (1998 ई.) में भी गुटनिरपेक्ष राष्ट्र चाहकर भी अमेरिका की स्पष्ट शब्दों में बुराई नहीं कर सके।6 यह सत्य है कि सम्मेलन में अमेरिका द्वारा सूडान व अफगानिस्तान पर दागी गई मिसाइलों का विरोध किया गया, परन्तु यह खुले रूप से न होकर दबे स्वर में था। इसी तरह 13वें शिखर सम्मेलन (कुआलालम्पुर, 2003 ई.) में अमेरिका प्रेक्षक के रूप में उपस्थित था।7

6. गुटनिरपेक्षता की नीति समय के साथ–साथ अब अधिकाधिक सक्रिय, गतिशील और व्यवहारिक बनती जा रही है। प्रारम्भ में इस नीति में नैतिकता और आदर्शवाद का पुट अधिक था लेकिन गुटनिरपेक्ष राष्ट्र अब यह अच्छी तरह से समझने लगे हैं कि कोई भी नीति तभी सार्थक और उपादेय हो सकती है जब इसे यथार्थ के धरातल पर उतारा जाए।

7. नाम (NAM) विकसित राष्ट्रों द्वारा अपनाए जा रहे संरक्षणवाद, जातीय भेदभाव व हिंसा के विरूद्ध तीव्र शब्दों में आवाज उठा रहा है। जकार्ता शिखर सम्मेलन में विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील तथा नाम (NAM) राष्ट्रों की आन्तरिक राजनीति में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करने का आह्वान किया गया। सम्मेलन के दौरान जनरल सुहार्तो ने अपने अध्यक्षीय भाषण में विकसित राष्ट्र की संरक्षणवादी नीतियों की आलोचना करते हुए कहा कि विकासशील राष्ट्रों की अवनति का मुख्य कारण विकसित राष्ट्रों की संरक्षणवादी नीतियां हैं, क्योंकि इनके कारण इन्हें एक तरफ तो कच्चे माल व वस्तुओं का मूल्य कम मिल रहा है. दूसरी ओर कम वित्तीय सहायता, ऋण व प्राप्त ऋण

सेवाओं का कमरतोड़ बोझ उन्हें उन्नति नहीं करने देता। इसी तरह 11वें शिखर सम्मेलन (कार्टेग्ना, 1995 ई.) में भी नाम (NAM) के नये अध्यक्ष से यह प्रार्थना की गई कि जी–7 राष्ट्रों की आगे आने वाली बैठक में सदस्य राष्ट्रों की इस दृढ भावना को प्रकट किया जाए कि विकासशील राष्ट्र अभी तक चल रहे संरक्षणवाद और नये संरक्षणवाद, जोकि विकसित राष्ट्र प्रयोग कर रहे है, का विरोध व आलोचना करते हैं। इसी भांति बाद के शिखर सम्मेलनों में भी इस मुद्दे को उठाया जाता रहा।

8. निःशस्त्रीकरण विशेषकर परमाणु निःशस्त्रीकरण तथा शस्त्र–नियन्त्रण के मुद्दे नाम (NAM) के कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य है।10 वर्तमान में, परमाणु हथियारों के कारण युद्ध का दूसरा अर्थ महाविनाश हो गया है। चर्चिल ने उचित ही कहा था, ष्क्या विडम्बना है कि मानय–मात्र चरम विकास की उस स्थिति में पहुंच गया है, जहां हमारी सुरक्षा आणविक शक्ति की भयंकरता के कारण ही सुरक्षित रहेगी तथा मानय जाति का अस्तित्व महाविनाश की संभावना के भय पर ही टिका रहेगा। 11 इसी कारण विश्व राजनीति में वर्तमान स्थिति को आतंक का संतुलन कहा गया है। माना जा रहा है कि यह आतक का संतुलन महाशक्तियों को केवल कुछ समय के लिए ही युद्ध न करने के लिए बाध्य कर सकता है। परन्तु मुख्य प्रश्न जोकि विभिन्न राजनीतिज्ञों व बुद्धिजीवियों के मध्य विवाद का विषय है, यह है कि जहा यह संभावना व्यक्त की जा रही है कि परमाणु हथियारों की उपलब्धता इन महाशक्तियों को आपस में युद्ध न करने से रोकेगी, वही इस बात की क्या गांरटी है कि इनके मध्य युद्ध कभी होगा कि नहीं। रूसी राष्ट्रपति पुतिन द्वारा (2008 ई.) यह घोषणा करना कि शीतयुद्ध के पश्चात् शात हो चुकी दुनिया में हथियारों की दौड़ का नया दौर आरम्भ हो चुका है तथा रूस के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में प्रक्षेपास्त्र–निरोधक प्रणाली एस. 400 तैनात करने की घोषणा विश्व शान्ति व विकास के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। अतः न सिर्फ इन दोनों महाशिक्तयों अपितु विश्य की अन्य परमाणु सम्पन्न शक्तियों पर भी पूर्ण निःशस्त्रीकरण के लिए दबाव बनाने के लिए भी नाम (NAM) कार्य कर रहा है।

9.आज विश्व के सामने एक मुख्य समस्या अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की है। आज की परिस्थितियों में आतकवाद एक ऐसा भयंकर खतरा है जोकि विश्व समुदाय के समक्ष परमाणु शस्त्रों के पश्चात् सर्वाधिक विनाशकारी तथ्य के रूप में उभर रहा है आज जहां कई राष्ट्र आतकवाद रूपी कोढ़ से बुरी तरह से ग्रस्त है, वहीं कुछ महाशक्तियां व उनके पिछलग्गु राष्ट्र अपने स्वार्थ में अंधे होकर उनको न केवल समर्थन ही दे रहे हैं, अपितु फलने–फूलने के लिए जरूरी सुविधाएं भी उपलब्ध करवा रहे हैं। भारतीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने शर्म–अल–शेख सम्मेलन (2009 ई.) में इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के लिए कुछ हद तक जहां वैश्विक घटनाक्रम योगदान दे रहा है, वही विश्व के कुछ राष्ट्र अपने स्वार्थवश इसे फलने–फूलने हेतु आवश्यक जमीन मुहैया करवा रहे हैं। आतंकवाद रूपी इस दानव ने न सिर्फ तृतीय विश्व बल्कि विकसित राष्ट्रों को भी अपनी चपेट में ले रखा है। अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर हमला, रूस के थियेटर व स्कूल में बच्चों व लोगों को बन्धक बनाया जाना, भारतीय विमान का अपहरण, भारतीय संसद व होटलों पर हमले, पाकिस्तान की भूतपूर्व प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो की हत्या, सभी घटनाएं इसकी बढ़ती भयंकरता को दर्शाती है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध संयुक्त प्रयास करना आज श्नामश (NAM) के सामने एक आवश्यक लक्ष्य बनकर उभरा है। 20 मिस्र में शर्म–अल–शेख में सम्पन्न 15वें गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन (2009 ई.) में जारी घोषणा–पत्र में न सिर्फ आतंकवाद पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई, वरन् आतंकवाद के प्रति भारत की चिन्ता का भी खुलकर समर्थन किया गया।14

10. नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्थाश की स्थापना के लिए भी नाम (NAM) प्रमुखता से कार्य कर रहा है।15 नाम (NAM) का मानना है कि नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्थाश के लिए गरीब और विकासशील राष्ट्रों का संघर्ष वस्तुतः आर्थिक स्वाधीनता का संघर्ष है। 1960 ई. के पश्चात् से ही नाम (NAM) द्वारा NIEO को अपने मुख्य लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया था, क्योंकि नव–स्वतंत्र राष्ट्र न केवल आर्थिक दृष्टि से कमजोर थे, वरन औद्योगिक व तकनीकी रूप से भी विकसित राष्ट्रों पर निर्भर होने के कारण उनकी चौधराहट को सहने के लिए विवश थे।16 नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक हितों के बढ़ते महत्त्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि किस प्रकार सुरक्षा परिषद् की अस्थायी सदस्यता के प्रश्न पर गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने अपने साथी राष्ट्र भारत का साथ न देकर एक उभरती आर्थिक शक्ति जापान का समर्थन किया था। यह नाम (NAM) का ही प्रयास था कि 1 मई, 1974 ई. को नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की घोषणा की गई। हवाना में 2006 ई. में सम्पन्न 14वें शिखर सम्मेलन के 20 पृष्ठों के आर्थिक एजेंडे में विकास संबंधी आर्थिक मुद्दों को विशेष स्थान प्रदान किया गया।17

11. वर्तमान परिस्थितियों में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन सम्पूर्ण प्राणियों के लिए अपरिहार्य पर्यावरण की रक्षार्थ भी एक उपयोगी भूमिका निभा रहा है। अपने विभिन्न सम्मेलनों में नाम (NAM) इनके पक्ष में जोरदार आवाज उठा चुका है। कुआलाम्पुर शिखर सम्मेलन (2003 ई.) के दौरान जारी घोषणा–पत्र में पर्यावरण व मानवाधिकारों की रक्षा हेतु सभी राष्ट्रो से मिलकर कार्य करने के लिए आह्वान किया गया।

12. पिछले कुछ वर्षों से गुटनिरपेक्ष राष्ट्रो के कई औपचारिक

संगठन अस्तित्व में आते दिखाई दे रहे हैं। यह महसूस किया जा रहा है कि बिना किसी औपचारिक संस्थात्मक संगठन के गुटनिरपेक्ष राष्ट्र विश्व राजनीति में संगठित होकर कार्य नहीं कर सकते। लुसाका और कोलम्बो शिखर सम्मेलन में यह मांग की गई थी कि गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का स्थायी सचिवालय हो।18 किंतु आज तक किसी प्रकार का स्थायी सचिवालय तो अस्तित्व में नहीं आया, किन्तु कतिपय औपचारिक संगठन नजर आ रहे हैं। ये संगठन दो प्रकार के है–1. समन्वय ब्यूरो और 2. सम्मेलन । सम्मेलन भी दो प्रकार है–1 गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन, और 2. शिखर सम्मेलन।19

13. समय के साथ–साथ राष्ट्रों में आपसी एकता का अभाव भी दिखाई दे रहा है। कुछ राष्ट्र औपचारिक रूप से तो गुटनिरपेक्ष होने का दावा करते हैं, किंतु यथार्थ में वे स्वयं को किसी न किसी गुट के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध किए हुए है। यही नहीं इनमें से कुछ राष्ट्र तो नाम् (NAM) पर अपना प्रभाव डालने का भी प्रयास कर रहे हैं। 20

14. अक्सर नाम (NAM) में परस्पर विरोधी विचारधाराओं व हितों के कारण पारस्परिक संघर्ष की स्थिति देखने को मिलती है। प्रारम्भ में इन संघर्षों को यह कहकर टाल दिया गया कि यह स्वतंत्र राष्ट्रों का मंच है. किन्तु समय के साथ यह स्पष्ट हो गया है कि आपसी तुनाव और संघर्ष इस आन्दोलन में सैद्धान्तिक रूप से विद्यमान है।21 इन संघर्षों के कारण कई बार नाम (NAM) किसी महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर निर्णय लेने में असफल रहता है, बल्कि इनसे इसकी प्रतिष्ठा को भी आघात पहुंचता है।

15. आजकल गुटनिरपेक्षु आन्दोलन नवउपनिवेशवादी प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करने में रत है।22 नवउपनिवेशवाद वास्तव में उपनिवेशवाद का ही एक रूप है तथा यह उपनिवेशवाद की भांति ही हानिकारक है। यह सत्य है कि राजनीतिक रूप से स्वतंत्र तथा प्रभुता संपन्न होना गर्व की बात है. परन्तु आर्थिक रूप से निर्भर उपनिवेशीय राज्य होना तीसरे विश्व के राष्ट्रों के लिए बड़ी हानिकारक व खतरनाक स्थिति है। नव उपनिवेशवाद के अधीन, महान कहे जाने वाले ये तथाकथित राष्ट्र नव उपनिवेशीय राज्यों की नीतियों पर बड़ा विलक्षण व अप्रत्यक्ष नियन्त्रण रखे हुए हैं। इन धनी व शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा नव उपनिवेशवाद को कार्यान्वित करने के लिए कई निश्चित साधन है। ये राष्ट्र इन तृतीय विश्व के राष्ट्रों को शस्त्रों की आपूर्ति, उनकी आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप, ऋण द्वारा, बहुराष्ट्रीय निगमों, उन्हें आर्थिक रूप से आश्रित राज्य तथा अनुषंगी राष्ट्र बनाकर अपने नियन्त्रण में रखते हैं। विश्व राजनीति में इन छोटे, नव उपनिवेशवाद के शिकार राष्ट्रों के हितों की प्राप्ति के लिए गुटनिरपेक्षता एक नए विकल्प के रूप में निश्चय ही स्थायी रूप धारण कर चुकी है। इसने विशेष रूप से राष्ट्र समाज के इन छोटे–छोटे य कमजोर सदस्य राष्ट्रों की स्वतंत्रता व समानता बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ के भीतर व बाहर, दोनों ही स्थानों पर नयंउपनिवेशवाद के शिकार राष्ट्रों के हितों की रक्षा के लिए कार्य कर रहा है। यह आन्दोलन छोटे व कमजोर राष्ट्रों की आवाज को उठाने वाला नया लेबल है, जोकि बड़े व शक्तिशाली राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीतियों से नवसंप्रभुता प्राप्त राष्ट्रों की रक्षा करता है।

16. नाम (NAM) की स्थापना में मिस्र, यूगोस्लाविया तथा भारत ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। आज यूगोस्लाविया विखण्डित हो चुका है. मिस्र की भूमिका काफी सीमित हो चुकी है। भारत की महत्त्वपूर्ण तथा नेतृत्व वाली स्थिति अभी भी बनी हुई है।23

17. आज नाम (NAM) अपने पुराने स्वरूप से भिन्न व गतिाशील है। अब गुटनिरपेक्षता के अन्तर्गत यह बात संभव मानी जाने लगी है कि यदि किसी गुटनिरपेक्ष राष्ट्र के सोवियत संघ, चीन अथवा अमेरिका के साथ विशेष संबंध हों और यदि फिर भी वह राष्ट्र स्वतंत्र विदेश नीति का अनुसरण करता हो तो उसे गुटनिरपेक्ष माना जा सकता है। भारत–सोवियत सन्धि (1971 ई.) को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए, इससे भारत की गुटनिरपेक्षता पर कोई आंच नहीं आती।24

18. ऐसी स्थिति उत्पन्न होती जा रही है कि सैनिक गुटों से अलग रहना गुटनिरपेक्षता का अनिवार्य तत्त्व नहीं है, लैटिन अमेरिका के अनेक राष्ट्र श्रीओ सन्धि के सदस्य होने के बावजूद भी गुटनिरपेक्ष कहलाते हैं। पाकिस्तान और पुर्तगाल जैसे राष्ट्र भी, जोकि सैनिक सन्धि से जुड़े हैं. गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में शामिल हैं।25

निष्कर्षः

अतः हम कह सकते हैं कि गुटनिरपेक्षता की नीति समय के साथ अधिकाधिक सक्रिय, गतिशील और व्यवहारिक बनती जा रही है। प्रारम्भ में इस नीति में नैतिकता व आदर्शवादित्ता का पुट अधिक था, लेकिन गुटनिरपेक्ष राष्ट्र अब यह अच्छी तरह समझने लगे हैं कि कोई भी नीति तभी सार्थक और उपादेय हो सकती है जब उसे यथार्थवाद के धरातल पर उतारा जाए।

आज की गुटनिरपेक्षता अपने पुराने स्वरूप से इसलिए भिन्न और गतिशील है कि अब गुटनिरपेक्षता के अन्तर्गत यह बात संभव मानी जाने लगी है कि यदि किसी गुटनिरपेक्ष राष्ट्र के सोवियत संघ अथवा अमेरिका के साथ विशेष संबंध हों और फिर भी वह राष्ट्र स्वतंत्र विदेश नीति का अनुसरण करता हो तो उसे गुटनिरपेक्ष माना जा सकता है। भारत–सोवियत सन्धि (1971 ई.) को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए, इससे भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति पर कोई आंच नहीं आती।

ऐसी स्थिति उत्पन्न होती जा रही है कि सैनिक गुटों से अलग रहना

गुटनिरपेक्षता का अनिवार्य तत्त्व नहीं है। लैटिन अमेरिका के अनेक राज्य टी. सी सन्धि के सदस्य होने के बावजदू भी गुटनिरेपक्ष कहलाते है।

सन्दर्भः

1. यू. आर. घई एवं के.के. घई, इण्टरनेशनल पॉलिटिक्स, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर, 2010, पृ. 304
2. बी. एल. फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृ. 125
3. दिनेश चन्द्र पाण्डे, द्वि–ध्रुवीयता में गुटनिरपेक्षता, पृ. 165
4. यू. आर. घई एवं के.के. घई, इण्टरनेशनल पॉलिटिक्स, पृ. 305
5. वही, पृ 305
6. वही, पृ 305
7. दि ट्रिब्यून. 4 सितम्बर, 1998, चण्डीगढ़
8. दि हिन्दू, 7 सितम्बर, 1992, न्यू दिल्ली
9. दि ट्रिब्यून, 21 अक्तूबर, 1995, चण्डीगढ़
10. यू. आर. घई एवं के के घई इण्टरनेशनल पॉलिटिक्स पृ. 305
11. बी. एल. फाड़िया , अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृ 125
12. दैनिक जागरण, 8 फरवरी, 2002, नई दिल्ली
13. दि हिन्दू, 17 जुलाई, 2009, न्यू दिल्ली
14. वही
15. हर्षवर्धन कुमार, भारत को अपनी पारम्परिक गुटनिरपेक्षता पर आधारित विदेश नीति को नहीं त्यागना चाहिए, प्रतियोगिता दर्पण, नई दिल्ली, जून, 2006, पृ. 2106
16. बी. एल. फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृ. 125
17. दि ट्रिब्यून, 18 सितम्बर, 2006, चण्डीगढ़
18. हर्षवर्धन कुमार, भारत को अपनी पारम्परिक गुटनिरपेक्षता पर आधारित विदेश नीति को नहीं त्यागना चाहिए, पृ. 2106
19. वही, पृ.2107
20. महेन्द्र कुमार, थ्योरिटिकल आसपैक्टस ऑफ इण्टरनेशनल पॉलिटिक्स, पृ. 93
21. बी. एल. फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृ. 125
22. वेद प्रताप वैदिक, भारतीय विदेश नीतिरू नए दिशा संकेत, पृ. 149
23. बी. एल फादिया, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, पी. 125
24. वही, पृ 125
25. वही, पृ 126

डॉ० अजय मलिक

पुत्र श्री रणधीर सिंह मलिक

गाँव + पो०– सींक

तहसील इसराना

जिल पानीपत (हरियाणा)

पिन 132 103

34

रघुबीर सहाय के ललित निबन्धों में सामाजिक चेतना

डॉ0 संगीता वर्मा

सारांश

रघुबीर सहाय जी ने कुछ ललित निबंध भी लिखे हैं जिनकी धार मानवीय संवेदना का नग्न यथार्थ हमारे सामने प्रस्तुत करती है। सहाय जी के ललित निबंध पारपरिक ललित निबंधों से विद्रोह करते हैं। सहाय जी के ललित निबंध तीक्ष्ण व्यंग्यों को समाहित किए हुए हैं। भावनात्मक होते हुए भी इनमें बौद्धिकता, सचेतनता तथा व्यवस्था में जी रहे आदमी के ऊपर सूक्ष्म अन्वेषण जारी है। उनके निबंधों में मनुष्यता एक गहरी चिंता है जो मानवीय संवेदना से संबंध रखती है। डॉ० रामविलास शर्मा जी लिखते हैं– भाव का संबंध किसी शाचत आत्मा से नहीं है. इसी कारण विभिन्न मनुष्यों और वर्गों में रुचि की भिन्नता दिखाई देती है। रुचि की समानता का आधार आधार मानव जीवन की समानता है। मानव जीवन की विषमता से रुचि की विषमता पैदा होती है।1 सहाय जी का ध्येय इसी रुचि और गैरबराबरी को खत्म कर समतामूलक समाज की स्थापना करना है। अतः उनके निबंधों में मनुष्यता को खत्म करने में सहायक क्रियाकलापों के प्रति विद्रोह है।

रघुबीर सहाय के ललित निबंधों में ललित निबंध के तात्विक गुण पाए जा सकते हैं जैसे– रागात्मक व्यक्तित्व की अभिव्यंजना, स्वच्छदता, एकसूत्रता, कलात्मकता, संक्षिमतता आदि। सहाय जी के ललित निबंधों का उद्देश्य इन तात्विक विवेचन के लिए नहीं है और न ही साहित्य के द्वारा सौंदर्यात्मकता, भावात्मकता, कल्पना तथा कलात्मकता की स्थापना। उन्होंने पत्रकारिता के संदर्भ में समय–समय पर ललित लेख लिखे हैं। जिनमें से कुछ रेडियोवार्ता के रूप में पढ़े गए और कुछ पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। मौसम और फूलों पर उन्होंने बहुत ही संवेदनशीलता के साथ लिखा। सहाय जी के ललित लेख होली का दिन में आरंभ बहुत जीवंत व यथार्थबोध से परिपूर्ण है–

बसंती रंग जानते थे न पंसारी न मुसद्दीलाल
दोनों ने राय दो कंधे से कंधा मिला ले चलो पालकी।

बसंती रंग की पहचान के द्वारा सहाय जी ने सत्ता में बैठे लोगों, संविधान तथा आम जनता की समझ पर व्यंग्य किया है। चालाक लोग यथार्थ की समझ विकसित किए बिना आपस में निर्णय कर उसे ही यथार्थ मान लेते हैं। रंग की समझ के बारे में सहाय जी कहते हैं कि जिस प्रकार पीले रंग को पंसारी बसंती बताकर बेचते हैं उसी प्रकार झंडे में भी केसरिया की जगह नारगी भर संविधान का अपमान किया जाता है। जिससे बचने के उपाय के लिए सहाय जी व्यंग्यात्मक तरीके से उपाय भी सुझाते हैं– अगर रंग की समझ संविधान में लिख दी गई होती तो पूरी भारत सरकार को भरती के इम्तिहान में एक वर्ण निर्णय की जांच का पर्चा भी रखना पड़ता जिससे शायद लालफीताशाही ही बढ़ती, बसंती की परख नहीं।2 व्यंग्य के सीधे प्रहार की सी रीति अन्यत्र दुर्लभ है। सहाय जी भाषा की मनोरमता में उलझे बिना अपनी बात बोलचाल की भाषा में सीधा ही रख देते हैं। ललित लेख की यह शैली उनकी मौलिक तर्क पद्धति है।

ललित निबंध लेखक किसी भी हल्की–फुल्की बात को लेकर उसके सहारे अपने संगाध पांडित्य का सहज प्रदर्शन करते हुए हास्य–व्यंग्य द्वारा मनोरम बनाते हैं। बीच–बीच में लेखक अपने अनुभवों, लोक–कथाओं, लोक–संस्कृति शास्त्रीय संदर्भ आदि से आत्मीयता, रोचकता, सरसंता और आकर्षण से पाठक को प्रभावित करते हैं। ललित निबंध की यह विशिष्टता परंपरावादी सुजनात्मकता का अंग है। रघुवीर सहाय का ललित निबंध इन कसौटियों से बहुत आगे जाता है। अनुभूति के लालित्य में यथार्थ का गहन सिंतन तथा उसकी अभिव्यक्ति स्पष्टता के साथ सामने उभरती है।3

रघुवीर सहाय ने अपने ललित व्यंग्य लेखन में भारतीय आम जनमानस को झकझोरा है। सामंती व्यवस्था में दमित जीवन की आदी जनता अल्प में संतुष्टि का स्वांग करती है। सार्वजनिक चेतना का निर्माण मुख्यतः राजनीति पर निर्भर रहा। सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ और संस्थाएँ जनचेतना की अभिव्यक्ति से ज्यादा राजनीतिक पक्षधरता की ओर झुकी दिखाई दी। आर्थिक बदलाव का स्तर धीमा व शिक्षा के अवसर लुप्त प्रायः थे। औपनिवेशिक प्रशासन के दायरे में सामाजिक सरोकारों के अंतर्गत राजनीति में परिवर्तन की आकांक्षा से समाज के हाशिए पर रहने वाले लोगों में स्व की भवना को जगाने वाले रघुवीर सहाय प्रमुख लेखक थे। उन्होंने एक कुशल व सजग पत्रकार व संपादक की भूमिका का निर्वहन करते हुए अपनी आम जन की भाषा के द्वारा राजनीति को चुनौती दी। सहाय जी जीवन की प्रत्येक घटना में अपनी सजग दृष्टि से सामाजिक बदलाव की खबर देखते थे।

संत कवि रैदास की वर्षों पूर्व की कहावत मन चंगा तो कठौती में गंगा शीर्षक से लिखा गया ललित लेख ललित व्यंग्य का अद्भुत उदाहरण है। इस कहावत के बहाने मनुष्य की स्वयं को या दूसरों को भुलावे में रखने की प्रवृत्ति, अल्पसंतोषी प्रवृत्ति का सहाय जी ने बड़े ही विनोदपूर्ण तरीके से उल्लेख किया है। संहाय जी प्लेटो को लेख में उद्धृत करते हैं– प्लेटो कहता था, यहाँ सच कुछ नहीं है. सुब कुछ सच की प्रतिच्छाया ही है। अपने देश के मनीषी तो कह ही गए हैं कि संसार माया है, भ्रम है।4 समाज के धर्मभीरू लोग इसे ही सत्य मान लेते हैं क्योंकि सत्य जानने की उनमें इच्छाशक्ति या यों कहिए सामर्थ्य ही नहीं है। या फिर सत्य जानते हुए भी मनुष्य उसे स्वीकारना नहीं चाहता। इसी लेख का उदाहरण देखिए– खुद तमाम चीजों के लिए मन मसोसकर रह जाते हैं मगर जब मिलेंगे तो एक–दूसरे को

बादशाह–महाराज से कम संबोधन नहीं करेंगे, हाथ मिलाएँगे और खीसें बा कर आधासन दिलाएँगे कि हमें अपने कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। सामाजिक अन्याय की हमें परवाह भी नहीं, हमने तबीयत कुछ ऐसी पाई है कि उस पर यथार्थ का कोई असर नहीं होता।5 कहने का तात्पर्य यह कि मनुष्य स्वयं अपने पिछड़ेपन का कारण है, वह अपनी अकर्मण्यता पर कभी संतोष, कभी भाग्य, कभी दर्शन का जामा पहनाकर किसी सस्ते विकल्प की तलाश में रहता है। अपनी साधनहीनता को त्याग का नाम देकर वह इस कहावत की आड़ में छिप जाता है।

रघुवीर सहाय वैकल्पिक जीवन की अपेक्षा संघर्ष श्रेयस्कर मानते हैं। वे समस्याग्रस्त मनुष्य को मदद देकर उसके स्वाभिमान को ठेस पहुंचाने की बजाय उसे स्वयं लड़कर संभलने देकर आत्मविश्वास जाग्रत करने की चेष्टा करते हैं।मन चंगा तो कठौती में गंगा निबंध में उन्होंने स्थान–स्थान पर भारतीय मानसिकता पर व्यंग्य किया है कि हम किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए परिश्रम नहीं करते अपितु उस वस्तु का आरोप किसी अन्य वस्तु में करके स्वयं को संतुष्ट मानते हैं। वे लिखते हैं– हमारी मनस्विता इसी में है कि जहाँ रहते हैं, जो खाते हैं, या पीते हैं जो पहनते हैं, उस पर एवन क्वालिटी की एक मुहर बनाकर लगा लें। हो सकता है लेख में भी लेखक ने हमारी अकर्मण्यता पर प्रहार किया है। किसी काम की जिम्मेदारी उठाने से पूर्व हम सभी कोणों से यह निश्चित कर लेना चाहते हैं कि यह हमसे हो सकता है या नहीं। निष्कर्षतः नहीं हो सकता के पक्ष में हमारे पास अधिक तर्क होते हैं। कुछ नवीन होने घटने की उत्सुकता आदमी की सोच से परे रह जाती है। लेखक के अनुसार यही जिज्ञासु प्रवृत्ति नए–नए आविष्कार करने में सक्षम है अन्यथा परिस्थितियों की गुलामी करने जैसा है। वे लिखते हैं– संशय ही वह स्फुरण है जो एक चेतन क्षण को ज्वलित मुहुर्त बना जाता है, लेकिन फिर भी आ बैल मुझे मार इससे क्या फायदा। माना कि जैसे सब जीवन जीते हैं जिए जाते हैं, उसमें कोई सूजन नहीं है, मजदूरी ही है।7 हो सकता है की संभावना के कई पहलू सहाय जी ने हमारे–आपके सामने रखे कि हो सकता है कहकर मनुष्य स्थितियों व जिम्मेदारियों से किनारा कर लेने की कला में माहिर है। जब तक उसका गुजारा चल रहा है तब तक जो कुछ हो रहा है या हो सकता है से मनुष्य को कोई सरोकार नहीं। मनुष्य की मनुष्यहीनता से घिरी इसी अभिवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए सहाय जी लिखते हैं– कितनी उदात्त शांति है, उस जीवन में जिसमें किसी घटना पर आश्चर्य नहीं, किसी दुर्घटना पर शोक नहीं, और कोई घटना ही न हो तो अपने पर कोई ग्लानि नहीं, वह जीवन कितना ऐश्वर्यशाली है जिसे वक्त पर बस मिल जाने से बड़ी कोई खुशी नहीं और ऐन वक्त पर बस छूट जाने से बड़ा कोई रंज नहीं– यों तो वह एक प्रतीक्षा है ही, एकांत प्रतीक्षाः न कोई बेचौनी, न कोई झुंझलाहट, न माथे पर धूप की तपन, न पीठ पर बोझ का वजन। एक ऊबती हुई प्रतीक्षा जिसका चरम उत्कर्ष है पिनक का टूटना और आँख खोलकर देखना कि जहाँ थे वहीं हैं और अभी तक बस नहीं आई। कितनी क्षमा है ऐसे जीवन में।8 जो संभावित है मगर नहीं हो रहा से हमें कोई कष्ट, कतई विचलितता नहीं। संभावना और आशा पर दुनिया टिकी है। संसार से संभावनाओं के खत्म होते ही संसार नष्ट हो जाएगा। न हो सकने की संभावना में ही हो सकने की संभावना है। यह संभावना मनुष्य को मनुष्य बनाने की है। उनकी रचनाओं को समझने के लिए जो आत्महत्या के विरुद्ध थे निबंध में चंचल चौहान का यह वक्तव्य आवश्यक है– मनुष्य, मनुष्य के बीच समानता के मानवीय रिश्ते को एक मूल्य के स्तर पर रचनाओं में बार–बार जीना और उसी के लिए संघर्ष करना ही उनका संवेदनात्मक उद्देश्य था।9

इसी मानवीय समानता के संवेदनात्मक उद्देश्य की एक और कड़ी जुड़ती दिखाई देती है ललित व्यंग्य विकलांग से रिश्ता में। जहाँ सक्षम व्यक्ति अल्पसक्षम को उसका अधिकार दिलाने में असमर्थ है बल्कि उसकी भावना उसके सब अधिकार छीन लेने की है। महिलाओं को बस में श्महिलाओं के लिए आरक्षितश सीट का न मिलना तथा विकलांगों के लिए स्थित सीट पर श्समूचे अंगश वाले व्यक्तियों का कब्जा करना और विकलांग के लिए भी उसे खाली न करना आदि उदाहरण इस लेख में प्राप्य हैं। उस पर सरकार का रवैया समाज को उनके प्रति चेताना नहीं अपितु उनसे भिड़ाना हो तो उस समाज में कौन खी सुरक्षित है और कौन विकलांग सामान्य जीवन यापन कर सकता है? उन्हें उनके अधिकार दिलाने के अभ्यास में या फिर कहें ढोंग में उनका अपमान ही अधिक हो रहा है। इसे वे बस में विकलांगो को सीट दिलवाने के उपक्रम के द्वारा इस तरह स्पष्ट करते हैं– यदि किसी को सचमुच यह सुविधा चाहिए जो विकलांगों के लिए सुरक्षित सीट से मिल सकती है तो उसे अपने आपको सब लोगों के सामने एक निर्मम और अंधे समाज में अपना विज्ञापन करना पड़ेगा कि मैं विकलांग हूँ, इसलिए मेरे लिए सुरक्षित सीट मुझे दी जाए। वह गिड़गिड़ाकर सीट माँगेगा या डपटकर दोनों में से जिस तरह भी माँगे। संभव है उससे चार भले आदमी सबूत माँगें कि वह सचमुच विकलांग है...10 इतना ही नहीं विकलांगों के लिए आरक्षित सीट पर बैठे सम्पूर्ण अंगवाले व्यक्तियों की हृदयहीनता, अमानवीयता से टकराना भी विकलांग की नियति बन जाता है अन्यथा उसे अपने कठोर जीवनयापन की कठोरता में आम व्यक्ति से भी वृद्धि मिलती रहेगी। इस समस्या का हल भी सहाय जी इसी ललित लेख में प्रस्तुत कर देते हैं। वे आगे लिखते हैं– बस में एक लाइन यह भी लिखी जा सकती थी अगर किसी विकलांग को बस में सफ़र करते देखें तो उसके लिए सुरक्षित सीट उसे दिलवा दें औए एकदम अंधे लोगों के लिए आधे दाम की टिकट की रियायत देते हुए क्या यह नहीं लिखा जा सकता था, ष्जो व्यक्ति अपने किसी नेत्रहीन मित्र या परिचित को नगर निगम की बस में आधी दर का रियायती टिकट दिलाना चाहते हों उनके लिए राष्ट्रीय अंध समाज, निजामुद्दीन ईस्ट से प्रमाणपत्र लाकर टिकटू बनवा सकते हैं। यदि नेत्रहीन व्यक्ति को स्वयं साथ ले आएँ तो प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं है।11 सहाय जी इस निबन्ध में सरकार की

भेदात्मक नीतियों के विरुद्ध दिखाई देते हैं और साथ ही विकलांगों के साथ सरकारी कर्मचारियों व आम जनता के भेदभाव व दुर्व्यवहार की निंदा करते हैं। वे नेत्रहीनों के प्रति सनेत्रों की नेत्रहीनता पर करारा व्यंग्य करते हैं।

विज्ञापन के अतिरिक्त मीडिया ने किस तरह मानव को मानव से काटकर संवेदनहीन बना दिया है। गरीब असहाय मनुष्य का कष्ट उनके लिए तस्वीर की उत्कृष्ट कला है। मनुष्य को वस्तु समझने वाले इंसान ने वस्तु को मानवीय रिश्ते के अयोग्य घोषित कर दिया है। इसे सहाय जी ने समाझाया है लेख तस्वीरें बोलती हैं, पर क्या?श के जरिए सबसे तीखी ठंड की तस्वीर एक फटहा कंबल ओढ़े ठिठुरते बाप और बच्चे की और कहीं एक बुझती हुई आग तापते बूढ़े की। ... और बुड्ढे के चेहरे की झुर्रियाँ एक–एक गिनी जा सकती होंगी। यह उस तस्वीर की सुंदरता होगी। आखबार के पहले पृष्ठ पर यह तसवीर छपी होगी इसलिए नहीं कि यह नई ख़बर है बल्कि इसलिए कि इसमें कला का दावा है।12

दिखावटी सजावटी बनावटी दुनिया का चित्र गागर में सागर रीति से सहाय जी ने निबंध होली का दिनश में उकेरा है जब विलायत के रंग में रंगे लोग अपनी देसी संस्कृति व सभ्यता का देसी अवसर पर अल्पकालीन ढोंग करते दिखाई देते हैं। एक आधुनिक परिवार त्योहार के उपलक्ष्य में मेहमानों के सामने थोड़ी देर के लिए धोती–कुरते में अवतरित होता है। इसी प्रकार अंग्रेज़ी के अनुगामी हिंदीभाषी भी हिंदी को यदा–कदा अवसरानुसार व्यवहार में लाते हैं। सहाय जी की टिप्पणी है कि– श्इस आधुनिक परिवार ने अपनी भारतीय चुम्नट का प्रदर्शन कर दिया। फ़र्क इतना ही था कि हिंदी का प्रदर्शन वहीं किया जाता है जहाँ समतुल्य समाज में इस भ्रम में पड़ जानेवालों की आशंका न हो कि यह व्यक्ति अंग्रेज़ी नहीं बोल पाता इसलिए हिंदी बोलता है। जबकि धोती के प्रदर्शन में अंग्रेज़ी का सर्टिफिकेट नत्थी करना जरूरी नहीं, मुँह में पाइप दबा रखने से काम चल जाएगा।13

आज के मानव की व्यावहारिक समझ की ऊँचाइयों के सामने भावनात्मक व संवेदनात्मक समझ कहीं नीचे रह गई है, जिससे सहाय जी को अत्यधिक कष्ट होता है। जोड़–घटा, नफ़ा–नुकसान के गणित में उलझे रहने वाले समाज में से सामाजिकता व मानवीयता का लोप हो गया है। इस विषय पर सहाय जी लिखते हैं– श्आज के कवि को तो ऐसे समाज को समझना है, जिसने हमें जोड़े रखनेवाले बहुत– से रिश्ते बदल डाले हैं. जो संबंध दान से बनता था, वह क्रय–विक्रय से बनने लगा है और जो गुण अनुभूति से पहचाना जाता था, वह उपयोगिता से आँका जाने लगा है।श्इस बदलती दुनिया में सहाय जी को दया, प्रेम, सहानुभूति, करुणा, मामता आदि जैसी कोमल भावनाओं के मिट जाने की आशंका है।और सहाय जी की रचनाएँ इन्हें बचाने को प्रयासरत है। इंसान की व्यस्त ज़िन्दगी में कितनी ही परेशानियों उसकी अव्यवस्थित आदतों के कारण खड़ी हो जाती हैं, अत्यंत आवश्यक वस्तु की अतिरिक्त संभाल कभी–कभी उसके समय पर अनुपलब्ध होने का कारण बन जाती है। इसी बात को लेखक ने श्नी मन तेल होगा मगर राधा न नाचेंगीश लेख में इस शेर के माध्यम से व्यक्त किया है–

वही जिंदगी, वही मरहले वही काफ़िले, वही मंजिलें
मगर अपने अपने मुकाम पर कभी हम नहीं कभी तुम नहीं।
14

संदर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्त और हिन्दी अलोचना डॉ0 रामविलास शर्मा पृ0 191
2. रघुवीर सहाय रचनावली 2, ललित लेख होली के रंग पृ0 271
3. डॉ. अरविन्द कुमार झा, रघुवीर सहाय का गद्य साहित्य
4. रघुवीर सहाय रचनावली 2, ललित लेख, मन चंगा तो कठोती में गंगा पृ0 251
5. वही, पृ0 252
6. वही, पृ0 253
7. वहीं, ललित लेख, हो सकता है, पृ0 253
8. वही, पृ0 254
9. प्रतिपक्ष 1991, चंचल चौहान, पृ0 31
10. रघुवीर सहाय रचनावली 2, विकलांग से रिश्ता पृ0 262
11. वही, पृ0 263
12 वहीं, तसवीरें बोलती हैं, पर क्या पृ0 264
13. वहीं, ललित लेख, होली के रंगः पृ0 271
14. वहीं, ललित लेख, सुमन भर न लिए प्रसंग गया पृ0 268

डॉ0 संगीता वर्मा
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
आई. एल. आरमहाविद्यालय, जसाना
(फरीदाबाद) हरियाणा पिन – 121006

35

THE DIGITAL INDIA: AN OVERVIEW

Dr. Sarika Choudhary

Abstract

Digital India campaign is a technology driven concept which transforms the economy into a knowledge based economy. The vision behind this campaign is transformation of Indian economy through technological advancement. To develop digitally empowered society, this campaign has become a transformative force. For the ease of living of society, digital infrastructure will lead the wave of digital transformation. Therefore, the Digital India initiative has been instrumental in achieving this goal, and it has been extended with a total budget of Rs, 14,903 Cr from 2021-22 to 2025-26. Government has developed various Public Digital Platforms such as Digilocker, UMANG, Rapid Assessment System, OpenForge, API Setu, Poshan Tracker, National AI Portal, MyScheme, India Stack Global and many others. For this National E-governance Division has been framed to support Minstry of Electronics and information technology. The present paper is basically tries to analyse the need of the digitalization of Indian economy and what are the benefits and challenges in this wave of digitalization. This paper throws light on key vision areas, focus areas and loopholes of this process as well as issues emerging after launching this project as most of population of India lives in rural areas.

KEYWORDS: DIGITALISATION, INFORMATION TECHNOLOGY, TECHNOLOGICAL ADVANCEMENT, NEGD, PUBLIC DIGITAL PLATFORMS.

INTRODUCTION:-

Today is the era of digitalization. Everything from pin to plane is today digitalizing. Everything can be done on internet. Internet is becoming very important in our day to day life. It is necessary for everyone to become "digital literate". But in country more than half of the total population is living in rural areas, where internet is not available as easily in urban areas. So the concept of "digital India" becomes the need of the hour. Digital India, a much ambitious programme, was launched on 1st of July (Wednesday) in 2015 at the Indira Gandhi Indoor Stadium, Delhi. It was launched in the presence of various top industrialists (Tata Group chairman Cyrus Mistry, RIL Chairman and Managing Director Mukesh Ambani, Wipro Chairman AzimPremii, etc). In the meeting, they shared their ideas of bringing digital revolution to mass people of India from cities to villages. Various events have been held in the presence of Information Technology companies to cover 600 districts in the country. Digital India programme is a big step taken by the government of India to make this country a digitally empowered country. The aim of launching this campaign is to provide Indian citizens electronic government services by reducing the paperwork. It is very effective and efficient technique which will save time and man power to a great extent.

WHY DIGITAL INDIA?

Many people in rural areas have no Internet connection, and also the content in regional languages is not sufficient to keep the readers engaged. Only 15% of the households can access the Internet, and few people can access mobile broadband. There are vast differences in urban centres such as metropolitan cities and remote rural areas. There is unwanted delay in govt. works, so people have to suffer a lot for smart cities and better metro cities.

According to a report, nearly 33% of Indian population is functionally illiterate (rank: 95), one-third of youth do not attend secondary education. So it is "need of hour"

MAIN FOCUS AREAS

This plan will really ensure the growth and development in India especially in the rural areas by connecting rural regions and remote villages with high-speed internet services. The overall project monitoring will be under the Prime Minister himself. Citizens of digital India may improve their knowledge and skill level after getting covered under the umbrella of internet. It is an ambitious project will benefit everyone especially villagers who travel long distance and waste time and money in doing paper works for various reasons. The main focus areas or also called nine pillars of digital India are as follows:

1. Broadband highways.
2. Public internet access programmes.
3. Mobile connectivity everywhere.
4. E-kranti
5. E-governance.
6. Information for all
7. **Electronics Manufacturing,**
8. **IT Training for Jobs,**
9. **Early Harvest Programmes**.

In rural areas , people are not much aware with internet facility. They don't even heard about internet but after the scheme launched by Prime Minister NarenderModi, they are bocoming "digitally literate". We can see everyone today using whatsapp, facebook and many social websites.

THREE MAIN KEY VISION AREAS:

1. Digital infrastructure all through the country is like a utility to the Indian people as it will make available high speed internet delivering all the government services with ease and fast. It will provide lifelong, unique, online and authenticable digital identity to the citizens. It will make easy access to any online services like handling bank account, financial management, safe and secure cyber-space, education, distance learning, etc.
2. High demand of good governance and online services will make available all the services in real time through digitalization. Digitally transformed services will also promote people for doing online business by making financial transactions easy, electronic and cashless.
3. Digital empowerment of Indian people will really make possible of digital literacy through universally accessible digital resources. It will enable people to submit required documents or certificates online and not physically in the schools, colleges, offices or any organization.

EXECUTION OF THE PROGRAMME

The government is leveraging technologies in mobile, analytics, Internet of Things and cloud technology to implement the Digital India program, which is in turn associated with program such as Smart Cities and Make in India. The World Economic Forum (WEF) shows though India today has a better political and regulatory environment, its performance ranked 91. One of the reasons for India's low ranking is that its performance has remained static while that of other countries is improving fast to cope up the new emerging technologies. WEF has further attributed such poor performance to poor infrastructure and poor technology skills (individual level). The poor skills have become an impediment to widespread acceptance of information and communication technology. **BENEFITS OF DIGITAL INDIA**

1. It will boost up the "digital literacy" of India, especially in rural areas, where people are not much familiar wi-fi internet facilities.
2. It may ease the important health care services through e-Hospital system such as online registration, taking doctor appointments, fee payment, online diagnostic tests, blood check-up, etc.
3. It may ease the important health care services through e-Hospital system such as online registration, taking doctor appointments, fee payment, online diagnostic tests, blood check-up, etc.
4. Open access of broadband highways in all the cities, towns and villages will make possible the availability of world-class services.
5. For better management of online services on mobile such as voice, data, multimedia, etc, BSNL's Next Generation Network will replace 30-year old telephone exchange.
6. It provides benefits to the beneficiaries through National Scholarship Portal by allowing submission of application, verification process, sanction and then disbursal.
7. It will increase the "work efficiency".
8. It ensures the achievement of various online goals set by the government.
9. There is a plan of outsourcing policy also to help in the digital India initiative.
10. It will remove the unnecessary delay or "red tapism".
11. It is an effective online platform which may engage

people in governance through various approaches like "Discuss, Do and Disseminate".

12. Its main motto is "power to empower".
13. People will become self-dependent with the ease of doing services.

PERFORMANCE OF PROJECT

Rs 1.3 trillion the Digital India program seeks to launch a large number of e-governance services across different sectors. These include education, healthcare and banking. Of course, the objective of all this is to bring transparency in the administration of services provided by the government to its citizens. Further, it would reduce corruption and lead to inclusive growth.

SPECIAL ACHIEVEMNTS OF INDIA

India has made a few achievements in e-governance projects such as Digital Locker, etc., the linking of Aadhaar to bank accounts to disburse subsidies.

Bharat Net the country's digital infrastructure has created a common service centre for each panchayat, for which all post offices and CSCs are to be upgraded.

As for broadband technology, India is better placed. According to a report, India's average broadband speed is 23.5 Mbps and maximum speed is 25.5 Mbps.

LOOPHOLES IN THE PROJECT

As a coin has two sides, same is the case with "digital India". The programme has many loopholes like some people don't feel comfortable while giving their personal details on Internet. They don't want to share their bank details etc. for payment purposes. Some major loopholes are as follows:

1. We may have to give our personal details like Aadhar no. , mobile no. etc. and there may be chances of "hacking" etc.
2. Some network programmes are big issues.
3. Everybody doesn't have knowledge regarding internet.

CHALLENGES AHEAD:-

The digital campaign is still facing the following challenges:

1. As most of people are living in rural area, therefore 25% of total population is still digitally illiterate. To literate people is a big challenge.
2. Low internet speed is also a big hindrance in the digital India initiative.
3. India is lacked behind in digital infrastructure.
4. Private sector participation in this campaign is most urgent as only public sector can't reach efficiently to the masses.
5. The access of internet in far off villages or backward regions is still a big challenge.

CONCLUSION:-

To conclude, it can be said that digital India is a great initiative by Govt. of India. Despite of so many advantages and disadvantages, it will prove a boon for India. So many new projects are being undertaken by govt. of India for its successful implementation. There are big challenges to implement fully this campaign, but it is possible only if there are some improvements like digital literacy awareness programmes, cyber risk security, proper installation of digital infrastructure will be done at national level.

References

- Rani Suman(2016) .Digital India: Unleashing Prosperity . Indian Journal of Applied Research, volume-6, Issue 4, pp187-189.

"Government aims to give 'Digital India' benefits to farmers: PM Modi"

- , The Times of India, 18 February 2016.
- Seema Dua(2017). "Digital India: Opportunities & Challenges". IJSTM,volume-6, Issue 3, pp61-67
- https://en.wikipedia.org/wiki/Digital_India

https://www.digitalindia.gov.in/

· https://digitalindia.gov.in/vision-vision-areas/

· https://negd.gov.in/about-national-e-governance-division/

· https://www.investindia.gov.in/team-india-blogs/digital-india-revolutionising-tech-landscape

· https://www.tice.news/tice-trending/assessing-impact-digital-india-initiative-startups

·https://www.researchgate.net/publication/369602917_Digital_India_An_analysis_of_its_impact_on_Economic_Social_and_Environmental_sectors

· https://euroasiapub.org/wp-content/uploads/2017/06/6IMMay-4879.pdf

Kindly send Hard copy of the Journal on the following Address

Sender's address :- Dr. Sarika Choudhary, House No. 11, Dewan Colony, Behind Ashoka Cinema, Karnal-132001, Haryana. Mobile No. 9991777779

36

Reflections of Indian Culture in Bollywood Films

Arundhatee, Prof (Dr.) Madhu Shalini

Abstract:

Oxford Learner's dictionary defines, 'culture' as way of life, the customs and beliefs, art and social organization of a particular country or group. Culture encompasses human society's behavior, institutions, conventions, knowledge, beliefs, arts, laws, customs, capacities, and habits. Culture frequently refers to a particular locale. India has a rich and diverse culture, encompassing a wide range of customs, traditions, and social norms that have evolved over thousands of years. Some important aspects of Indian culture are, family structure, religious practices and festivals, its diverse cuisine, art and dance, language and diversity, literature and epics.

This paper proposes to analyse the Reflections of Indian Culture in Bollywood Films. It would discuss whether Indian films reflect India's unique culture, and social challenges or is it mere entertainment. Since Bollywood films are 100 years old, this article offers to analyse selected films.

Keywords: Culture, Bollywood, Indian, Cinema.

1.Introduction: Culture is a debated phenomenon, with various communities understanding it differently. It is an integrated pattern of human knowledge, beliefs, and action. Culture encompasses language, ideas, beliefs, customs, taboos, codes, institutions, instruments, techniques, and works of art. Culture is a set of common values, beliefs, knowledge, skills, and practices that guide behavior within a social group at a given moment. It encompasses creative expression, skills, traditional knowledge, and resources. These include craft and design, oral and written history and literature, music, drama, dance, visual arts, celebrations, indigenous knowledge of botanical properties and medicinal applications, architectural forms, historic sites, and traditional technologies, traditional healing methods, natural resource management, and social interaction patterns that contribute to group and individual well-being and identity. It is commonly believed that culture embodies the way humans live with and respect others, as well as how they evolve or respond to changes in their environment.

India's culture is rich and diversified, with a wide range of rituals, traditions, and social conventions that have evolved over thousands of years. Some key characteristics of Indian culture include family structure, religious practices and festivals, diversified food, art and dance, language and diversity, literature, and epics. The 'Indian identity' has developed continuously throughout the country's history, as political and religious institutions changed both within and outside of India. Indian culture is as multifaceted as life. It encompasses both intellectual and social qualities of a human person. It considers both aesthetic and spiritual aspects of human nature. It also suggests that the subconscious plays a role in character development. India is a huge country with diverse physical and social environments, as illustrated by its map. Our surroundings are diverse in terms of language, religion, and rituals. These differences can also be observed in their eating habits and clothing choices. Consider the diverse styles of dance and music in our country. However, despite all of these differences there is an underlying unity that serves as a unifying factor. India has experienced centuries of intermingling. Many people from many racial, cultural, and religious origins have migrated here. Indian culture is a consequence of many cultural groups' long-term contributions, making it composite and dynamic. Indian culture is unique and valuable to all Indians. Bollywood films are noted for embracing many elements of Indian culture. From traditional weddings to dress and music, these films frequently feature cultural themes that are important in Indian society. For example, Indian weddings are frequently depicted in Bollywood films, with actors dressed in traditional Indian attire. Furthermore, Bollywood's visual culture, which includes film posters and billboards, influences the image of popular Indian cinema. While Bollywood films may not always be an authentic reflection of Indian culture, they do capture some aspects and customs that are familiar to audiences in India and worldwide

Bollywood, a Mumbai-based Hindi film industry, emerged during the silent film resurgence in Europe and the US. Its success led Indian filmmakers to become the world's largest producer of movies. Influenced by Indian epics, Sanskrit theatre, traditional folk theatre, Parsi theatre, Hollywood, and music television channels, Bollywood expanded from 1913 to the 1960s, releasing various genres and reaching the West.

1.1.Research Questions:

This study will focus on the following questions.

1.How has Bollywood films represented Indian Culture ?

2.How has cinema evolved over the last hundred years?

3.Does Bollywood need to introspect its themes in contemporary era?

4.What are the aspects of Indian culture portrayed in

Bollywood?

1.2. Scope and limitations:

The scope of this study is to analyse the portrayal of Bollywood films as ambassadors of Indian culture. Keeping in mind the plethora of films produced in the millennium by the Bollywood , it wood be difficult to analyze all of them individually in this study. Therefore, a 20 year time frame has been marked to cover the entire 100 years and the major films within each time frame have been discussed and analyzed,linking them to the focus of this study. This paper would cover the one hundred years of Bollywood cinema and would discuss to what extent they were able to do justice to be called as ambassadors of Indian culture. This research would assist us comprehend the nature of Bollywood movies. It would also aid in analyzing the path of Hindi cinema and establishing its future goals.

This article seeks to examine Bollywood films as ambassadors of Indian culture. It would debate whether Indian cinema reflects India's unique culture, morals, and social challenges, or if it is merely a kind of entertainment. The history of Indian cinema from its inception to the present will be covered. Because Bollywood films are hundred years old, this article proposes to evaluate the selected films in five phases, each spanning twenty years. Selected films, such as *Garam Coat (1955), Mother India (1957), Roti Kapda aur Makan (1974), Dilwale Dulhaniya le Jayenge (1995), English Vinglish (2012), Tare Zameen par (2007), Toilet: ek prem katha (2017),* and so on, will be analysed in light of their role as ambassadors of Indian culture.

1.3. Literature review:

Culture is integral part of our daily life and it is well reflected in our films. These films act as mirror to our society as well as ambassadors to our diverse culture. It has been largely accepted that films too are part of the cultural heritage of any society.In the past work has been done on Indian films, discussing its various aspects .But an all-encompassing study ,discussing and highlighting the cultural aspects of India through films has not been undertaken. As such this study will add to the already existing body of work on Indian cinema providing it a new dimension.

2.The concept and nature

2.1 The Concept:

Bollywood is a portmanteau (a combination of two words) of Bombay and Hollywood. The Hindi-language Indian film business is located in Bombay, presently known as Mumbai — in other words, India's Hollywood. India produces more movies than any other country in the world, and Bollywood films are typically three or more hours long, with lavish costumes, locales, dancing, and music. The critical theorist Theodor Adorno and Max Horkheimer, chiefly coined the term "The Culture Industry: Enlightenment as Mass deception" which was presented as a critical vocabulary in the book *Dialectic of Enlightenment (1947).* They self-addressed the growing uniformity in the realms of art and culture.

2.2 The history of Bollywood: Bollywood, a Mumbai-based Hindi film industry, emerged during the silent cinema revival in Europe and the US. Its roots can be traced back to Indian epics, Sanskrit theatre, traditional folk theatre, Parsi theatre, Hollywood, and music television channels. The industry grew from 1913 with influential films exploring storytelling techniques, social concerns, and epic productions.

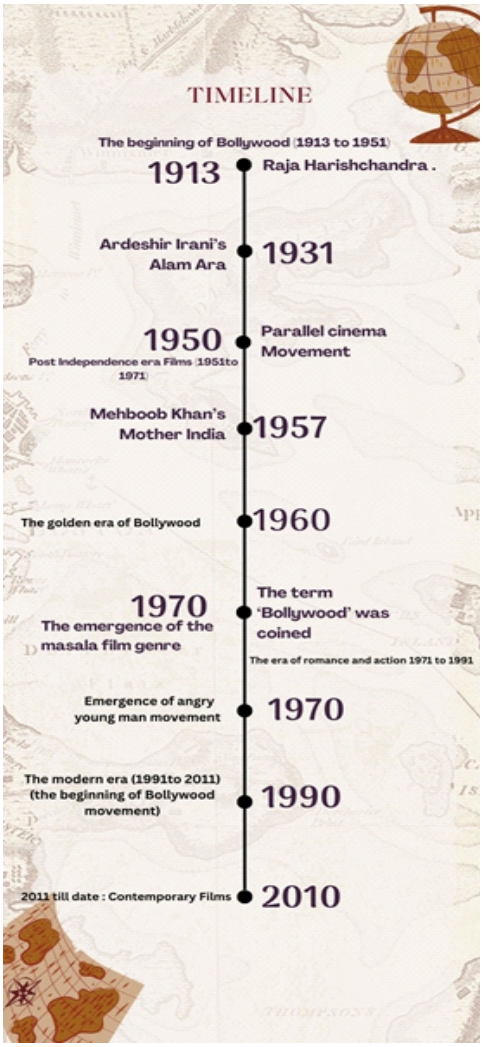

Design courtesy: Canva.com

3 Reflections of Indian Culture in Bollywood Films

3.1 <u>Indian Culture, One hundred years of Bollywood and their interrelationship</u>

All the films selected for this study, have been chosen keeping in mind the focal questions to be examined -the relationship between Indian culture and Bollywood. The

way this relationship is enacted from the beginning of Bollywood to the contemporary time, truly reflects the culture of India. Here in this paper, we would divide 100 years of Bollywood into five sections each comprising twenty years. At least one movie from each section would be discussed in light of cultural representation of India. The selected films, such as *Garam Coat (1955), Mother India (1957), Roti Kapda aur Makan (1974), Dilwale Dulhaniya le Jayenge (1995), English Vinglish (2012), Tare Zameen par (2007), Toilet: ek prem katha (2017),* and so on, will be analysed in light of their role as ambassadors of Indian culture.

3.2 The beginning of Bollywood (1913 to 1951): Bollywood, originating from Mumbai, India, is the world's largest film-producing industry, primarily producing Hindi-language films. Founded in 1913, it has grown due to affordability and accessibility. Technological advancements in sound and dialogue have influenced Indian cinema, with the first sound film *Aalam Ara* and the historical movie *Tansen* 1943 showcasing Indian culture.

3.3. Post Independence era Films (1951to 1971): Amar Kumar directed the film *Garam Coat* in 1955. The film is notable for its depiction of Indian culture, particularly through its narrative and characters. *Garam Coat (1955)* is set against the backdrop of Varanasi's traditional weaving industry. The film delves into the socio-economic hardships of weavers and their families. The major character, played by Balraj Sahni, is a poor weaver who wishes to provide a warm cloak (*Garam Coat)* for his sick wife.

Garam Coat (1955) is a film that explores themes of poverty, aspirations, and the challenges faced by the working class in the traditional weaving industry in Varanasi. The film follows the story of Balraj Sahni, a poor weaver who dreams of providing a warm coat for his ailing wife. It highlights the importance of traditional Indian occupations, particularly the hand loom weaving industry, and the socio-economic disparities faced by lower-income groups. Focusing on Indian family values, such as love, care, and responsibility within a family unit,it also highlights the strength of familial bonds despite financial hardships and societal challenges. The use of elements of indian incorporates elements of Indian classical music, traditional dance, and regional languages , add authenticity to the cultural milieu of the film

Mother India (1957),hailed till date as a classic Indian film,was directed by Mehboob Khan, showcasing the agrarian lifestyle, traditional values, family and community relationships, gender roles, social injustice, and class gap in rural India. Set in a rural village, the film highlights the sacrifices made by women and the importance of family and community bonds. The film incorporates Indian classical music, dance, traditional clothing, folk songs, and regional dialects, showcasing the diversity of customs in Indian society. The title Mother India has symbolic meaning, reflecting the nation's enduring spirit and a cultural artifact showcasing eternal themes and values.

3.4 The era of romance and action 1971 to 1991: *Roti Kapda Aur Makaan* is a 1974 Bollywood film directed by Manoj Kumar, focusing on socio-economic issues and the struggles of the common man in India. The film highlights the importance of family bonds, traditional values, and social issues like poverty, unemployment, and economic disparities. It also explores the struggle for survival, highlighting the basic necessities of life in the Indian context. The film also features scenes of cultural celebrations and rituals, giving viewers a glimpse into traditional Indian festivals and customs.

The masala film genre in Indian cinema, particularly in Bollywood, emerged in the 1970s and 1980s, blending elements of action, drama, romance, comedy, and music. Key examples include *Sholay (1975), Amar Akbar Anthony (1977), and Don (1978*). The angry young man character archetype, portrayed by Amitabh Bachchan, emerged in the 1970s, symbolizing the common man's struggle against corruption, inequality, and social issues. This trend shifted from idealistic, romanticized portrayals to more realistic, relatable characters facing challenges in a rapidly evolving society.

3.5 The modern era (1991to 2011) (the beginning of Bollywood movement): *Dilwale Dulhania Le Jayenge*, a 1995 Bollywood film directed by Aditya Chopra, is a significant representation of Indian culture and family values. The film revolves around arranged marriages and the central conflict, highlighting the authority of traditional fathers. It emphasizes respecting elders and adhering to their decisions, reflecting the traditional values of Indian society. *DDLJ* incorporates various cultural elements, such as festivals, rural life in Punjab, and traditional wedding customs, contributing to the overall representation of Indian culture.

Another movie of this period is *Tare Zameen par (2007)* which is also a milestone in Indian cinema. "*Tare Zameen Par*" is a film that explores themes related to Indian culture, family values, and the Indian education system. The film portrays Ishaan, a child with a strong family bond, critiquing the Indian education system's rigidity, celebrating individual talents, and celebrating diversity in Indian culture, while also highlighting the emotional connection between Ishaan and his art teacher.

3.6 2011 till date : Contemporary Films : Bollywood has shifted towards addressing social issues and realism, with films like *Article 15(2019)* and *Talash (2012)* tackling societal complexities. Women-centric narratives, biographical and historical dramas, and coming-of-age themes have gained popularity. Genre diversification and innovative storytelling techniques have been introduced, reflecting a globalized world.

English Vinglish is a 2012 Indian film directed by Gauri Shinde, starring Sridevi, that explores cultural identity, self-worth, and family dynamics through the protagonist's journey to learn English. The film highlights traditional Indian values, family bonds, and respect for elders, as well as the importance of Indian cuisine. It also touches upon societal expectations, particularly for women, and the impact of globalization on Indian culture. *Toilet: Ek Prem Katha*, another offbeat film, challenges traditional beliefs about sanitation, highlighting the challenges faced by women and the importance of gender equality. The film also highlights the role of marriage in Indian culture and the government's role in influencing cultural practices. Both films use humour and satire to engage audiences and convey socially relevant messages.

CONCLUSION:

Bollywood is a global advocate for Indian culture, showcasing a diverse collection of traditions, rituals, and values through its captivating films, music, and dance routines. It serves as a bridge, encouraging global understanding and respect. Bollywood films represent the multidimensional nature of Indian society, highlighting its struggles and successes. It has evolved into a cultural phenomenon, shaping perceptions of India and generating community among the diaspora. Bollywood also serves as a catalyst for boosting India's soft power globally, challenging myths, and promoting respect for its rich heritage. In essence, Bollywood not only reflects Indian culture, it also extends beyond the screen; it is an influential force capable of connecting people, bridging gaps, and celebrating the essence of India's cultural diversity on a worldwide scale.

References:

1. Nios.Ac.In, https://www.nios.ac.in/media/documents/SecICHCour/English/CH.02.pdf.

2. "History of Bollywood - Indian Cinema." Historyoffilm.net, http://www.historyoffilm.net/movie-eras/history-of-bollywood/.

3. Singh, Shweta. "Understanding Bollywood through the Concept of Culture Industry by Theodor Adorno & Max Horkheimer." Medium, 29 Apr. 2021, https://shwetahere.medium.com/understanding-bollywood-through-the-concept-of-culture-industry-by-theodor-adorno-max-horkheimer-b22410920d36.

4."Bollywood Movies: History and the 'Bollywood Movement'." *Ivy Panda*, 31 Oct. 2023, ivypanda.com/essays/bollywood-movies-history-and-the-bollywood-movement/

5.Mishra,V.(2002).*Bollywood cinema:temples of desire*.New Delhi:Routledge

6.Kingsford-Smith, Andrew. "A Cinema like No Other: 100 Years of Bollywood." Culture Trip, The Culture Trip, 9 July 2013, https://theculturetrip.com/asia/india/articles/a-cinema-like-no-other-100-years-of-bollywood.

7. https://www.timetoast.com/timelines/history-of-bollywood

8.Biswas,Soutic. "Alam Ara:Search for the lost film That gave birth to Bollywood"BBC,15May 2022,www.bbc.com/news/world-asia-india-61404876

9."Culture.Oxford Advanced Learner's Dictonary,7th ed.,Oxford UP,2005,p373.

Prof (Dr.) Madhu Shalini
University Department Of English
B.r.a. Bihar University, Muzaffarpur, (bihar)
Mobile No- 9031745230

Arundhatee
Research Scholar
B.R.A.B.U. Muzaffarpur
MOBILE NO-8335012004

Arundhatee
(Ph no-8335012004)
Address- (Postal)
Arundhatee
C/O-Virendra Kumar Thakur
Flat No-201, SBB Royal apartment,
4th main cross road, Coconut Garden,
Ayyappa Nagar, Bangalore 560036.Karnataka.

37

A Critical Reading of London and the Modernist Identities in Woolf's *Mrs. Dalloway*

Apoorva

ABSTRACT

The city and modernist literature are symbiotic to each other as the modernist consciousness needs the urban apparatus. The inner space of alienated modernist characters interact with the external space. They share a stimuli-response equation. What does the space bring out in a character and how does it impact the various subjectivities that dwell in that space?

Keywords : Modernist consciousness, Subjectivity city space, Alienation, Fragmentation.

This paper explores the rendition of city, particularly London and the modernist interiority in Woolf's *Mrs. Dalloway* (1925). It probes into the portrayal of the urban centre that London is, and how does it color the different characters. The city space tends to add layers in the characterization. It serves as a projection site of characters' inner thoughts. The temperament, the mood, the thought process roll of it, finds accurate expression in the surroundings and the locales of the city. The city in the text reflects the subtle inner voices of its dwellers. The relationship between the characters is neither neutral nor static. It charges and evolves.

Mrs. Dalloway is a text that offers enough instances of how a city could serve as a lens to view and dig deeper the characters. Ther texts opens on an unusual note. The protagonist has this strong and undeniable urge to step out into the external domain and buy flowers. Clarissa Dalloway feels and Woolf records, “Mrs. Dalloway said she would buy the flowers herself”. (P-3).

This line is a reflection of how a female looks at the city and its provisions. Clarissa in the text is shown as an upper class elite woman, married to a rich man. She has the liberty to sit back and enjoy her elite, privileged life. Woolf's characters are often caught in a swift current of uncontrolled thoughts. This is an important trait of the authentic modernist subjectivity. One lives more in the mind space than the outer space. Woolf catches Clarissa in one such moment and says, “Thought Clarissa Dalloway, what a morning”. (P-3)

What is to be read here in that Clarissa's inner space is uncluttered and she does not have to earn her bread and butter unlike Mrs. Kilman, another female character in the novel. She is not mentally torn and shattered like Septimus Smith, who unfortunately shares a sad, horrifying relationship with the same city. Clarissa being a woman does not have to participate in the world war and hence can afford to think of the morning and flowers. She can think of her happiness, enjoyment and social life. The city offers a positive outlook to Clarissa but as mentioned earlier the city is not the same for everyone it inhabits. Septimus Smith does not look forward to London and what it has got to offer him.

The external markers of the city are clearly evident. The Big Ben (Clock) tolls time and again in the novel. It so strikes that it either sends the character in his/her past or it jolts the character and pulls out to the present. The distinction between psychological time and clock time, the durée and temps of Bergson's philosophy underlies the modernist experiments with time and form (Whitworth, P-177). This liquidity of time is another trait of modernist fiction. There seems to be a merging of past and present. The clear defined boundaries between 'then and there' and 'here and now' are absent. The modernist consciousness remains stranded between the two forever.

When Clarissa is out on the 'Victoria Street' and she Hears an aeroplane going above her Head, Woolf records her feelings and says this 'was, what she loved life, London, the moment of June.' (P-4)

The quoted lines show her outlook and her lens to engage with the city. She has an impulse within her to soak in the ephemeral beauties of life. She always wants to catch up with the 'here and now'. Her consciousness is deeply informed by it. The immersion and distance of the character with respect to the city space is less about the physical markers and more about character's introspection, and memories of the times gone by.

Clarissa seems to be not only thankful but also

obsessed with her city life. When Hugh asks her where she is headed to, Clarissa answers, "I love walking in London". This emphasizes her affinity with London but the next part that she goes on to say "Really, it's better than walking in the country. (P-5), brings to home the idea that her bond with the city is majorly so because of her class identity. She in a way, poses a binary between between the city and the country side.

Her marriage to an upper class man ensures her power and privilege nexus with the city. Her class offers her a different vantage point. Her psychology and city are intertwined interestingly. Her relationship with the city is a little beyond conception. In Beker's view, her equation with London, "is not fully explicable in rational terms, amounting to a mystical communion with the locale." (Beker, P-376).

Beker's idea resonates to quite an extent as Woolf later in the novel, captures Clarissa's feelings. She writes, "for having lived in west minister- How many years? Over twenty one feels in the midst of traffic, or walking at night, Clarissa was positive, a particular hush, or solemnity, an indescribable pause, a suspense...". From the quoted lines it is all the more clear that what Clarissa feels about her city and life in city is much beyond the orbit of expression. The disjointed and fragmented language emerges as another unmissable trait of the modernist subjectivity. The modernist self feels so much but fails for articulate. The apt words slip far away from the reach.

Clarissa's personality is such that she nurtures duality and complexity, not of character but of experience. At times in the novel, she is characterized by binaries and she also tends to reflect on old age and mortality. Being torn between two opposites and constant reminders of the passage of life and time make *Mrs. Dollaway* a true modernist text. Woolf records Clarissa's thoughts, "She felt very young, at the same time unspeakably aged." (P-7). The duality and polarity in thoughts makes her subjectivity quite modernist. In 'Rethinking Modernism', Lyn Pykett says, "Modernism is not simply a matter of when, but also a matter of what and how." (P-160). She is also seen reading a book that reads the lines, "Fear no more the heat O' the run nor the furious minter's rages." (P-8) The fear strikes Clarissa that mortality is just round the corner. Like any other classic modernist text, the life is shown fleeting and transient. It feels impossible to cling to the time and life slips away from the grip.

Clarissa's relationship with London owes a lot to her husband. Her marital state is of supreme importance because a woman's identity is evaluated through a man. The parts and portions of the city that are accessible to her one only because of her elite lifestyle. She desires to be independent like Lady Bexborough but Woolf writes about her identity as, "Mrs. Dalloway, not even Clarissa any more; this being Mrs. Richard Dalloway." (P-9).

The denial for her marital identity is perhaps best captured in her strong instinct to buy flowers herself. In the society she had one singular rigid identity of being Mrs. Richard Dalloway but when she roams and walks on the Victorian street, she perceives herself only as Clarissa. The baggage of her marital identity is not there. The city her is liberating for her. It offers her independence and individuality. It makes her a different person in this context observes and says, "Women, their entry into the public spaces of the city were used to mark their liberation from enclosure in the private, domestic sphere. (Marcus, P-61).

In the work of Parsons, "There are infinite versions of any one city." (Parsons, P-1). As stated earlier in the paper, city and its engagement varies from individual to individual. This could be seen in the portrayal of Elizabeth, who is Clarissa's daughter. The two are poles apart in personality, taste and likes dislikes. The city allures both but in different ways. If Clarissa enjoys being in this city, Elizabeth views it as a place that promises her a secure and bright future. She sees it as a place that is ripe for her professional prospects. She does not engage with the city like her mother. The mother daughter look at the city in two completely different ways. The mother enjoys the riches and the social life but the daughter sees it as a place of bread and butter. Woolf portrays Elizabeth as someone who enjoys the 'Strand' more as it was different from Westminister that her mother likes. She reminds herself and Woolf records, "She would like to have a profession. She would become a doctor, a farmer, possibly go into Parliament if she found it necessary, all because of the strand." (P-111). Unlike her mother she likes a different part of the city. Her

consciousness invites, omnibus, Strand. That is the thing about urban centres. They tug differently. The city engages with Elizabeth's desire and mind differently.

The stimuli and response equation of the character and city is never fixed. As an evidence, Septimus Smith's character can be investigated. London does not appear to him in the same shade as it does to Clarissa or Elizabeth. He finds its extremely hard to immerse himself in the city. It has a sea of people in and around but not a single soul understands Smith. His consciousness remains inaccessible and incomprehensible. He is a complete stranger to the city.

Smith is a shell shocked war veteran who had been deeply impacted and thwarted by the repercussions of war. London, post war, had changed for people who had gone to war. In the Woolfian world, the rich like Clarissa have forgotten about war but those who fought could not. Smith becomes desensitised as a result. His wife Rezia wants to see London but Smith is shown pensively looking at England from the train window" and thinking, "it might be possible that the world itself is without meaning". (P-72)

With reference to Smith and his numbness, Woolf writes, "London has swallowed up many millions of young men called Smith." (P-69). Smith does not get better. He, as Woolf says, "grows stranger and stranger". (P-54). He hears people talking, he sees things like an old woman's head. He gets sudden bouts of negativity. After being happy for a while, standing by the river side, he says, "Now we will kill ourselves." (P-54). Eventually we come to know that Smith commits suicide. The city could not save him. He felt so shattered and alienated that he takes away his own life. He fails to come to terms to London and its life. The tragedy is that where Clarissa goes to buy flowers, Elizabeth imagines herself as a professional, Smith kills himself. The London cannot rescue him. It becomes a site of death for him.

It can be concluded that the internal and the external space are entangled. How you feel on the inside, the city captures that. Stepping out makes Clarissa happy but it terrifies Smith. He cannot identify with the London he inhabits. If both the mother and daughter look forward to the city positively, Smith hunts for an escape.

Woolf portrays Smith's observations of London's city life "as if some horror had come almost to the surface and was about to burst into flames" (P. 12-13). The city on one hand rejuvenates Clarissa but on the other it kills Smith. The city that excites one character, it sucks life out of another. London itself appears to be a character in the novel. Its shades and spectrum has something to offer to everyone. This complex depiction invites proper scrutiny of the city's representation.

In the words of Himanshu Dutta, "for the modernist writer, the city was a locale to be conceptualised and understood." (https://medium.com)

The paper has tried to offer a critical reading of how the city has been seen and experienced by two female characters and one male character. It also tries to identify the modernist undertones of the text by discussing about the external and mental space. It also touches upon the constant flux of time between past and present. Which leads to complexity of experience. Woolf as a modernist, "appears to be arguing for a representation of the life of the mind, in all its vagaries, idiosyncrasies and indeterminacies, in its complexity and its fullness." says Brinda Bose in her introduction to *Mrs. Dalloway*. (P-xix).

Conclusion:

It can be concluded that urban space and the experiences of the modernist self are crucial to Woolfian world. It is a world where the mind matters more. It engages with the outer realities. The city treats everyone differently. One might take a plunge into the city life, the other may long for a retreat.**Works Cited**

Beker, Miroslav. "London as a Principle of Structure in 'Mrs. Dalloway". Modern Fiction Studies, Vol. 18, No. 3, 1972, (P. 376).

Bose, Brinda. "Introduction" *Mrs. Dalloway.* Ed by Brinda Bose, Delhi : World View Publications, 2014, Print. (P-xix)

Dutta, Himanshu. "Modernism and the City : The Representation of the City in the works of Virginia Woolf and T.S. Eliot. https://medium.com/@himanshu_dutta/modernism-and-the-city-e1deee90b8d3

Marcus, Laura, *Virginia Woolf*, Tavistock, Devon, U.K. :

Northcote House, 2004.

Parsons, Deborah L, *Streetwalking the Metropolis : Women, the City, and Modernity.* Oxford University Press, 2000, (P. 1)

Pykett, Lyn. "Rethinking Modernism", *Mrs. Dalloway.* Ed by Brinda Bose, Delhi : World View Publications, 2014, Print. (P-160)

Whitworth, Michael. "Virginia Woolf and Modernism". *Mrs. Dalloway.* Ed by Brinda Bose, Delhi : World View Publications, 2014, Print. (P-177)

Woolf, Virginia. *Mrs. Dalloway*, New Delhi, Worldview Publications, 2014, Print

Bio-Note :

Apoorva

D/o Dr. Savita Mishra

292/10, Sahitya Vihar, Bijnor-246701 (U.P.)

Mob.: 9879586458

38

Predicament of Women In Arundhati Roy's : The God of Small Things

Dr. Seema Rani

ABSTRACT

The purpose of the research paper is to explore the elements of female predicament in the novel of Arundhati Roy 'The God of Small Things', The paper throws light on the truthful picture of the predicament of Indian woman. Arundhati has taken up the issue of women characters to flight for their identity and economic and social freedom. Arundhati portrays the inhuman treatment of woman as a burning problem of the society. This paper depicts the silent sufferings, fears and dilemmas of women of four generations. She analyzes their humble submission and undeserved humiliation in male dominating society, where the male folks treat them as mere objects and subject them to extreme oppression.

Keywords : Predicament, Dilemmas, Submission, Humiliation, Oppression.

Introduction:

Arundhati Roy, an acclaimed post-colonial Booker-Prize winner, Indian novelist has achieved far and wide popularity and recognition with the publication of her very first novel 'The God of Small Things' in 1997. She is the most artistic of Indian writers, who won the Prestigious Booker – Prize first time as an India English woman author. As one reviewer observed, "To top of this happened in 1997, India's 50th anniversary of Independence from Britain. The world is all praise for Arundhati's attempt, yet at home the accolades were not unanimous nor very spontaneous. Critic Sukumar Azikode did not hesitate to claim : "Being realistic the book is full of sights especially for the westerns. But it offers no insights. It is very satisfying. And that is the main flaw. It offers no challenge to the reader. It is Kerala for the foreign tourist, Just the periphery" (Azhikodez) Shobha De called it a "Freek thing that happened" (qtd. in Eichert 40) But Kamala Das whole heartidly praises her : She is our own girl…. I feel proud on her" (40)

'The God of Small Thing, a semi autobiographical novel, is characterizes as an extra ordinary art of imagination and portrays the truthful picture of the woman characters against the patriarchal structures. Arundhati Roy analyzes her protagonists caught between patriarchy and tradition on the one hand, and self expression, individuality independence on the other. Arundhati Roy analyzes the women predicament through the examination of the women characters like Ammu, Mammachi, Baby Kochamma, Rahel and Margaret Kochomma and Sophie Mol. The novelist has mapped four generations in the novel. It shows the women's marathon struggle for seeking the sense of identity in a totally averse and envious society. The social structure of an average Indian woman is full of ups and downs, ifs and buts. Much of the story is told from Rahel's perspectives as a seven years old girl and as a thirty-one-year old woman. She has an instinctive connection to Estha, her male fraternal twin, and as a child she could share experiences and memories with him she grows up in Ayemenem family in the Kottayam district of Kerla where her mother Ammu's suffering starts in her own house and gradually contributes to her ignoble death.

In first generation Aleyoooty Ammachi is Pappachi's mother. She continued to lie in an oil portrait besides her husband Rev. Ipe's painting. Baby Kochamma and Mammachi belong to Second generation. Baby Kochamme is Pappachi's younger sister, fells in one-sided love with an Irish Monk father Mulligan, and even converts to Roman Catholicism to remain close to the father. She too suffers psychologically and maltreated victim for her wrong choice of a partner. For her failure in love she remains a spinster in her life and becomes a venomous woman and a hard boil cynic and spoils other sexual enjoyment. As she have no child so she has no tolerance for Ammu's twins. Mammachi is also emotionally barran, who always remains loveless, she gets no love from her husband rather she always remains a target of Pappachi's physical violence. She was beaten by him and often forced to remain outside the house. Generally mother tries to protect their children in all the possible ways. But she never seems to help Ammu her own daughter.

Ammu is Pappachis and Mammachi's daughter and she has one brother named Chacko. Ammu faces the cruelty of her father, from her child, when her father used to beat her and mother with a brass vase. Ammu's predicament starts at a very young age when her father moves from Delhi to their village Ayemenem after his retirement. This movement causes a sudden break in her studies. Her orthodox minded father, with his patriarchal psychology says, "College education was an unnecessary expenses for a girl."

Ammu met her future husband in a marriage and she accepted a stranger's proposal because returning to Ayemenem would have only meant the continuation of the same beatings, humiliation and insult. She thought that "anything anyone at all, would be better than returning to Ayemenem. But after marriage her life became worse than before in Assam where her husband was posted. Her enjoyment of a newly married life

did not prove long lasting because she found her husband to be an alcoholic, who went to the extent of encouraging her to satisfy the carnal desire of Mr. Hollick, his boss so that his job could be saved. But Ammu refuses to compromise and walkes out of her marriage when he physically assaulted Ammu and children. She comes back to Aynemenem from which she tried to escape and now treated as a burden and unwelcomed person along with "two children and no more dreams and legally "Ammu as a daughter had no claim to property", where she was born and brought up, on the contrary, Ammu's brother Chacko a divorcee like her remains the rightful inheritor of the family property as he is a man. Due to the hypocrisy of the society, and injustice of her family, Ammu slowly turns into a Vebal and starts an affair with a low caste Paravan, Velutha, a fellow sufferer because of his low caste.

Ammu felt herself 'drawn towards him like a plant in dark room towards a wedge of light. They continued their fragile transient happiness for thirteen days. But Velutha's father discloses their nightly trysts and he told the news of their illicit relation to Baby Kochamma. Velutha was arrested and tourtured mercilessly, all hell broke loose heavily on the lovers. It is unfortunate for Ammu that her mother and Baby Kochamma fail to understand her. When Ammu goes to Police Station she is addressed as a 'Veshya' by the inspector. Velutha was charged wrongly with the alleged murder of Sophie Mol who was Chacho's step daughter and was the only link between Chacko and his ex-wife Margaret that bound them together. Sophie Mol was accidentally drowned in the river when she was playing in the boat. Velutha was beaten to death in police custody while Ammu was separated from the her twins and at the age of thirty-one she breathed her last all alone in a grimy room in the Bharat Lodge in Alleppey, haunted by her familiar fears. Roy depicts a morall stinking modern society which does not allow a woman the freedom which she aspires to fulfill her dreams. Further the church also refused to bury Ammu on several counts. As a result, Chacko and Rahel carried her dead body to the electric crematorium where 'the whole of her crammed into a little clay pot, Receipt No. Q498673.

Rahel has witnessed all the sufferings insult and abuse of her mother Ammu that were inflicted on her. Rahel was absolutely ignored by Mammachi and Chacko. But timely she developed a casual attitude to life. She did not suffer from the various restrictions imposed by the society. She grew up into a young woman of her own. Being an educated and modern girl, she violently protests against the acceptance of the fate of her mother and grandmother leaving a greater confidence and a clear perception of life. Rahel acknowledges the marriage as a brief arrangement for the fulfillment of one's self. Hence, 'Rahel, a dark woman in a yellow T-shirt, turns to Estha, her brother in the dark in order to enjoy the game of incest, the very terrifying practice which usually brings about the destruction of mankind. Naturally, the twins once again broke the Love-Laws like their mother. Therefore, Roy observes: "Perhaps, Ammu, Estha and Rahel were the worst transgressors."

The novel is a satire on society where a daughter is estranged from her husband and is tortured and tyrannized upto death while as estranged son Chacko and his daughter Sophie Mol receive warm welcome. Ammu like a discriminated daughter is expected to stand behind a 'Chilman of bamboo curtain designed to conceal woman from the outside but not the outside from them'. Whereas Chacko the Oxford Avatar of the Old Zamindar mentality, misses no chance of flirting and exploiting his women employees at his pickle factory, and is ironically termed as "Man's Need" and is excused by Mammachi. The fate of Chacko's divorced wife Margaret too is brought to the fore. Margaret is no more than a whore in Mammachi's eyes.

In the novel male characters Pappachi, Chacko have more power and enjoy the patriarchal society status whereas women characters are never fully develop to become strong matriarchs because of the strict social structure. Arundhati Roy in her novel has a sensitive understanding of her female characters. Though they belong to upper class and affluent yet they are not emancipated. The female characters in the story belong to two different worlds and countries still they experience the common bond of oppression and predicament.

Conclusion:

Arundhati Roy unhesitatingly delineates the women character as the seekers in quest of autonomy and freedom. Roy's women are like the birds in cages who flutter and longing for freedom and allocating spaces for them. The women show signs of resistance and try to thwart the male order but their predicament struggle is overwhelmed by the ideology of strict social system. Women are torn between traditional boundaries and modern free zones. The representation of the subaltern women by Roy has been made more varied, who in spite of their oppression are not without responsibility. Ammu represents people who actually dare to do the unthinkable to transgress against the 'Love-Laws' and cross-caste relationships. In the novel, only Ammu and Rahel dares to challenge the society and Ammu miserably fails in it. The novel portrays the unjust treatment meted out to female characters as the low section of social hierarchy. Thus 'The God of Small Things' is a rare book that so effectively cut through the clothes of women predicament

to reveal the bare bones of humanity.

References:

Roy, Arundhati, *The God of Small Thing,* New Delhi : Indian Ink, 1977, Page 38 Rajimwale, Sharad, ed. *The God of Small Things (A Critical Study)*, New Delhi, Rama Brothers, 2001
Roy, Arundhati, *The God of Small Thing,* New Delhi : Indian Ink, 1977, Page 38
Roy, Arundhati, *The God of Small Thing,* New Delhi : Indian Ink, 1977, Page 42 European Journal of English Language and Literature Studies Vol. 4 No. 1, pp. 37-41, January 2016
Roy, Arundhati, *The God of Small Thing,* New Delhi : Indian Ink, 1977, Page 57
Roy, Arundhati, *The God of Small Thing,* New Delhi : Indian Ink, 1977, Page 248
Roy, Arundhati, *The God of Small Thing,* New Delhi : Indian Ink, 1977, Page 163
Roy, Arundhati, *The God of Small Thing,* New Delhi : Indian Ink, 1977, Page

Dr. Seema Rani
Junior Lecturer in English,
G.G.S.S.S. Baroda (Jind)
#40/6, Gandhi Nagar, Jind.

39

Problems of Morality in Shakespeare's selected plays: A Renaissance Perspective

Dr. Sunita Yadav

ABSTRACT:

The present paper is an attempt to show the impact of evils of the new Renaissance philosophy in the wake of which moral values were perverted and morality acquired new meaning. The renaissance changed man's outlook on life, feudalism declined, and new individualistic ethos emerged, legitimatizing hedonistic acquisitiveness. Man was no longer a tiny creature, he was free from every bond-religious, political, social, and moral. The discoveries in science and astronomy opened new vistas of exploration in the material world. Now God was not a subject of meditation for man, and he participated actively in the game of life. He considered himself as the reservoir of limitless potentialities and could do miracles which saints and divines did earlier. He justified his every action on moral grounds, and this indulgence in physical pleasure of life was equivalent to spiritual joy for him.

In this paper, I have dealt with a few plays of Shakespeare, "As You Like It", King Henry IV (part -1), Richard II, King Lear, Hamlet and Macbeth.

There is a common belief that Shakespeare's comedies present a glorious vision of life and his tragedies present dark and gloomy picture of life, but when these plays are examined in the Renaissance perspective, the mortality of the age is clearly visible in them.

Problems of Morality in Shakespeare's selected plays: A Renaissance Perspective

INTRODUCTION:

The present paper is an attempt to show the impact of evils let loose by the new Renaissance philosophy in the wake of which moral values were perverted and morality acquired new meaning. The Renaissance changed man's outlook on life and his universes with the decline of the feudalism under the pressure of the capitalistic mode of production of the new ways, an absolutely new individualistic ethos gradually emerged that legitimatized the vulgar, hedonistic acquisitiveness.

RENAISSANCE's MINDSET:

Since Renaissance opened man's eyes, he was now no more a tiny creature, a sinner by birth. He threw aside his all shackles of the medieval age. The church no longer now was a power to control his soul, nor was king's order a compulsion to obey. He was absolutely free from every bond-religious, political, social, and moral. The discoveries in science and astronomy exploded the myth of his imperfection, new vistas of explorations in the material world were opening every day, and God was no longer a subject of meditation, nor heaven an object of gaze.

Unlike the medieval man the Renaissance man did not refrain himself from active participation in the game of life. He considered himself a reservoir of limitless potentialities and could do miracles which saints and divines did earlier. As a free individual man, he justified every action on moral grounds, and thus indulgence in the physical pleasure of life was in his eyes equivalent to spiritual joy. Woman was no longer a source of sin, nor was sex a taboo.

SHAKESPEARE'S PLAYS: RENAISSANCE PERSPECTIVE:

Such a way of life becomes manifest when we examine Shakespeare's plays in Renaissance perspective. There is a common belief that Shakespeare's comedies present a glorious vision of life full of exuberance that characterized the early Renaissance.

In his history plays he eulogized the national and patriotic sentiments of English kings and nobles and in his tragedies, he presented dark and gloomy picture of life which characterized the Jacobean period. But the truth is that Shakespeare was critical of Machiavellianism of renaissance humanism, which was driving man towards Moral degeneration. Man was a paragon of beauty for the humanist, but the world of comedies presents a sharp contrast between the brutal realities of life and the utopian vision of the humanists.

The real world is governed by the monsters who resort to the old tactics of trail and deceit to capture power and drive the honest and truthful to the situation of helplessness and desolation. Yet, these victims of human atrocities do not grudge because of their faith in the essential goodness of man. They make gesture of compromise with destiny and flee to distant world which is uncontaminated by the evils of the mundane world. Their withdrawal is an ironic comment on the humanist's failure to combat the contemporary moral degeneration.

AS YOU LIKE IT:

"As you like it "is a fine illustration of such a view of life. Frederick and Oliver are the Denizens of renaissance world whereas duke senior and his daughter Rosalind, her cousin Celia and Orlando symbolize the utopian humanist visionaries. They live in the forest of Arden and pose no threat to Frederik but even then, since he is a symbol of renaissance lust of wealth and power, he resolves to wipe out all his visionaries. Shakespeare gives a fine artistic twist, Fredericks's conversion to a recluse and his desire to restore the dukedom to his brother is a fine mockery to the wishful thinking of a renaissance humanist. In history plays Shakespeare does not glorify either the velour or heroism of the English kings or nobles nor are their patriotic or nationalistic sentiments reflected. Rather these places or a powerful dramatization of rat race for power and authority.

KING HENRY IV and RICHARD II:

A close study of King Henry (IV) (part -1) and Richard II clearly illustrates this view. Henry Bolingbrook usurps the Crown and becomes king Henry IV after Richard's murder. He plans to launch a crusade to atone for the crime of regicide, but the plan is dropped because the Percies rise in rebellion against the crown. Their demand was that Mortimer, their kinsman, be made the king because Richard had designated him his heir. His son, Prince Hal, is enjoying a life of revelry, rioting and robbery in Falstaff's company. One day while the king is asleep and the crown lies beside him, the prince picks up the crown and puts it on his head presuming the king is dead. This is a fine condemnation of the Renaissance lust of power that dehumanized man.

MACBETH:

It is the same lust of power and wealth that creates a climate of moral pollution in the tragedies. The protagonist is dehumanized and falls a victim of moral perversion over lustfulness and over ambitiousness. What converts valiant Macbeth into a demon? All human values are frozen, he killed his own kinsman, king Duncan and does not have any moral compunction in killing those whom he considers obstacles in his way. He wears the crown but is deprived of all the noble aspirations of life. He feels desolate and cries out.

"And that which should accompany old age
As honor, love, obedience, troops of friends
I may not look to hell ".

Now for him life has become…

…a tale
told by an idiot, full of sound and fury signifying nothing.

KING LEAR:

King Lear is a romantic, egocentric and sentimentalist who forces his daughters to shower their love and affection on him whereas his two daughters are the worst victims of acquisitiveness and self-aggrandizements. Goneril and Regan are the destructive force of humanity devoid of any moral values of life. They can sacrifice the finer sensibilities for the fulfilment of sexual lust and greed of wealth and power. They have no love either for their husbands or for their father. Their sole objective is to satisfy the lecherous appetite. Since they are lost in moral wilderness and moral chaos, they destroy each other in the end.

Similarly, the Earl of Gloucester's extramarital relations symbolize the renaissance looseness of morals and irresponsible bohemianism. His illegitimate son, Edmund, represents moral anarchy let loose by the New Philosophy. Golchester does not want to bring up his son properly. Edmund being a typical product of the renaissance ethics and morality makes a plan according to the Baconian principles of practical wisdom. He exploits both Goneril and Regan who love him for his selfish ends. He sets his father against his brother and betrays the old man to his enemies. Can anyone object to his devilish designs when everyone has a right to struggle for his progress and prosperity? Ironically, speaking the question of right or wrong, moral or immoral does not arise in such a struggle.

HAMLET:

The world of Hamlet that is Elsinore is a microcosm of the whole of Europe of the Renaissance in which all normal human relations are dislocated and all elemental values of life are perverted. Brother develops incestuous relations with his sister-in-law for killing his brother in connivance with her so as to usurp the throne and lead a life of royal luxury. Human sacrifices and sense of identity towards her husband forsakes her filial duties towards her son because she prefers to fulfil her lust to anything else in life. Friends betray and begin to spy on one who is victim of injustice and cruelty expecting a reward for their treachery what a travesty of human relationships and morals! But does it mean that all should subscribe to such a perversion of moral values and compromise with the forces of evil to ensure their own secure position in society? No, of course not. In every society there is a minority which equals the voice of protest against disvalues and moral anarchy.

Hamlet is a spokesman of this minority. He is a

conscientious young man who cherishes in his heart his strong desire to uphold the cordial principles of human relations based on the essential values of life. The hasty marriage of Claudius and Gertrude made him suspicious of some foul play and death of his father.

The words of ghosts are nothing but the objectification of Hamlet's suspicion of his uncle being the murderer of the late king. Hamlet is awfully shocked at the discovery of such a frightening truth; a brother has murdered his brother; a wife has become accomplice in this heinous crime and married a villain who is not match to her deceased husband. Hamlet thinks that unlike his mother, "a beast, that wants discourse of reason would have mourned longer,"

Hamlet throughout the play appears before us as a lovely figure, struggling to preserve certain values of life which have become topsy-turny. That is why she cries out with a feeling of anguish.

The time is out of joint - O Cursed spite That ever I was born to set it right.

The change in Ophelia's attitude towards Hamlet presents another dimension of the distortion of human relations and morality under the pressure of practical considerations of life. It appears that Ophelia is fascinated by Hamlet's social status rather than by his essential being. She is enamored of the glamour and glitter of a prince rather than the nobility of his exquisite spiritual pursuits. The long-cherished desire of Hamlet to set right the moral disorder of this world remains a dreamy vision. The scheming Claudius manages to get him killed in the prime of his youth. But during the last moments of his life, he tells Horatio that had his life not been snapped by death he might have told him the purpose of his struggle. He requests Hamlet to explain his conduct to those who might not be satisfied by it and no one can deny that Hamlet's struggle is to create a moral climate and restore human dignity in Denmark.

BIBLIOGRAPHY:

- Brooke Shopford A: The Plays of Shakespeare.
- Craig, Hardin: An interpretation of Shakespeare.
- Granirlle Barker, H.: prefaces to Shakespeare.
- Text of the plays referred in the paper.

Dr. Sunita Yadav
Associate Professor of English
RDS Public Girls College
Rewari 123401
Ph no: 9416407646

40

WOMEN EMPOWERMENT & MINDSET OF SOCIETY & HELPING HAND OF LITERATURE

Dr. Seema Rani

Abstract :

This paper analyses the status of Women Empowerment in literature and focuses on problems and challenges of Women Empowerment through women's sufferings, dehumanization and problems. Women search for space in an incarcerated milieu and flounder to achieve an authentic selfhood. They are depicted as stifled and angushed being desperately groping their genuine self.

Today, the empowerment of woman has became one of the most important concern of writers. Main focus is on emancipation of women from the vicious grips of social, economical, political, castle and gender based discrimination. The study reveals that women are relatively disempowered and they enjoy somewhat lower status then that of men inspite of many efforts in the society.

The study concludes by an observation that access to Education, Employment, economic freedom and change in social system are only the enabling factors to Women Empowerment. Women Empowerment is marked as a self conscious interest in the celebration of the values, ideas, beliefs and behaviour uniquely or traditionally characteristic of women.

Keywords :- Women Empowerment, dehuanization, emancipation, social, economical, self conscious.

Introduction :

Women has projected as victims of chauvinstic opression while using the phrase "The Second Sex, Simeone de Beauvoir opines that women's idea of herself as inferior to man and dependent on him springs from her realization that 'the world is masculine on the whole those who fashioned it and still dominate it are men". Though the biological distinction between male and female is an accepted fact, the motion that women in general and feminists in particular. S.D. Benuvoir inserts that 'one is not born but becomes a women.[2] The old prejudice of women being the weaker sex is also reflected in the language pattern - particulary in English. Men are considered to be bold, strong, logical, rational, independent, women on the contrary are considered to be timid, yielding, gentle, dependent, emotional. Though all culture the womanly quality, while the praise masks. The acutal relegation to a secondary position. Literature of course reflects these stero types."[3] When talking about Women's Empowerment means accepting and allowing women who are on the outside of the decision making process into it. Empowerment includes the action of raising the status of women through education, awareness, literacy and training. Women Empowerment is all about equipping and allowing women to make life determining decisions through the different problems in society.[4]

Empowerment of women is a necessity for the very development of a society, since it enhances both the quality and the quantity of human resources available for development.[5]

To understand the position of women in the world, one has to understand the system of patriarchy. Men looked at women from this point of view. They have even forced women to look at themselves from male point of view. The social roles of wife, mother and housewife assigned to women go hand in hand with a division into the public and private domains. The first being the sphere considered proper to men the second to women Milton's line. 'He for God only, she for God in him' could well be an example of the almost universally held assumption that man's purpose in life is to serve God, the state, the society while woman's purpose is to serve man. While projecting the problems of women in their writings writers has attached on the feudal values that are responsible to persist with the male-dominated society, inside the walls of their houses and outside, by their fathers, brothers, husbands and masters.

It is also a fact that women today occupy the coveted posts of Presidents, Prime Ministers, Scientists, Commanders, Administrators still it is not enough. They even today feel being discriminated against. So its time to aim at over throwing social practices that leads to disempowerment of women.

Women struggle to seek for self-knowledge and self-realization which can in twin lead to the relationship based on mutual understanding and respect. Women should be regarded as a resource of creativity. Women empowerment is a part to encourage women to feel strong by telling them that they can do everything that they want to do. Women can work outside their homes have opportunity to make up their mind. Women are not depended on man. They can earn money to support their family by working through their abilities writers help to empowerment of women and promote to give the value to women. Women should not be abused by any factor such as sexual abuse, emotional abuse and physical abuse. Many women now are participating in society, politically and economically.

Writer like Norman Henary Miller, exposes the patriarchal bias and the sexual harassment of women. Critics argue that if one studies stero types of women presented by male critics and the limited roles women ought to be Showalter joins Irving Hove on the interpretation Hardy's Mayor of casterbridge when drunken Hen chard sells his wife. Showalter questions it : Hardy is really moving us the man at his best Thus, Hardy's female characters in The Mayor of Casterbridge, as in his other novels, are some what idealized and melancholy projection of a repressed male self."[6]

The similar feelings expressed by N Geetha : Women are usually cast into a few popular stereotype of a narrow range of characterization. There are two basic types of image : positive roles, which depict women as independent, intelligent and even heroic; and a surplus of misogynic roles commonly identified as the bitch the witch the vamp and the "Virgin Goddess".[7]

Chris Weeden opines : If woman is called the 'second sex', or 'the other half'. She is also called 'the better half'. If women are denied their rights, they are also defied. Women empowernment has been a hot topic in so many works of so many writers. The Indian women writers like Arundhati Roy, Mamta Kalia, Kamla Das, Eunice De Souza, Shobha De, Manju Kapur, Kiran Desai, Kamla Markandaya, Nayantara Sehgal uphold the sufferings of women in different ways. These female writers has tried to expose the hypocricy of the male dominated tradition bound society and its hostility against women. These writers hold a mirror to our social response to such things. The shattered superiority complex of men results into violence against woman as if in deep depression. Writers treat their women characers with understanding and compassion while pitting them against men who are selfish, hypocritical and burtally ambitions.

In today's world, the division of labour, the division in access to means of production, the division in decision making power, and the division in distribution are all in favour of men and detrimental to women. Even the institutions of home and family are the source of women's oppression within all spheres of society : reserving the private sphere to women and the public sphere to men.

Empowerment of women would mean encouraging women to be self-reliant, independent, have positive self esteem, generate confidence to face any difficult situation and invite active participation in various socio political development endeavors. The growing conscience is to accept women as individuals capable of making rational and educated decision about them as well as the society, increasing and improving the economic, political and legal strength of the women to ensure equal right as men, achieve internationally agreed goals for development and improve the quality of life for their families and communities. There still remain quesitons about the acceptance of women empowernment is the most advanced of countries, while developing nations and nations under political duress are far from achieving the desired status.

The position and status of women all over the world has raised incredibly in the 20th century. A long struggle going back over a century has brought women the property rights, voting rights, inequality in civil rights before the law in matters of marriage and employment.

Conclusion :

There is not a redical but a litle bit of change in the mindset of people that are allowing women to walk on the pathway of development. Women are leaving no stones unturned to prove themselves to the world and despite many

hurdles, they turn out to achieve respectable and notable positions. So now, we have to consider over each and every concept on women empowerment. First, emancipating up women's participation in society will free up and rampant minds and economics.

Now, to eradicate all these wickedness from our society and to construct our society a superior place to reside for both men and women. Women empowerment supports women to perceive upon their lives as a confident being. It truly incites women to stand and fight by their own rights and live a well worthy life. It is the responsibility of everyone to take care of the women as they play a very important role in the betterment of society and the world. It is nicely quoted :

"once a woman is on the move,
the whole family moves,
then the village moves,
at last the nation also moves."

Let us take the oath that we want an egalitarian society where everybody whether men or women get opportunity to express and uplift one's well being and well being of the society as whole and freedom to live with dignity.

References :

1. Simon de Beauvoir : The Second Sex, trans. H.M. Parshley : London : Four square Book : 1949 : p. 298
2. Ibid; 273
3. Shirin Kudchedkar : Feminist Literary criticism : The Grand Work : Journal of Literary Criticim, (June 1996) p. 333.
4. Bayeh, Endalcachew (January 2016). The role of empowering women and achieving gender equality to the sustainable development of Ethiopia" Pacific Science Review B : Humanities and Social Sciences. 2 (1) 38
5. Gupta Kama; Yesudian, P. Princy (2006) I "Evidance of Women's Empowerment in India : a study of socio - spatial disparities' Geo-Journal - 65 (4) : 365-380.
6. Elain Showalter ; "Towards a Feminists Poetics" Modern Literary Theory : (II Edition) : Eds Philips Ruce London : Edward Arnold : 1992 - 93.
7. N. Geetah : Exploding the Cannon : Feminist writing and Inerextuality, Journal of Literary Criticism 7 : 2 (Dec. 1994) : P-61

Dr. Seema Rani
Junior Lecturer in English,
G.G.S.S.S. Baroda (Jind)
#40/6, Gandhi Nagar, Jind.

41

Human Rights and Gender Equality

Nisha Bathla

Abstract

Examining the possible consequences, worldwide influence, and practical implications of gender equality for the creation and execution of international human rights laws, this study delves into the connection between gender equality and human rights. We take into consideration the importance of tackling the gender problem while also considering the interconnection of age, class, and race, and the unique and adverse experiences that arise from these aspects.Many perspectives on gender inequality will be discussed in this paper. Included in this category are issues of gender-based violence, which is very common, as well as education, economy, and political representation. The human rights framework and the ideal of equality can help us understand and tackle the various types of gender inequality in these global contexts.The essay also delves into concrete tactics and actual projects that have been launched all over the world to safeguard human rights of all people and advance gender equality. The essay paints a clear picture of the current state of affairs regarding human rights and gender by examining particular cases and the most current statistics. As someone who is generally competent with statistics, I is unable to imagine a future where there is more verifiability, despite the fact that they are notoriously difficult to assess accurately. Experts in the area of gender, however, are conducting this work all the time since it is so important.We want to emphasise how critical it is to struggle for social development and human rights in a way that prioritises gender equality.

Introduction

The modern, democratic nation-states that exist in the world today are, by and large, inspired and guided by the values of human rights and gender equality. They don't always live up to these values, but they're what are called the "normative ideals" or "core principles" of our societies. For international nationalists and state theorists, the idea of equality, much like the idea of liberty, has its rightful place alongside human rights. Equality isn't just an American value; it's an international goal, and it's a goal that we here in the United States have had some success in pursuing at particular times and up to certain points in our own history.

The rights of individuals that are commonly referred to as "human rights" are actually meant to apply to all people, everywhere in the world, from the moment of birth until the moment of death. These rights are seen as being held by every human, all the time, and as not belonging to a select few by virtue of any special qualities or privileges they might have. Human rights are seen as being "equal and inalienable." Meanwhile, the term "gender equality" is specifically meant to signal that the sorts of equal rights, responsibilities, and opportunities conventionally ascribed only to males are now also (or should be, in the ideal) ascribed to females (and to persons of other gender identities as well).

In spite of the wide-ranging progress made since the late 1940s, the forms of gender inequality addressed by the international conventions of the past half-century continue to endure. And they remain intractable in too many key areas where the United States and its allies have long sought to promote global well-being, smoothing the way for trade liberalization, economic integration, and American global influence by pushing what a bipartisan cadre of policymakers from the late 1970s through the present call "fundamental freedoms" or "human rights."

Furthermore, violence against women and gender non-conforming people is an assault on basic human rights that affects an unprecedented number of individuals. This assortment of unprecedented forces weakens not only the circumstances and status of the individuals directly involved but also the communities and societies of which they are a part. Attempts to even dent the scale of these kinds of violations are crippled by the intractability of the aforementioned social and economic structural elements, as well as the attendant countervailing forces of cultural norms, which many argue are every bit as powerful in authoring the space between these kinds of transgressions and anything perceived as a meaningful response.

The policy aims to help bring about real equality between the sexes by making sure that gender is considered in a wide range of contexts—that is, from top to bottom and across the board of a society's makeup.

Not only make sure that when we do have dialogue and deliberation in the public sphere, we have gender equality for all. But it is also supposed to make sure that our societies in the ways they're made up of. So, from mention of the word "governance" in the Public Sphere to the kind of statutes and laws that make up welfare systems and that make education systems, that there is really substantive equality at all levels of society.

Moreover, in the struggle for gender equality, the importance

of activism and civil society should not be underestimated. Globally, countless movements and campaigns have played a vital role in effecting tangible differences in terms of legislation, public policies, and even public perceptions. And in the digital era, these forces have found new tools and platforms of action, which has both upsides and downsides. On the one hand, activists are now better connected and therefore more effective at creating real change.

As we work through the problems that lie before us, it becomes even more apparent than it has ever been that gender equality is a necessary goal. It is not just a "nice to have" thing. It is not some vestige of feminism, out of touch with the most basic realities facing people everywhere in the world: those, for a start, of any man, woman, or child who may be displaced by war or other disaster, and who might have to count on the kind of services that the United Nations works with reducing discrimination in order to access, as a kind of first non-equalized step. Toward that goal this paper labors.

Objectives of paper

1. To Evaluate the Progress and Effectiveness of Gender Equality Policies Worldwide:

2. To Identify and Analyze Persistent Barriers to Gender Equality:

3. To suggest effective tactics that increase gender equality and forge the blending of gender viewpoints into human rights action plans.

Research Methodology

Using a combination of qualitative and quantitative techniques, this study follows a mixed-methods research strategy. Data collection includes a comprehensive literature review of existing policies, international treaties, and case studies. Surveys and questionnaires will be distributed to gather quantitative data from diverse respondents, including policymakers and the general public. Semi-structured interviews with key stakeholders such as government officials, NGO representatives, and academics will provide qualitative insights. This approach aims to evaluate the effectiveness of gender equality policies, identify persistent barriers, and propose actionable strategies for enhancing gender equality and integrating gender perspectives into human rights practices.

The United Nations and women

An ardent supporter of women's rights, the United Nations has been there from the very beginning. In Article 1 of its Charter, the United Nations lays out its stated purposes, one of which is "To achieve international co-operation... in promoting and encouraging respect for human rights and for fundamental freedoms for all without distinction as to race, sex, language, or religion."

It was in the first year of the United Nations that the Economic and Social Council's Commission on the Status of Women formed the principal global policy-making organisation whose main purpose is to promote gender equality and women's advancement. The first significant result was the inclusion of language that did not discriminate on the basis of gender in the draft United Nations Declaration of Human Rights. **(Human Rights Watch,2020)**

Women's rights as a human right

With the adoption of the Universal Declaration of Human Rights by the United Nations General Assembly on 10 December 1948, gender equality was officially codified in international human rights legislation. The complete spectrum of rights and safeguards enshrined in this Declaration will not be withheld from any individual on account of their race, colour, gender, creed, national origin, or any other legally protected trait. As that landmark document acknowledged, "All human beings are born free and equal in dignity and rights." **(World Health Organization,2021).**

In 1975, in reaction to the growing global feminist movement of the 1970s, the General Assembly designated it as the International Women's Year and hosted the first World Conference on Women, which took place in Mexico City. The Conference's recommendations were to designate the years 1976–1985 as the United Nations Decade for Women and to create a Voluntary Fund for Decade.

Often referred to as an International Bill of Rights for Women, the 1979 Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women (CEDAW) was officially adopted by the General Assembly. A definition of gender discrimination and a framework for international cooperation to abolish the practice are two of the thirty sections of the Convention. The Convention seeks to address cultural and customary concerns through its unprecedented affirmation of women's right to self-determination in gender and family matters.

Fifteen years after the first summit in Mexico City, a second worldwide conference on women was held in Copenhagen in 1980. Afterwards, the Programme of Action advocated for stronger national laws to guarantee women's control and ownership of property and improved safeguards for women's rights regarding inheritance, child custody, and loss of nationality. **(World Economic Forum,2020)**

Women and the Sustainable Development Goals

U.N. development initiatives across the globe are now focused on the seventeen recently-adopted Sustainable Development Goals (SDGs). The SDGs would be

meaningless without women, and several of the objectives recognise the importance of women's empowerment and equality both as a goal in and of itself.

One of the many names for this goal, "Achieve gender equality and empower all women and girls" describes its stated objective. Major changes to rules and regulations are necessary to ensure women's rights over the world. Gender equality was formally acknowledged in the constitutions of 143 countries as of 2014, with 52 more states still pending.

Massive gender disparities persist in both the political and economic arenas. The global wage gap between men and women remains at 20%, despite significant progress in this area over the years. While the ratio of female national parliamentarians did rise gradually from 11.3% in 1995 to 26.8% in 2024, it remained low. **(World Bank,2019)**

As far as the UN system is concerned, ending violence against women must be a primary objective. "The General Assembly's 1993 Declaration on the Elimination of Violence against Women provided a precise and all-encompassing definition of violence against women as well as a clear expression of the rights that must be upheld in order to eradicate all forms of this terrible crime. "A commitment by States in respect of their responsibilities, and a commitment by the international community at large to the elimination of violence against women" was what the organisation represented.

Even nations with stellar records in other areas are not safe from the epidemic of violence against women. Sexual violence, whether perpetrated by an intimate partner or an outsider, has affected one-third of the world's female population.The Spotlight Initiative is an international, multi-year campaign to eradicate gender-based violence. During September 2017, the European Union and the United Nations jointly launched it.The globe pauses to honour the women and girls who have been victims of violence every year on November 25. **(United Nations Women,2020)**

International Women's Day and other observances

On March 8, people around the world celebrate International Women's Day. In the early 20th century, labour organisations in Europe and North America laid the groundwork for what would later become known as International Women's Day. Many nations celebrate this day to honour women worldwide for all they have accomplished, regardless of their country, ethnicity, language, culture, economic status, or political affiliation.

In addition to International Women's Day and the International Day for the Elimination of Violence against Women, the United Nations designates numerous international days that centre around different aspects of the struggle for gender equality and women's empowerment. Every year, the world marks International Day of the Girl Child on October 11, International Day of Widows on June 23, International Day of Girls in Science on February 11, International Day of Remembrance for Victims of Forced Disappearances on August 30, International Day of Rural Women on October 15, and International Widows' Day on June 23. In this poem, three women at different stages of life—adolescence, early adulthood, and old age—share their experiences on these important occasions.

Gender-inclusive language

One good way to advance gender equality and fight gender bias is to use inclusive language that encompasses both sexes. That's because how we talk and write affects what society considers "normal" for men and women—and even for "in-betweens" and "outsiders." Paying equal attention to the potential age range we're reaching, we need a language that doesn't promote gender stereotypes and doesn't allow just one sex to be mentioned all the time as the doer of anything good, bad, or nonviolent.These guidelines are designed to help UN officials use gender-inclusive language effectively in any situation by providing them with tools and assistance. Everyone who uses written or spoken language, whether professionally or informally, can benefit from the resources they offer, not just UN employees.

Evaluating the Progress and Effectiveness of Gender Equality Policies Worldwide

Achieving gender equality is a worldwide aspiration that can only be realized through the dedicated and persistent work of global institutions, national governments, and local communities. When it comes to the kinds of policies that might bring about the desired change, many governments have examined the plans that they, and others, have made and then have looked to see the effects of those policies on the male-female power balance, particularly in places central to that balance, like households, schools, and the workplace. **(United Nations Population Fund,2011)**

Global Frameworks and International Treaties

On the world stage, international standards like those set by the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women (CEDAW) and the UN's Sustainable Development Goals (SDGs) provide a platform for national policies to work from. The treaties require countries that are a party to them to create the conditions necessary for gender equality.

Education Sector

Education policy originally concentrated on extending access and minimizing gender discrepancies across primary and secondary levels.

Table 1: Impact of Educational Policies on Gender Ratios

Region	Policy	Pre-Policy Gender Ratio (M)	Post-Policy Gender Ratio (M)	Change Observed
South Asia	Free secondary education for girls	60:40	50:50	+10% females
Sub-Saharan Africa	School feeding programs	65:35	55:45	+10% females

Example*:* India launched the "Beti Bachao, Beti Padhao" campaign to tackle the issue of the dwindling child sex ratio and to advance the cause of girls' education. The campaign took off in some states and has led to a remarkable upturn in enrollment figures for girl students. Various parts of India have seen contrasting trends in the sex ratio at birth. While southern states have done well in maintaining a high sex ratio, some northern and western states, particularly Haryana, Punjab, and Rajasthan, have seen things go from bad to worse. (United Nations High Commissioner for Refugees,2020).

Employment Sector

Gender equality policies that drive employment include equal pay legislation, regulations governing maternity and paternity leave, and even quotas for how many women should be in high-ranking leadership positions in the private and public sectors.

Table 2: Employment Sector Gender Equality Policy Impact

Region	Policy	Pre-Policy Employment Gender Ratio (M)	Post-Policy Employment Gender Ratio (M)	Change Observed
Europe	Gender quotas in corporations	70:30	60:40	+10% females
North America	Equal pay legislation	75:25	65:35	+10% females

Example: The mandatory 40% quota of women on corporate boards in Norway has resulted in a significant increase in the number of women leaders in the country. And it's not just Norway. Other European nations have also enacted variations of this policy, with many of them achieving similar results. But why was this policy instituted in the first place, and what has been its effect. (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization,2019)

Healthcare Sector

Health policies that have a "gender lens" often concentrate on women's health, and, in particular, on mothers, their reproductive rights, and their battles for access to health care, all with the goal of diminishing the health inequities between women and men.

Example: The advent of universal health coverage in Rwanda has led to significant improvements in healthcare access for women, especially in rural parts of the country. The policy has substantially lowered the number of mothers dying from pregnancy-related causes and has had a strong, positive effect on the health of children.

Political Representation

What steps have been taken to improve the political representation of women? They have included legally mandated quotas and empowerment drives designed to get women more involved in the political process. **(United Nations Development Programme,2020)**

Example: After passing new laws, the women of Rwanda led the world with more than a 60 percent share of seats parliament in their home country. One wonders how a small country has arrived at such a desirable outcome. One answer lies in the aftermath of the 1994 genocide, when Rwandan men arguably represented the most reviled group on the planet. With the political will hardly in question, the lead-up to the change involved several legal and constitutional milestones that would have implications nationally and around the world.

Challenges and Limitations

Several challenges are still around, even with these kinds of success. You can't undermine the gap in cultural roles and economic factors. These obstacles can make even the best policy intentions fall through the cracks. They're especially hard to overcome in a systemic way in parts of the world where cultural change is deeply ingrained and where gender inequalities run more or less unabated. And, time and again, in many of those places, laws that protect women's rights have yet to be put into full practic**e.(United Nations,2015)**

Strategies for Improvement

There are several tactics for reinforcing the power of policies that promote gender equality.

1. Strengthening Legal Frameworks: Making certain that legislation concerning gender equality is wide-ranging and firmly implemented.

2. Education and Awareness: Trying to get as many people as possible to change their point of view and ordinary way that they think, and to inform as many people as possible of the UNESCO's existence and what they stand for.

3. Data and Monitoring: Enhancing the assembling and interpretation of information from data that is segregated by gender in order to chart the pace of progress and understand what it means for policy. **(United Nations,1995)**

Identifying and Analyzing Persistent Barriers to Gender Equality

In the push to realize worldwide gender equality, serious impediments remain. Progress is undeniably being made. And yet, it is equally true that many societies—perhaps most—are marked by obdurate gender inequalities.

Covering a multitude of types, locations, and social environments, these discriminatory practices seem to be the very commitments of the societies they plague. Is there some common path to understanding this that would allow a productive discussion even within the societies where these practices are taking place, without simply canceling them out as utterly backward? I think there is, and I propose to lay it out here.

Cultural Norms and Stereotypes

- Gender equality is hindered by long-standing beliefs about what kinds of roles and behaviors are appropriate for men and women. Young boys and girls still receive powerful messages about the kinds of things they can and cannot do. This part of their upbringing occurs largely at home. From an early age, children learn what is expected, and this forms a significant part of their identities as boys and girls**.(United Nations,1979)**

Example: Many societies hold an unfortunate stereotype that caregiving and household duties are primarily female domain. This widespread and often unspoken understanding holds sway across continents and has no agreement of its legitimacy or illegitimacy among cultures. All the same, this (unfair and outdated) understanding puts us on the road to peril. After all, not allowing half of an educated population to contribute to the economy and public life is a (monumental) loss, especially at a time when technological advances keep threatening our old systems. India and Japan are prominent examples of societies where the road to affluence is untaken (partly or mostly) by women.

Economic Barriers

- Ensuring that the sexes are economically on equal footing is a task that society has yet to achieve, and it is made even more difficult by the economic disparities that some women face. These disparities come in several forms: unfair access to job opportunities, pay scales that are weighted against women, and, all too often, a lack of any real control over money. **(United Nations,1948)**
- **Table 1: Global Gender Pay Gap**

Country	Male Average Salary (USD)	Female Average Salary (USD)	Pay Gap Percentage
United States	55,000	41,000	25.45%
Germany	48,000	39,000	18.75%
Brazil	20,000	15,000	25.00%

Example: On an international scale, the issue of the gender pay gap is still very much apparent. Here in the United States, for example, the average woman makes just around 82 cents for every dollar that the average man makes. This inequality becomes even more pronounced when applied to women of different ethnic backgrounds and when comparing what women make in, say, the tech sector to the average male salary there. **(Organisation for Economic Co-operation and Development. ,2020).**

- **Educational Disparities**

Although global enrollment rates for primary schooling are evening out, major differences continue to exist among gender groups who attend secondary and then tertiary education, with the disparities mirroring those seen in certain countries. This is especially true in the fields of science, technology, engineering, and math (STEM), which are widely seen as the most important to national development in these knowledge-based economies.

Example: Sub-Saharan Africa is affected by various social and economic hindrances. These chiefly prevent young girls from getting any reasonable level of education beyond the primary level. In our present dispensation, there exist good reasons for placing an emphasis on the promotion of such interventions as seen through the work of the Forum for African Women Educationalists, FAWE for short. Economically, sub-Saharan Africa wallows in poverty for a vast majority, thereby serving as a formidable hindrance to the attainment of education for a good part of its populace**. (Inter-Parliamentary Union,2021)**

Political and Institutional Barriers

- The fact that there aren't many women in political or decision-making roles is a clear sign of gender inequality. There are a lot of reasons for this. For starters, many political systems were built by men to favor male power. Discriminatory laws and practices keep a lot of women from running for office or holding positions of power when they do. Political cultures that are resistant to the very idea of women in power keep a lot of women from getting too close to political offices. And being a woman in politics can be a socially isolating proposition sometimes that requires a thick skin to weather the very different kinds of storms that come a political leader's way**.(International Monetary Fund,2020)**

Example: Compared to many other countries, where the percentage of women in national legislatures is below 25%, Rwanda's 61% appears stunning. The figure has caught the world's attention, and international leaders and policy institutes have examined and praised what they view as Rwanda's successful gender equality initiatives.

Legal and Structural Limitations

- Women in several regions experience limited rights due to unjust laws and insufficient legal protection. Even where forward-looking laws have been enacted, their enforcement is too often woefully inadequate.

Example: The recent reforms in Saudi Arabia have granted women the right to drive and travel without needing the

permission of a male guardian—a massive step toward gender equality. Still, the nation's system of male guardianship continues to curtail women's rights in an even broader range of activities, with a profound impact on their lives and work.

Violence Against Women

- The issue of gender-based violence is a critical one that is pervasive and very common. It forms a significant barrier to gender equality in today's society. We often hear the phrase "violence against women," and that is, in fact, its most profound form. Yet it takes many other forms that seriously harm women's health and well-being and trample on their right to make decisions about their own lives **(International Labour Organization,2018)**

Example: Statistics from around the world suggest that approximately 1 out of every 3 women will be subject to physical or sexual violence during her lifetime; mostly from her intimate partner. No country in the world is free from this problem, neither poor nor rich. To enhance the scale of response to the paucity of resources and remedies, the World Bank's 2019 World Development Report underlines the need for a global alliance that brings together countries regardless of their political or economic clout.

Technology and Digital Divide

The gender inequality problem also gets worse because of the digital divide, especially in developing regions that have far fewer women with access to or any kind of power over digital technologies.**(International Center for Research on Women. ,2018)**

Example : Throughout Africa, a clear gender divide in mobile ownership and internet use severely restricts women's access to education and economic opportunities. You'd be hard-pressed to find women in many parts of the continent who own a mobile phone or use the internet. The telecommunications revolution of the past two decades in Africa has seen that space dominated by men—particularly in the urban areas. That inequity has surely left marks on a generation of African women. However, a counter-revolution may now be underway.

Strategies for Overcoming Barriers

To face these persistent problems, one must adopt a strategy that cuts many ways.

1. **Cultural Transformation:** Transformative roles can be played by education and media in altering gender norms and stereotypes.
2. **Policy Reforms:** It is essential that governments clearly and forcefully establish a regulatory environment in which gender equality is implemented and women's rights are protected.
3. **Economic Empowerment:** It is of utmost importance that we have programs in place that improve the economic standing for women and that also give them control over the resources that they need in order to be successful in a male-dominated world.
4. **Political Inclusion:** Significant changes to the political landscape occur when quotas are implemented and women receive nurturing conditions in which to assume leadership positions.
5. **Combating Violence:** To counter gender-based violence effectively, we must employ an approach that includes legal, societal, and health interventions. Comprehensive strategies are necessary.

Strategies for Enhancing Gender Equality and Integrating Gender Perspectives into Human Rights Practices

In order for gender equality to be truly realized, all levels of human rights practices must be cognizant of the gender issue and work inclusively in their everyday operations.For societies and nations to achieve the goal of true gender equality, the experiences and challenges of each gender should be understood by all and integrated into the contexts of policy-making and legal frameworks. The four strategies behind this initiative lay the groundwork for action to achieve these objectives across an equally broad range of sectors.

Policy and Legal Reform

An important tactic is updating and enforcing legal frameworks to eliminate discrimination and ensure that gender equality prevails. This requires a close look at current laws, both from a legal and a human rights perspective, to identify and address gender-based biases, as well as any differences in the ways men and women are protected by the law. Of course, changing laws isn't enough; they must also be actively maintained and upheld in order to work effectively. And for laws to not only exist but also to be actively and effectively upheld, there must be an adequate and accessible legal system in place. **(Human Rights Watch,2020)**

Representation and Participation

Another important tactic is to boost the number of women involved in politics, economics, and society. We can use favorable practices in offices and corporations to make sure that a set percentage of the people who hold public or private positions are women. "Dedicating the funding" and "making sure they have access to expertise" are two major strategies that GBA+ could use to support women as they pursue their political careers. Although these practices can encourage women to hold political office and occupy

positions in corporate America, a critical concern remains, which is whether women truly have equitable conditions in which to work once they get there.

Education and Awareness Raising

The education system and public campaigns can effectively fight against traditional ideas about gender and can make a push for gender equality. This fight happens for the most part in schools. When the ideas that challenge gender norms are integrated into the school curriculum, then, by definition, they are reaching the large, young, impressionable, captive audience—that is, the students. Meanwhile, public relations campaigns working in tandem with the education system ought not to be overlooked because they could help reach a broader audience. **(European Institute for Gender Equality,2020)**

Economic Empowerment

It is very important to make sure that people of all genders can achieve economic empowerment. There are a number of policies that we can put into place that will go a long way toward accomplishing this. Probably the most substantial and effective is to put policies in place that directly aim to reverse the discrimination women face and very often take for granted in the workplace, such as policies that would allow for paid maternity and paternity leave.

Healthcare Access

It is imperative for gender equality to enhance healthcare accessibility, reproductive healthcare especially. Opportunities must be created to serve the disadvantaged, allowing them to benefit from something that can change the course of their lives. Policymakers and practitioners must take into account the immediate needs of all genders while considering the long-term impact of the choices that steer health systems. **(Amnesty International,2019).**

Conclusion

The paper explores the complex links between human rights and gender equality. It considers the advances made through international understandings, national laws, and local policies. These cover all major aspects of life: education, work and social security, health, and political representation. Nevertheless, with all this progress, the paper argues that we are far from achieving gender equality. Indeed, it suggests that apparent social and political trappings of equality may cover substantial ongoing gender inequalities.

Challenges abound, and they come from deep cultural norms and stereotypes that keep women's lives confined in some contexts and artificial or unfair in many more. Leading among these is the stark economic disparity between men and women that sees the latter far more likely to live in poverty than the former, even within the same countries. Redressing that global inequity would be the work of a generation or two at least, but I'm nothing if not an optimist.

We suggested concrete measures to improve gender equality. Our approach stressed the importance of reforming laws and policies, while also pointing out the need for women's voices to be heard and for women to take part in decision-making. We proposed fresh ideas for addressing old problems and improving the way we work, including methods for ensuring that human rights practices take into account the views and experiences of people from different gender backgrounds.

To sum up, it is absolutely necessary to have gender equality in order to grow sustainable and peaceful communities. It is not a side issue but a precondition for respectful living and the furthering of anything we may call "human rights." To accomplish these ends, the "gender equal way" requires the cooperation of all social sectors and the special role of policies (including the push for change in international treaties).

References

1. Amnesty International. (2019). *The State of the World's Human Rights 2019*. Retrieved from https://www.amnesty.org/en/documents/pol10/4870/2020/en/

2.European Institute for Gender Equality. (2020). *Gender Equality Index 2020: Key findings*. Retrieved from https://eige.europa.eu/publications/gender-equality-index-2020-key-findings

3.Human Rights Watch. (2020). *World Report 2020: Events of 2019*. Retrieved from https://www.hrw.org/world-report/2020

4.International Center for Research on Women. (2018). *Masculinity, Intimate Partner Violence and Son Preference in India*. Retrieved from https://www.icrw.org/publications/masculinity-intimate-partner-violence-and-son-preference-in-india/

5.International Labour Organization. (2018). *Global Wage Report 2018/19: What lies behind gender pay gaps*. Retrievedfrom https://www.ilo.org/global/publications/books/WCMS_650553/lang--en/index.htm

6. International Monetary Fund. (2020). *Women in the Workforce: The Role of Fiscal Policies*. Retrieved from https://www.imf.org/en/Publications/Staff-Discussion-Notes/Issues/2020/03/03/Women-in-the-Workforce-The-Role-of-Fiscal-Policies-49111

7.Inter-Parliamentary Union. (2021). *Women in*

Parliament: 2021. Retrieved from https://www.ipu.org/resources/publications/reports/2021-03/women-in-parliament-2021

8.Organisation for Economic Co-operation and Development. (2020). *The Pursuit of Gender Equality: An Uphill Battle*. Retrieved from https://www.oecd.org/publications/the-pursuit-of-gender-equality-9789264281318-en.htm

9.United Nations. (1948). *Universal Declaration of Human Rights*. Retrieved from https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights

10. United Nations. (1979). *Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women (CEDAW)*. Retrievedfrom https://www.un.org/womenwatch/daw/cedaw/

11. United Nations. (1995). *Beijing Declaration and Platform for Action*. Retrieved from https://www.un.org/womenwatch/daw/beijing/platform/

12.United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development*. Retrieved from https://sustainabledevelopment.un.org/post2015/transformingourworld

13.United Nations Development Programme. (2020). *Gender Equality Strategy 2020-2023*. Retrieved from https://www.undp.org/publications/gender-equality-strategy-2020-2023

14.United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. (2019). *Global Education Monitoring Report 2019: Gender report*. Retrieved from https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000371138

15.United Nations High Commissioner for Refugees. (2020). *Global Trends: Forced Displacement in 2019*. Retrieved from https://www.unhcr.org/globaltrends2019/

16.United Nations Population Fund. (2019). *State of World Population 2019: Unfinished Business*. Retrieved from https://www.unfpa.org/publications/state-world-population-2019

17.United Nations Women. (2020). *Turning Promises into Action: Gender Equality in the 2030 Agenda for Sustainable Development*. Retrieved from https://www.unwomen.org/en/digital-library/publications/2018/2/gender-equality-in-the-2030-agenda-for-sustainable-development-2018

18.World Bank. (2019). *Women, Business and the Law 2019: A Decade of Reform*. Retrieved from https://www.worldbank.org/en/news/press-release/2019/02/27/women-business-and-the-law-2019-a-decade-of-reform

19.World Economic Forum. (2020). *Global Gender Gap Report 2020*. Retrieved from https://www.weforum.org/reports/gender-gap-2020-report-100-years-pay-equality

20.World Health Organization. (2021). *Gender equality and health*. Retrieved from https://www.who.int/health-topics/gender-equality

Nisha Bathla
Assistant Professor of Law
Chaudhary Devi Lal
University, Sirsa (Haryana)

42

Legal Issues in the Counseling Profession:

Varishti, Dr. Renu Chaudhary

Abstract:

Counseling profession is noble and fulfilling but it has some legal complexities. It has to be operated within a framework of ethical standards and legal regulations. It should aim at protecting the well-being of clients and to eliminate professional misconduct. This article deals with the multifaceted legal issues that counselors face, including confidentiality, informed consent, duty to warn, boundaries and the impact of technology. This article aims to provide the knowledge and resources needed to navigate legal challenges effectively by holding the high standards of ethical conduct.

Keywords: counseling, legal issues, confidentiality, informed consent, duty to warn, boundaries, technology

Introduction:

A counselor can extend his or her services in almost every sphere of life. Today's world is full of stress and strain. A school going child, adolescents, adults, persons suffering from substance abuse, special children, elderly people and their families all need a professional councilors support. The area may be extended to the time of crises like mental health issues during disasters, pandemic. When the councilor's field of work is so vast and sensitive the councilor is bound to be shouldered with legal boundaries, rules and regulations which are a must for their profession.

Counseling follows the rules of humanity all over the world and is not restricted by the boundaries of caste, religion, language, country or any other dimension. Since human emotions are same all men and women across the planet the handling also has to be based on the human concept of love, faith, support, sharing, caring and affection.

The counseling profession plays a crucial role to support persons facing various issues, ranging from mental health challenges to relationship conflicts. Nevertheless, the practice of counseling cannot be without legal implications. Counselors must follow a complex set of laws, regulations, and ethical guidelines to make sure the safety and well-being of their clients to save themselves of legal complications.

Right from the childhood, adolescence, marital relations, substance abuse cases, mental health patients all need specialist supportive hand. School environment with friends and classmates may have negative influence on him/her. It may keep him/her occupied in known academic activities for more than the desired amount of time. It may lead to lack of motivation to study and perform. A few children have been observed to be without any ambition or goal to achieve. Faulty learning strategies may lead to unsatisfactory output in exam. It is a well known fact that excessive anxiety disrupts performance which may be in the form of examination phobia, inability to write or recall in the examination.

Another emerging issue is the conduct problem with the science of aggression, bullying, abusing, being involved in fights, stealing, lying or violation of rules. It very often lead to substance abuse like tobacco, pan masala, illicit drugs, inhalants, ink remover, alcohol. Use of all these can cause cognitive impairment, poor school performance and school withdrawal .Apart from that stressful life events like loss of parents, siblings , spouse, chronic illness of a family member, financial problems and separation of parents can collapse normal functioning of an adolescent.

Physical and psychological abuse with elderly population has become a recurrent problem in India also. Industrialization and urbanization has lead to increase materialism in the society. Dementia, depression, suicidal behavior and other psychiatric disorders has entered through and through in the life of people. When area of councilor and family therapist is so vast and sensitive it cant go without legal protection, support, limitations and within set framework of rules and regulations. There are chances that counselor being a human may be victim or can make others victim while performing his or her duty.

In this article, we will examine several key legal issues that counselors face in their practice of counseling therapy. These issues are confidentiality, informed consent, duty to warn, professional boundaries, and the impact of technology on counseling practice By understanding all of these topics in depth and providing real-life events, we aim to offer counselors a comprehensive understanding of the legal landscape and strategies for reducing future possible risks.

Confidentiality:

Confidentiality is basic foundation of the counseling relationship, built on trust and the assurance that clients can freely share sensitive information without fear of it being shared without their consent. Nevertheless, confidentiality can never be absolute and has to be subject to certain exceptions demanded by law or ethical guidelines.

In the United States, counselors are bound by federal and state laws such as the Health Insurance Portability and Accountability Act (HIPAA) and state statutes governing

mental health practice. These laws typically require counselors to maintain confidentiality except in specific circumstances, such as when there is a risk of harm to the client or others.

Exception to the rule of confidentiality: A counselor working with a client struggling with suicidal ideation learns that the client has a plan to take his or her own life. In this situation, the counselor has a duty to breach confidentiality to ensure the client's safety by notifying appropriate authorities or taking other necessary actions.

Informed Consent: Informed consent is another essential aspect of the counseling process, ensuring that clients are fully aware of the nature of the counseling relationship, the counselor's qualifications, the goals of therapy, the potential risks and benefits, and their rights as clients. Taking informed consent is not only an ethical obligation but also a legal requirement in many jurisdictions.

Counselors must ensure that clients have the capacity to provide informed consent and that consent is voluntary and free from any external or internal pressure. This clearly provides understandable information about the counseling process and allows clients to ask questions and take informed decisions about their treatment.

If a counselor begins therapy with a minor client without taking parental consent. Even if the client is willing to participate in counseling, the counselor has violated legal and ethical standards by not taking informed consent from the client's parents or legal guardians.

Duty to Warn: The duty to warn is a legal and ethical obligation that requires counselors to take action to protect individuals who may be at risk of harm from their clients.

This duty arises in situations where counselors become aware of a credible

threat of harm to an identifiable person and have a reasonable belief that the

client poses a danger.

In the landmark case Tarasoff v. Regents of the University of California,

the California Supreme Court ruled that mental health professionals have a

duty to take reasonable steps to protect potential victims when they

determine, or should have determined, that their clients pose a serious risk of

violence to others.

Example: A counselor working with a client who expresses homicidal

inclination towards a specific individual must take suitable action to warn the

potential victim and law enforcement authorities to prevent harm and fulfill their duty to warn.

Professional Boundaries: Maintaining professional boundaries is essential for ensuring the integrity and effectiveness of the counseling relationship. Counselors must establish clear boundaries with clients to prevent conflicts of interest, dual relationships, and ethical breaches that could compromise the therapeutic process.

Boundaries may include maintaining appropriate physical distance, refraining from engaging in personal or romantic relationships with clients, and avoiding activities or interactions that could blur the lines between professional and personal roles.

Case Study: A counselor attends a social event where they encounter a former client. Despite the client's attempts to engage in conversation about their previous counseling sessions, the counselor respectfully declines to discuss confidential information or engage in any therapeutic interactions, maintaining professional boundaries and confidentiality.

Multiculturalism: It is earnestly required that counselor should be above the matters associated with the subject matters of gender discrimination, the tradition of origin. Increased interest to multiculturalism in counseling displays the developing public popularity that the society is turning into extra diversity.

Multiculturalism is considered as the psychology and counselor's "fourth force".Impact of Technology: Advances in technology have made a mark in the field of counseling, offering new opportunities for providing services, connecting with clients, and accessing information. The use of technology in counseling also presents

unique legal and ethical issues related to privacy, confidentiality, security, and

professional conduct.

Hence it becomes important for the counselor to be aware of the potential

risks associated with using electronic media platforms, online therapy

platforms, social media, and other digital tools in their practice. They must

take steps to protect client information, ensure secure communication

channels, and to adhere to relevant laws and regulations in the use of

technology in counseling.

Case Study: In recent times since covid 19 online counseling has become

very common because of its comfort and convenience. The counselor conducts therapy sessions with clients with video conferencing. The software is a boon for counselors and clients as it accommodates their busy schedules and geographic location. For protecting client's confidentiality and privacy, the counselors need to use encrypted communication platforms. Informed consent for online therapy must be obtained before starting the sessions. It is the duty of the counselor to implement secure data storage practices.

Therapeutic Relationship: therapy uses an interpersonal relationship to help the clients self understanding and make changes in their life. Therapeutic relationship can be a healing touch for the client. This idea of healing dating cannot be separated from the ethics of counseling practices. It finds its base on trust, openness, honesty, equity, and social justice. A dynamic healing dating is effective scientific alternate that can rarely be overstated. The centrality of a powerful bond of the counselor and customer performs a very significant role in the recovery and resolving the mental and emotional issues of the client.

Professional Identity: The concept of expert identification is generally understood as a kind of moral acculturation. In the field of counseling experts donot deny the reality that understanding felony and compliance make a contribution to the improvement in their expert identification. The leaders of counseling aren't restrained to impart fine psychotherapy to customers and facilitate a clean and self-enjoyable career. Ethical and felony components of counseling are associated with counselors' expert identities. The reason is that each moral and felony compliance is on the coronary heart of any top
counseling practice. Professional identification approach ,moral identification
and felony identification, are not viable without following the standards of
rules and regulations and requirements of ethics.

Unbiased Remedy: Counselors must show respect and concern for the
well being of the client. They must remain impartial and non judgmental.
When a client is made to feel comfortable, confident and safe he or she
becomes supportive .Mental fitness professionals must keep in their mind and
action that all and sundry with negative intellectual fitness has the right to stay
with dignity without any discrimination on the premise of gender, sexual orientation, caste, color, creed, tradition, social or socioeconomic status, political, religious, identification or status, and incapacity etc.

But therapists have bias and values like anyone else as they are humans and not robots. What therapists and counselors need to learn is to keep their stuff separate from the stuff of the client. This also indicates that the client needs to do best to identify the differences and to keep them out of work. All counselors may not be comfortable and may not be able to work with a person with serious crime record like a child molester, a rapist, a serial killer to name a few. It is difficult to know what it is like to walk in others shoes. Therapy comes forward with understanding of another person's inner world.

Protection of Rights: Each and every person with or without intellectual abilities or disabilities have the right to stay with dignity, and must be protected from cruel, inhuman or degrading remedy. In any social system or established order all should have the subsequent rights like to stay in secure and hygienic environment, to have good enough sanitary situations, to have affordable and safe centers for entertainment, recreation. In schools and spiritual centers human dignity is to be prioritized to inculcate a secular mindset of future citizens.

Conclusion:

A good counselor will be able to reach across the other persons inner self and deeply empathize with him or her and help to feel seen. The counseling profession is intrinsically interwoven with legal and ethical considerations. They shape the boundaries, responsibilities, and duties of counselors in their practice. By understanding and adhering to legal standards and ethical guidelines, counselors can hold the high standards of professionalism by promoting the well-being and safety of their clients. In this article, we have explored several key legal issues in the counseling profession, including confidentiality, informed consent, duty to warn, professional boundaries, therapeutic relationship, multiculturalism, professional identity, unbiased remedy, protection of rights and the impact of technology on counseling practice. Through real-world case studies and examples, we have illustrated the practical implications of these issues and provided guidance for counselors while navigating legal issues in their day to day working practices.

With continuous evolution in the field of counseling profession it becomes mandatory for the professionals to be adaptive to changing societal needs and echnological advancements. Counselors and therapists must remain vigilant while providing services with commitment .at the

same time they are to adhere to ethical practice and legal compliance. They must stay informed; seek supervision and consultation when needed. They should also give priority to the welfare of their clients. This is how the counselors can effectively navigate legal issues and fulfill their role as trusted professionals in the mental health field.

References:

American Counseling Association. (2014). ACA code of ethics. Retrieved from https://www.counseling.org/resources/aca-code-of-ethics. pdf

American Psychological Association. (2017). Ethical principles of psychologists and code of conduct. Retrieved from https://www.apa.org/ethics/code Corey, G., Corey, M. S., Corey, C., & Callanan, P. (2018). Issues and ethics in the helping professions. Cengage Learning.

Kaplan, D. M., & Gladding, S. T. (2011). Counseling in a multicultural society.

Sage Publications.

Knapp, S., Gottlieb, M. C., Handelsman, M. M., & VandeCreek, L. (2013).

Legal and ethical issues in counseling. Pearson Higher Ed.

Reamer, F. G. (2014). Social work values and ethics. Columbia University Press.

Tarasoff v. Regents of the University of California, 17 Cal.3d 425 (1976).

U.S. Department of Health & Human Services. (n.d.). Health Insurance Portability and Accountability Act (HIPAA) of 1996. Retrieved from https://www.hhs.gov/hipaa/index.html

https://sageuniversity.edu.in/blogs/legal-aspects-of-counseling Ignou MCFTE-002 Child and adolescent therapy

Varishti
Pursuing PhD
Gurugram University ,Gurugram
Dr. Renu Chaudhary
Faculty department of law,
Gurugram University ,Gurugram

43

Management of Education System in India

Abhishek Kumar

Abstract:

EDUCATION IN INDIA

The majority of education in India is administered and monitored by a state-controlled educational system that receives financial backing from the Indian government. These educational establishments are subject to the order of the public authority at all three of its tiers: central, state, and regional. The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009, along with several other provisions of the Indian Constitution, confers as a fundamental right on children ages 6 to 14 the opportunity to receive an education that is both free and mandatory. These children also have the right to receive an education in a language other than their mother's or father's. It is thought that the number of schools in India that receive money from the government is seven times more than the number of private schools in the country. In the realm of education in India, substantial organising efforts may be broken down into a few main categories. Up to the year 2018, every one of India's current states has reached legally acceptable decisions about training approaches and the manner in which they should be implemented.

One of the amendments to the Constitution that took effect in 2018 made education a "simultaneous issue." This was the 42nd time the document had been amended. After this time, the traditional responsibility for the funding and organisation of the educational system was split between the national government and the legislatures of the individual states. This indicates that there is a significant possibility for variations between the states with regard to the arrangements, plans, programmes, and initiatives for primary education. India is a large country that currently consists of 28 states and eight associate domains, so this suggests that there is a significant possibility for variations between the states. On occasion, public arrangement systems are set up in order to guide states through the process of formulating state-level programmes and strategies. This is done in an effort to facilitate state-level collaboration. The majority of elementary schools are managed by state legislatures and local government organisations, and the proportion of elementary schools that are managed by the government is increasing. State legislatures and local government organisations are also in charge of the majority of secondary schools. Concurrently, the number of private enterprises that are responsible for the administration of an expanding portion of land is growing. During the 2005-2006 academic year, the government was in charge of 83.13 percent of the schools in the country that provided primary education (Grades 1-8), while private management was responsible for 16.86 percent of the schools (barring kids in unnoticed schools, schools laid out under the Education Guarantee Scheme and in elective learning communities). Only 33% of the schools that are managed privately are deemed to be "helped," while the remaining 66% are managed privately and are therefore considered to be "independent." For pupils in grades 1 through 8, the proportion of students attending schools run by the government compared to those attending schools run by private organisations is 73 to 27. In any event, these ratios are drastically different between rural and urban regions, with rural areas having significantly greater ratios (80:20) than urban ones do (36:66). India's population has crossed 1.44 billion having surpassed mainland China to become the world's most populous country, according to UN estimates. In recent years, there has been a mushroom growth of educational institutions at the primary, secondary, and tertiary levels. In India, as per the latest standing of 2022, there are 11,96,265 primary schools and the number of secondary and higher secondary schools are 1,50,452 and 1,42,398 respectively. There are at the moment 1,113 Universities, 43,796 Colleges, and 149 Institutes of National Importance, with about 4.4 crore students in attendance, of which 43% of the Universities and 61.4% of the colleges are in rural areas. There are 23 IITs (Indian Institutes of Technology) in India, recognized as National Institutes of Importance by an Act of Parliament in 1961. In short, in addition to the 23 IITs, there are 33 IIITs, 31 National Institutes of Technology (NITs), 706 Medical Colleges, 7,609 Polytechnic Colleges, 1,856 Law Colleges, 420 Dental Colleges, 5487 Nursing Colleges, and 1405 Architecture and Planning Colleges in India. Since education is a concurrent subject, the responsibility of governance and regulation falls equally on the State and Central Governments, (except those directly falling the Central Government's purview)

According to the results of the Census that was carried out in 2011, more than 73% of the overall population has attained some level of education, with 81% of males and 65% of females having degrees. The Public Statistical Commission determined that the overall proficiency rate was 77.7% in 2017-2018, with men having a proficiency rate of 84.7% and females having a proficiency rate of 70.3%. This

information was gathered from 2017-2018. The results of this calculation take us back to 1981, when the relevant rates were 41%, 53%, and 29%. 18%, 27%, and 9% correspondingly represented each category in 1951's statistics. It is commonly regarded as a crucial element contributing to India's expanding economic success, and one of those factors is the country's enhanced educational system, which has a higher quality overall. It is possible to ascribe a considerable piece of the development to different government agencies, particularly that component of the improvement that refers to higher levels of education and the testing of reasoning. Specifically, this progress has been made possible by: Despite the fact that enrollment in higher education has increased consistently over the past ten years, reaching a Gross Enrollment Ratio (GER) of 26.3% in 2019, there is still a significant distance to travel in order to reach the levels of tertiary education enrollment seen in developed countries. In order to continue to make a sector profit from India's relatively young population, this obstacle is one that will need to be solved at some point.

It is possible that the fast expansion of private (independent) tutoring in India, particularly in urban areas, might be related to the fact that government-funded schools in India frequently lack necessary resources and are subject to the detrimental effects of high rates of teacher absenteeism. There are two separate categories of private schools, which are said to as perceived institutions and undetected institutions respectively. An "acknowledgment" bestowed by the government is equivalent to a formal benediction being bestowed onto the recipient. It is assumed that a private school will fulfill a number of standards in order to be awarded this blessing; nevertheless, only a small percentage of private schools that are given "recognition" truly complete all of the conditions that are required for acknowledgment. It is advised that schools and parents do not view official acknowledgment as a stamp of worth because of the expansion of a big number of grade schools that are not registered by the government. This is due to the fact that there are a lot of these schools.

In India, pupils between the ages of 6 and 14 make up 29% of the total student population in private schools. In addition to the public schools that are run by the government, this also includes private schools. The basic and secondary levels of education in India are both provided by the public school system, but India also has a sizable private educational sector. You can also get a postsecondary education in the private sector by attending one of the many specialised colleges. In 2008, the sector of private training in India brought in revenue of 450 million US dollars; however, it is anticipated that by the year 2020, it will have expanded into a market worth 40 billion US dollars.

According to the Annual Status of Education Report (ASER) 2012, 96.5 percent of children and adolescents between the ages of 6 and 14 who lived in predominantly provincial regions were enrolled in some kind of educational programme. In this, the fourth year evaluation, enrollment rates of higher than 96% have been found to exist. The enrolment rate for students in this age group in India stayed unchanged at 95% of the total available slots from the year 2007 through 2014. This span of time encompasses the years 2007 through 2014. As a direct result of this, the percentage of children in the United States between the ages of 6 and 14 who are not enrolled in school decreased to 2.8% for the academic year 2018 as compared to the previous year (ASER 2018).

There were 229 million students enrolled in various licensed metropolitan and provincial schools across India in the school years ranging from Class I to Class XII, according to yet another study that was published in 2013. This results in an increase of 2.3 million students over the total enrollment in 2002, as well as an increase of 19% in the number of young women enrolling in schools. Even though India is making slow but steady progress toward all-inclusive education on a quantitative level, concerns have been raised about the quality of its education, particularly with regard to the educational system that is managed by the government Even though India is making slow but steady progress toward all-inclusive education on a quantitative level. In India, over 95% of children attend elementary school; yet, only around 40% of teenagers continue their education beyond the basic level (Grades 9-12). Around the year 2000, the World Bank began making contributions totalling over two billion dollars to a variety of educational programmes that were being carried out in India. One of the variables that contribute to the level of quality that is unacceptably low is a recurring shortfall of around 25 percent of teaching staff. In an effort to differentiate and enhance these kinds of schools, the Indian territories have begun to offer examinations and a mechanism for evaluating the instructional quality of various courses.

In spite of the fact that there are private schools in India, the curriculum that can be taught at these schools, the organisational structure in which they can operate (any licenced instructional foundation must be operated by a non-profit), and the wide variety of different fields in which they are allowed to operate are extremely limited. The contrast between public schools and private schools might result in misunderstanding as a natural consequence of the duality. In any case, according to a report written by Geeta Gandhi

Kingdon titled: The discharging of government funded Schools and development of private schools in India, it is essential to evaluate the shifting patterns in the size of the private and public tutoring areas in India before developing a reasonable training strategy. This was stated in the report that was titled: The discharging of government funded Schools and development of private schools in India. The rise of private schools in India was discussed in the study, which was given the title "The discharge of government sponsored Schools." If these trends are neglected, there is a possibility that unfavorable rules and regulations will be imposed, which may have unfavorable impacts on the opportunities, both personal and professional, that are open to children.

As of January 2019, India was home to more than 900 universities in addition to 40,000 educational institutions that catered to elementary and secondary students. Members of India's socially marginalised Scheduled Castes, Scheduled Tribes, and Other Backward Classes are eligible to take up a sizeable number of the seats in the country's higher education system that are set aside specifically for them. In line with the policy of the government on the integration of underrepresented groups into society, certain seats have been set aside for them. It is conceivable for there to be a different proportion of reservations that are relevant to these restricted groups at the state level than there is in universities, schools, and other institutions that are similar to those that are linked with the federal government. This can happen. In 2014, the state of Maharashtra in India had the highest reservation rate of any state in India, with a percentage of 73%. This made it the state with the highest reservation rate overall.

SECONDARY EDUCATION

According to the Census of India that was carried out in the year 2001, there were a total of 88.5 million children living in India who had reached the age when they may take part in secondary school. It is usual practice to refer to the final two years of secondary school using the phrase "Higher Secondary," which is also sometimes referred to as "Senior Secondary" or simply as the "+2" stage. A person must first earn a passing endorsement for both of the components of secondary education in order to be eligible for higher education, such as college or specialised programmes. Each of these components is a significant stage in the educational process and must be passed in order to receive the pass endorsement. Because of this, the two distinct components of secondary education have their own respective focus sheets of instruction that are within the purview of the HRD service.

The UGC, NCERT, CBSE, and ICSE have all issued orders that indicate the minimum age that applicants must be in order to be eligible for board examinations. This minimum age may be found in the orders. In order to be eligible to take the Secondary board exams, candidates need to be at least 15 years old by the 30th of May of a specific academic year. In order to be eligible to take the Higher Secondary endorsement board tests, applicants need to be at least 17 years old by the same date. It goes on to say that if one is able to demonstrate that they have successfully completed their upper secondary education, then they are qualified to enroll in advanced education programmes that are administered by the UGC. [Citation needed] Organizations in the fields of engineering, medicine, and business are included in these programmes.

Secondary education in India is not focused on courses but rather on assessments; students sign up for classes and attend them largely to prepare for one of the tests that are only partially controlled. The senior daily schedule school is broken up into two sections: grades 9-10 and grades 11-12. Each section has its own set of teachers. There is a standardised cross country test that takes place at the conclusion of both grade 10 and grade 12. (ordinarily casually alluded to as "board tests"). The results of an examination done in grade 10 may be used for admission into grades 11 and 12 at a secondary school, pre-college programme, professional or specialised school, or any of these other sorts of institutions. The test may have been conducted during the student's junior year. A confirmation of secondary school graduation will be granted to the student if they are able to pass the board examination for the senior year of high school. This confirmation may be submitted to professional institutions or universities in the United States or anyplace else across the world as evidence of eligibility for admission. In addition to passing the student's final secondary school exam, the vast majority of legitimate educational institutions in India require students to finish school controlled affirmations examinations before they can be admitted to a school or college. These exams are given by the schools themselves. In many cases in India, pupils are not admitted into schools just on the basis of their academic achievement alone. Because of the limitations imposed by the construction of schools, the vast majority of educational institutions in India do not offer any freedom in terms of topic or booking (for e.g.: most understudies in India are not permitted to take Chemistry and History in grades 11-12 since they are important for various "streams"). Private competitors, also known as people who are not currently enrolled in a school, do not have the legal right to register for or take board exams. There are a few exceptions to this rule, such as the National Institute of Open Schooling (NIOS), but in general, private competitors do

not have this right.

SCHOOL TEACHING-LEARNING PROCESSES

The processes of teaching and learning are fundamental to the wide range of other activities that take place in educational institutions such as schools. It is of no service to educate unless one is also willing to put in the effort to learn. During the course of the inquiry that took place in the field, it was found out that each of the teachers was making use of the local knowledge while they were teaching their classes to their respective classes of pupils. It was believed that CISCE and Delhi Government Schools required the completion of particular prospectuses within a predetermined amount of time. On the other hand, CBSE and IB schools lay a focus on the utilisation of practical and creative techniques of instructing their students. In CBSE and Delhi Government Schools, the local community demonstrated an interest in the school's activities at a level more usual for such institutions. It was discovered that schools that adhere to the CBSE, ICSE, and IB curriculum all have parent-teacher meetings in a way that is consistent with the norm. In International Baccalaureate (IB) schools, one of the numerous offices that was accessible to students was web-based education, the use of information and communication technology (ICT), and multimedia platforms. Schools that followed the CBSE or ICSE curriculum also made some of these tools available to their students, but to a lesser extent. The International Baccalaureate (IB) schools stood out as being particularly inventive in compared to schools of other sorts. In the schools run by the Delhi government, the application of information and communication technology was severely weak. Every single one of the classrooms had readily available demonstrating aids such as maps, diagrams, the globe, measuring poles, and other mathematical and logical instruments. On the other hand, in compared to ICSE and Delhi Government Schools, International Baccalaureate (IB) and Central Board of Secondary Education (CBSE) schools have more stringent requirements for both the quantity and quality of the accessible guides. Students were seen to have a high level of enthusiasm for studying in groups, and the Group Discussion Method was shown to be extremely successful at schools that followed the ICSE, CBSE, and IB curriculum. On the other hand, although students in Delhi Government Schools had the impression that they were participating in group learning, the Group Discussion Method was not utilised in the teaching and learning process very frequently. This is despite the fact that students in these schools had the impression that they were engaged in group learning.

LEARNERS' PERFORMANCE MONITORING ACTIVITIES:

It is essential for students' day-to-day activities on school grounds to be observed and evaluated so that effective teaching and learning can take place in the classroom, as well as for the effective management and administration of the school. Observing and evaluating students' activities outside of the classroom is also essential for the effective management and administration of the school. In schools that followed the CBSE, ICSE, or IB curriculum, there was a predetermined structure for the presentations that students gave. As a direct consequence of this structure, teachers in these schools spent a considerable amount of time evaluating how their students performed. The professors do go through the homework that has been assigned, and they offer criticism and direction to the students who are lagging behind the rest of the class. Despite the fact that several attempts are made at Delhi government schools to create a grading system that is both as efficient and as effective as is humanly feasible, these schools continue to fall behind the other three categories of educational facilities in Delhi.

PROSPECTIVE AND PERSPECTIVE OF THE WORK

It is important to study the leadership practices, management styles, and systems that are employed in educational institutions in order to achieve academic excellence for a number of reasons. One of the most important reasons is that studying these things may help improve academic performance. There are a variety of factors that contribute to the significance of the investigation of these topics. To put it another way, on the basis that it will make it easier for many organisations that have been active in our state for a very long time to assume control of the situation, why should we allow this to happen? In quest of higher quality educational possibilities, a significant number of college students from neighbouring states have relocated to our state. This will help us work more fairly and squarely of the nature of education, as well as functional effectiveness as far as administration of such organisations. Additionally, it will help improve the job fulfillment of representatives of these foundations, which will help us work more fairly and squarely of the nature of education. It will lead to an increase in usefulness and make it feasible for academic institutions to reach better levels of outcome. [Cause and effect] In addition to this, it will stimulate the acknowledgment of best practices, which will ensure an increase in the level of job happiness experienced by the workforce. This will ensure an increase in the level of job satisfaction experienced by the personnel.

The leadership of an association is the one factor

that has the most impact on the predetermined path of action that will be taken by that association. First, a good leader will steer their team in the direction of those objectives, then they will encourage their team to work toward those goals, and finally, the excellent leader will give their team the authority to actually accomplish those goals. Effective leadership is essential to overcoming the issues that are linked with the progression of individuals, communities, regions, and international networks in the current global environment, which is undergoing fast shifts at an unprecedented rate. Because the pioneer is the one who drives his devotees, the supporters are the ones who are directly influenced by the activities of the pioneer. Since the pioneer is the one who drives his devotees, the supporters are the ones who are directly influenced by the actions of the pioneer.

NATIONAL EDUCATION POLICY-2020

NEP 2020 brings in reforms in the Indian higher education system overhauling the long-standing and established system which is long overdue! It would lead to standardising of the entire HEI operations across the whole of India while simultaneously focusing on improving the quality of education and formatting an effective regulatory procedure for the operation of the HEIs, which were hitherto fragmented. This also takes into the fact that there has been widespread commercialisation in the field of higher education in the country. This would also to a large extent curb the rampant profiteering of educational institutions by the promoters/sponsors of such institutions. NEP 2020 also intends to allow entry of foreign universities to collaborate with Indian partners, with facilities to give such universities special dispensation concerning regulatory and governance norms. The main aim is to promote India as a global destination for higher Education. The introduction of the NEP 2020 is a necessary and positive step in upgrading the entire gamut of higher education systems in the country. This could to a large extent usher in a quality system - long needed!

CONCLUDING REMARKS

Today in an age of competition, India has the demographic dividend in its favour. There is an urgent need to improve and develop our higher education systems. As per statistics, India ranks third after United States and China in the higher education enrolment status, and in the number of schools and Universities. However, there is an absolute and urgent need to improve the quality of higher education being offered in our several self-financing HEIs. Though we are a party to the Washington Accord, we are yet to reach those standards to meet foreign competition. NEP 2020 seems to be the right one to start with. Even then, we have to ensure that all our HEIs are managed properly to deliver. During the last few years, we are harping on outcome-based education being followed in all our HEIs; and we are moving away from the normal 'Bloom's Pedagogy' techniques to one where learning by Rote is replaced by a know-all approach. The management techniques and the systems being followed in the major cities of India need to be extended to the where the majority of the Indian population resides. We need to ramp up quality. There is widespread consensus that the demographic dividend, and the changes in India, would prove well for the economic growth in India for the next two or three decades, as the age of the adult population in the age group 15 to 64 would be around 68% of the total Indian population far exceeding those of Japan, China and the US. This could throw open a large chunk of the educated crowd to fill up a large number of vacancies that could arise; subject to the fact that quality of education is delivered and the general employment is solved. Unless all the HEIs including the self-financing ones can generate innovations and create sustained regular monitoring systems, these institutions will fail to capture world attention.

References:

1. Tuckman, A. (1994). The Yellow Brick Road: Total Quality Management and Restructuring of Organizational Culture, Organization Studies, 15, Pp.727-751.
2. Gupta, A. (2000). Preface Beyond Privatization: Global Perspective, Macmillan.
3. Prasad, V., S. (2006). Quality Assurance Policy for Higher Education: Developing Country Perspective [Paper Presentation], First International Conference on Assessing Quality in Higher Education, University of Punjab, Lahore, Pakistan, December, 11-13,
4. Shrestha, Dil Prasad (2009). Managing Higher Education Institutions, Administration & Management Review, Vol. 21, No.2. August.
5. Channon, Derek, F., Cooper, C., L. and Adrián, A. (2015). "McKinsey 7S Model", Wiley Encyclopedia of Management, John Wiley & Sons, p. 1.
6. Sheikh, Younis, Ahmad (2017). Higher Education in India: Challenges and Opportunities, Journal of Education and Practice, Vol. 8, No.1, 2017, 39.
7. Jhingan, Seema, Manchanda, Dhruv and Mohanty, Tanmay (2020). Part II: NEP 2020. https://www.mondaq. com/article/972902
8. Gupta, Asha (2021). Focus on Quality in Higher Education in India, Indian Journal of Public Administration, Sage Journals, Vol. 67, Issue. 1.

Abhishek Kumar
Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi
Email- ak8067286@gmail.com

44

A STUDY OF FACTORS INFLUENCING CUSTOMER DELIGHT IN HOTEL INDUSTRY

Chetna

Abstract:

Customer delight is a new concept in the field of research which relate with customer satisfaction but distinct. Customer delight is positive, surprising and emotional reactions which result from receiving beyond expectations by the customers. Delight makes customer loyal and retain them with the concerns. Basically, this concept is not new, many of researchers working on it but there is much less literature available on it. Customer delight is now on the stage of reintroduction. Customer satisfaction leave a short term effects on the customers where customer delight have ever lasting effects on the person. Customer delight is not only beneficial to customers and related industry but also beneficial to the society because it creates value to products and customers. This study is exploratory in nature and data is collected from the literature survey like as journals, research papers, magazines, and various reports from institutions, dissertations, theses, books, articles, newspapers and websites. The paper highlights the conceptual background of customer delight and main objective of this study is to find out the factors causing customer delight. There are many factors causing the customer delight but broadly the factors those helps to building the customer delight are reliability, responsiveness, assurance, tangibles, empathy and accessibility.

Key words: Customers, Customer delight, factors.

INTRODUCTION

Many of researchers and academicians give their contribution in providing the literature on customer satisfaction but there is much less literature and work in the field of customer delight. To understand the concept of customer delight firstly one should want to understand the concept of customer satisfaction. According to Phillip Kotler, Customer satisfaction is related with the anticipated performance of products. If these anticipated performances of products are less than customer expectations, customer will be dissatisfy and if fulfill the expectations, the customer will be in the position of satisfaction.

Customer delight is positive, surprising and emotional reactions which result from receiving beyond expectations by the customers. If customers received more anticipated performances than their expectations the customer will feel delighted.

Customer satisfaction is helping in meeting expectations of customers where delight is providing more than expectations. Satisfaction has short term impact where delights have long term impact. Satisfy customers can switch but not delighted customers. Delight is emotional attachment and increased value for lifetime for customers. Delighted customers have tendency of 5 time repurchase than the satisfied one.

Table: 1

Themes in digital and social media marketing research - adapted from Kannan et al., (2017)

Themes	Citations
Environment	Abou-Elgheit, 2018; Alam et al., 2019; Algharabat et al., 2018; Arora et al., 2019; Bae and Zamrudi, 2018; Gaber et al. 2019; Gironda and Korgaonkar, 2018; Islam et al., 2018; Ismagilová et al., 2020c; Kang, 2018; Kim and Jang, 2019; Komodromos et al., 2018; Lin et al., 2018; Liu et al., 2018; Mandala, 2019; Mazzucchelli et al., 2018; Perez Curiel & Luque Ortiz, 2018; Seo & Park, 2018.
Marketing strategies	Ang et al., 2018; Chen & Lee, 2018; Hutchins and Rodriguez, 2018; Hwang et al., 2018; Kang & Park, 2018; Kusumasondjaja, 2018; Lee et al., 2018; Parsons & Lepkowska-White, 2018; Tafesse & Wien, 2018; Theo, 2019.
Company	Ballestar et al., 2019; Canovi & Pucciarelli, 2019; Gil-González et al., 2018; Iankova et al., 2019; Matikiti et al., 2018; Miklosik et al., 2019; Petit et al., 2019; Ritz et al., 2019; Roumieh et al., 2018; Tous et al., 2018; Vermeer et al., 2019.
Outcomes	Ahmed et al., 2019; Alansari et al., 2018; Aswani et al. (2018); Hanaysha, 2018; Ibrahim & Aljarah, 2018; Mishra, 2019; Morra et al., 2018; Shanahan et al., 2019; Smith, 2018; Stojanovic et al., 2018; Syrdal & Briggs, 2018; Tarnovskaya & Biedenbach, 2018; Veseli -Kurtishi, 2018; Wong et al., 2018

MEANING OF CUSTOMER DELIGHT

Customer delight may be define as a sense of joy and surprise which a customer feels when he received beyond his expectations and feel high degree of surprise which they do not even dream and imagine. Customer delight creates a wow factor for customers. This stay in the mind of customers for longer period of time in the comparison to ordinary experiences which helps in retaining the customers and build a sense of loyalty in the customers. Customer delight is a tool of competitive advantage which built a strong path for the growth and success of a company. This provide various competitive advantages like repeat purchase, strategic advantage more profit, long term growth, attract and retain customers, loyal customers, lesser cost of customer acquisition, less cost of advertising, less selling and promotional costs, brand image and goodwill.

Earlier when there is less number of sellers in the marketplace, market was product centric and sellers oriented but as the time passed over, market converted into customer

centric. Nowadays,

Customers are more knowledgeable, educated and aware about the various alternatives and substitutes for satisfying their wants and needs. Making them satisfy is not enough for the growth of business, there is need of customer delight. This makes customers loyal and built an emotional attachment towards the concern. Delighted customers do not want to switch the company and retain with them where satisfy customers want to take chance and can switch to the competitors. Delighted customers share their pleasant experiences with the others and help in attracting and creating new customers and built brand image.

Customer delight also have a limitation that delight expand the future expectations of customers because these customers are already in the stage of delight and they want something high degree, new, unique, improved and next best one. And it is difficult to understand the future expectations of customers beyond delight.

Andy Hanselman (2011) describes 6 ingredients and essential of customer delight. These are as follow:-

1. Produce and create wow factors.
2. It appears instinctive or unexpected.
3. It is personal and emotional perception.
4. It makes a customer fumble valued.
5. It is authentic or genuine.
6. It creates a talking point.

DEFINITION OF CUSTOMER DELIGHT

"**Customer Delight:** where the experience goes beyond satisfaction and involves a pleasure experience for the guest… an emotion composed of joy, exhilaration, thrill or exuberance".

(Torres and Kine, 2013, p. 643)

"Customer delight refers to positive emotion generated from the exceeding expectations by providing a high degree of surprise to the customers".

(Oliver, Rust and Varki, 1997)

PRINCIPALS OF CUSTOMER DELIGHT

Matt Ehrlichman, founder and CEO of Porch have given the 8 principals of customer delight. These principals are as follow:-

1. Always on time, give faster and best you can.
2. Always listen to your customers.
3. Always give them what they actually need not what they want.
4. Always give your customers something more they do not even expect.
5. Always connected with your customers and build business-customer relationship.
6. Always give your customer some place and do not frustrate them.
7. Always be helpful and keep transparency with them.
8. Always be flexible in your polices in order to treat them

BENEFITS OF CUSTOMER DELIGHT

Customer delight is more beneficial than satisfaction of customer and it has more importance for the marketing. Some of them importance's are as follow:-

- Customer delight plays an important role in to builds customer loyalty.
- This retains and attracts customers more than customer satisfaction.
- It helps in creating brand image.
- It helps in building strong relationship between customers and companies.
- It creates value to customers.
- It provides strategic and completive advantages to the concern.
- Delighted customers have tendency to 5 times more repurchase than satisfied customers.
- It provides more choices and greater transparency.
- It helps in building trust in customers.

LITERATURE REVIEW:-

Chopra (2017) in their study titled "A study of customer delight with special reference to HDFC bank in Delhi and NCR region" analyzed the factors causing the customer delight in HDFC banks. The data were collected from 100 respondents of various branches of HDFC banks from Delhi and NCR region. The statistical techniques they used to analyze the data were Chi-square, correlation and regression. They found various factors causing the customer delight like tangibles, reliability, responsiveness, assurance, empathy, accessibility, price of products and variety of products. But they found most influencing factors that built the customer delight were tangibles and assurance offered by the banks and least influencing factors were maintenance charges and prices of services.

Quintal and Reddy (2017) in their study titled "Customer delight: a conceptual framework" highlighted the conceptual background of customer delight, customer satisfaction and also differentiated them. They used various models to explain the concept of customer delight like Phillip Kotler's customer buying process model, Alain Guillemin's customer delight model, SERVQUAL model, Kano's model and Berry Berman model of customer delight,

satisfaction and dissatisfaction. They found that service quality, extraordinary and joyful experiences of customers are the main factors to achieve the objectives towards the delight of customers.

Almenda *et al* (2016) in their study titled "Customer delight: Perception of hotel spa consumers" developed an integrated model for examined the relationship between service quality, customer satisfaction, loyalty and customer delight. They surveyed 427 customers of spa hotels in Portugal for testing the developed model. The technique they used was partial least square (PLS). The results found that there was a positive impact of service quality, customer satisfaction, and loyalty on customer delight. There were direct link and relationship between the customer loyalty and customer delight.

Wibowo and Ekaputri (2015) in their study titled "Customer delight strategy in hotels" They analyzed the problem of low loyalty in the hospitality customers and relationship between customer delight and loyalty. For this they surveyed 100 customers of hospitality industry of Indonesia. The statistical method they used to analysis was partial least square (PLS).They study five factors of customer loyalty were justice, esteem, security, trust, variety. The results found that there is direct relationship between customer loyalty and customer delight. The most influencing factor of customer loyalty was trust and least influencing was justice.

Dhevika *et al.* (2014) in their study titled "A Study on customer delight of banks in Tiruchirappalli district" studied various factors influencing the customer delight in public and private banks. They found the most influencing factors of customer delight were giving a VIP feel, unusual ambiance, giving undue favors and by passing the system to help. Primary data was collected from 50 respondents of Tiruchirappalli district. ANOVA, Chi-square and T-test statistical tools were used for the purpose of data analysis.

Berman (2005) in his study titled "How to delight your customers" explained and differentiated customer delight and customer satisfaction. They used various models to explain the customer satisfaction, dissatisfaction and customer delight. These models were SERVQUAL model, KANO model and a model of dissatisfaction, outrage, satisfaction and delight. Berry Berman defines the customer delight as a joy and pleasant surprise. They also highlighted the consequences, implications, advantages and how to implement the program of customer delight in the concern.

Table:2

Invited contributions related to digital and social media marketing.

	Contribution title	Author(s)
1	Digital Marketing and the Humanities: From Individuals to Societies and Consumption to Creation	Anjala S. Krishen, University of Nevada Las Vegas, USA
2	Using social media to understand consumer behavior	Gina A. Tran, Florida Gulf Coast University, USA
3	Understanding and Cultivating Engaged Consumers in Digital Channels	Jamie Carlson, University of Newcastle, Australia
4	B2B Digital Marketing and Social Media Marketing	Jari Salo, University of Helsinki, Finland
5	The future direction of digital content marketing metrics and metrics to support the consumer experience and journey	Mohammad Rahman, Shippensburg University, USA
6	Electronic Word of Mouth (eWOM)	Raffaele Filieri, Audencia Business School, France
7	Reflections on Social Media Marketing Research: Current and Future Perspectives	Jenny Rowley, Manchester Metropolitan University, UK
8	Augmented Reality Marketing: Introducing a New Paradigm	Philipp A. Rauschnabel, Universität der Bundeswehr München, Germany
9	A responsible artificial intelligence (AI) perspective on social media marketing	Yichuan Wang, University of Sheffield, United Kingdom
10	How would artificial intelligence affect digital marketing? A view from practice	Vikram Kumar and Ramakrishnan Raman, Symbiosis Institute of Business Management, India
11	The Mobile Advertising Dyad Framework for a Future Research Agenda: Marketer and Consumer Perspectives	Varsha Jain, MICA, India
12	Research in mobile marketing	Heikki Karjaluoto, University of Jyväskylä, Finland

OBEJECTIVES:-

1. To understand the concept of customer delight.
2. To study the factors influencing customer delight.

RESEARCH METHODOLOGY:-

This study is exploratory in nature. Exploratory research is that which is used to investigate and examine problem that is not clearly and precisely defined. This research is used to understand the existing and current problems. The data for the study were collected from the literature survey such as journals, research papers, magazines and various reports from institutions, dissertations, theses, books, articles, newspapers and websites.

FACTORS INFLUENCING CUSTOMER DELIGHT

Factors influencing the customer delight are categorized are as follow:-

RELIABILITY

Reliability means delivering and fulfilling the promises on the right time and with accuracy. Reliability consist accomplishment of perceived services on the promised time and there should be no error in that. Reliability covers the following:-

- Maintain and arraigning the records error free.
- Accomplishment of promises on time.
- Complete the services accurately.

RESPONSIVENESS

Responsiveness means being helpful towards the customers, attentive and being quick in dealing the customers in terms of solving problems, complaints, requests and questions. Responsiveness consists always ready to assist the customers immediate and without delay. Responsiveness covers the following:-

- Quick and immediate services to the customers.
- Helpful towards customers.
- Sort out the customer's problems promptly.

ASSURANCE

Assurance means inspiring belief, faith and confidence in the customers and makes them feel secure and safe during the course of dealing risky contracts and transactions. Assurance built a sense of loyalty in customers towards the concern. Assurance covers the following:-

- Employees have perfect knowledge for answering the customers.
- Build courtesy, confidence, loyalty and trust in the customers.
- Behave well, shows respect, being polite and pleasant towards customers.

TANGIBLES

Tangibles means physical appearance of products, services, equipment, machines and facilities provide by the business houses that helps customers to evaluate and analyze the quality and also improve image of the company. Tangibles cover the following:-

- Physical bearing, appearance and conditions.
- Employees have professional and neat appearance
- Facilitate modern equipment and facilities.

EMPATHY

Empathy means treating and giving proper attention to each and every customer. Empathy helps in building strong relationship between customers and companies. Being empathic means understands the needs, wants and issues of every individual. This dimension follows the principle that every customer is unique and important. Empathy covers the following:-

- Giving proper attention to every individual.
- Understand customer issues and needs.
- Being caring for every individual.

ACCESSIBILITY

Accessibility means easy access towards products, services and facilities. This is also describing as the approachability and ease to contact the services and facilities of concern. Accessibility covers the following:-

- Access the facilities and services as and when needed.
- Ease to access credit or financial services.
- Easy and convenient access towards the required information.

OTHER FACTORS

- ❖ Credibility
- ❖ Security
- ❖ Competence
- ❖ Courtesy
- ❖ Communication
- ❖ Unusual Atmosphere
- ❖ Quick Feedback
- ❖ Variety of products and services
- ❖ Prices of product and services

Factors affecting the expansion and development of the hotel sector in the Asian regional market

The following factors are driving the growth and development of the hotel industry in the Asian regional market:

Economic Growth: Booming economies stimulate development of hotels by boosting disposable income and business activities, which in turn leads to tourism.

Government Policies and Regulations: Land use, zoning, construction permits, and tourism incentives are just a few examples of the regulations that have a significant impact on hotel development and operational practices.

Infrastructure Development: Modern amenities and easily accessible transportation networks increase the appeal of a destination, which in turn drives hotel investments and growth in tourism.

Cultural Attractions and Heritage Sites: Rich cultural heritage and iconic landmarks draw tourists, which in turn shape hotel development to accommodate a variety of visitor experiences and preferences.

Despite lower growth rates, travel in the Asian area is nevertheless strong. Group and individual business travel have gradually returned and are expected to contribute considerably to future growth.

CONCLUSION

We concluded that customer delight is a sense of joy and surprise which a customer feels when he received beyond his expectations and feel high degree of surprise which they do not even dream and imagine. The main factors that influence to build customer delight are reliability, responsiveness, assurance, tangibles, empathy and

accessibility. Customer delight provides strategic advantage to the concern. In the comparison to customer satisfaction, customer delight provides high degree of customer commitment and loyalty. Satisfy customer may switch the competitors where delighted customer are loyal and retain with the concern event hey share their wonderful experience with the others and helps in building the brand image in the market. Customer delight also have a limitation that delight expand the future expectations of customers because these customers are already in the stage of delight and they want something high degree, new, unique, improved and next best one.

REFERENCES:-

Quintal,S.S. and Reddy, Y.V.(2017), "Customer delight: A Conceptual Framwork", *Amity Journal of Marketing,* Vol. 2, No 1, PP. 36-48.

Chopra, G. (2017), "A study of customer delight with special reference to HDFC bank in Delhi and NCR region", *International Journal of Scientific Research and Management,* Vol. 5, No. 8, PP. 129-151.

Almeida,A.E., Miranda,F.J. and Almeida,P. (2016), "Customer delight: Perception of hotel spa consumers", *European Journal of Tourism, Hospitality and Recreation*, Vol. 7, No. 1, PP. 13-20.

Wibowo, L.A. and Ekaputri, J.J.P. (2016), "Customer delight strategy in hotels", *Atlantis Press,* International conference on sociology education.

Devika, V.P.T. *et al* (2014), "A Study on customer delight of banks in Tiruchirappalli district", *International Journal of Advanced Research in Management and Social Science,* Vol. 3, No 6, PP. 106-126.

Tekchandani, A. (2010), "A study on customer perception with reference to the satisfcation and delight – its impact on sale of passenger cars", *International Journal of ongoing research in Management and IT,* Pg.1-14.

Hanif, M., Hafeez, S., & Adnan Riaz, A. R. (2010). Factors Affecting Customer Satisfaction. International Research Journal of Finance and Economics, lxii (60), 44-52.

Torres, E. & Kline, S. (2006). From satisfaction to delight:a model for the hotel industry. International Journal of Contemporary Hospitality Management, 18 (4), 290-301.

Berman, B. (2005), "How to delight your customers", *California Management Review,* Vol.48, No. 1, PP.129-151.

Verma, H. V. (2003). Customer Outrage and Delight. Journal of Service Research, 3 (August), 119-133.

Kwong, K. K. & Yau, O. H. M. (2002). The Conceptualization of Customer Delight: A Research Framework. *Asia Pacific Management Review,* Vol. 7, No 1, PP. 255-265.

Rust, R.T. & Oliver R.L. (2000). Should we delight the customer? Journal of the Academy of Marketing Science, 28 (1), 86-94.

Parasuraman, A., Zeithaml, V.A. & Berry, L.L. (1988). SERVQUAL: a multi-item scale formeasuring consumer perceptions of the service quality. Journal of Retailing, Vol. 64, No. 1, 12-40.

Oliver, R., Rust, L., & Varki, R.T.S., (1997). Customer delight: foundations, findings and managerial insight. Journal of Retailing, 73 (3), 311-336.

https://fhahoreca.com/blog/hotel-industry/#:~:text=The%20hotel%20industry%20is%20defined,tourism%2C%20transportation%2C%20and%20events.

PERSONAL DETAILS

Name: Chetna D/O Raju Singh
Address: Old Bus Stand, Near Gurudwara,
Ward No. 19, Sohna (Gurugram) 122103
Contact: 8901754975, 9996204975
chetnasohna@gmail.com

45

The Paranoid Society of Post-apartheid South Africa with Reference to Nadine Gordimer's Select Short Stories

Sk Jiaul Haque

Abstract:

The case of paranoia is when someone feels extremely worried or afraid that something bad might happen, often thinking that others are trying to harm or deceive them, even if there's no evidence for it. It's like always feeling suspicious or excessively scared about things around one, even when one might not be as threatening as one seems. Generally, it does not happen to one overnight. One must have an opposite and derogatory history related to the thing or person one is suffering from the phenomenon of paranoia which is the psychological retort in long run. Thus a 'paranoid society' is meant to say here an ambience afflicted with irrational fear and suspicion among people who suffer from the sense of paranoia towards the people once they have wronged with. We get such an apt and telling example from the post Apartheid society of South Africa. However, this research paper delves into the theme of paranoia in post-Apartheid South Africa as depicted in selected short stories by Nadine Gordimer. It explores how the legacy of Apartheid has created a delusion of fear, suspicion and mistrust among individuals and communities. Tersely speaking, the paper, through an analysis of Gordimer's selective short stories, investigates the psychological and social impacts of paranoia in a country striving to overcome its history of segregation and oppression.

Key words: paranoia, fear, apartheid, colonialism, allegory

'Paranoia' is largely a medical term that refers to a kind of disease, a mental illness inflicted with which a person suffers from an unrealistic fear or mistrust of others or from a fake sense of being harmed by the surrounding people or phenomenon. One of the major reasons behind this has been researched out that when one offends or oppresses an individual or individuals having no actual fault, one goes against one's human-self and it creates an unconscious sickness towards the oppressed ones in the mind of the oppressor. And if the offender repeatedly does the same thing, he or she develops a stock of unconscious sickness that happens to be a case of paranoia in the oozing hour of his or her life. This is how a person may be paranoid, but what about the 'paranoid society' of the title words? It is simple and may be understood by the analogy. While a stronger or powerful person does wrong repeatedly to his or her inferior, he or she may be paranoid in long run by the justice of mental retort. Likewise a group of people who are in a better position of a society sometimes becomes a representative of the oppressive class that repeatedly oppresses the helpless group of people in the society. But the unconscious guilt of the oppressive class people turns out to be a pervasive paranoia in the society by the justice of the flux. And thus a paranoid society is created. By the way, an unprecedented precedence of such a paranoid society occurs in the country of South Africa when it has long run through the drudgery. And it happens due to the prolong persecutions of the South African people by the European settlers. Actually, South Africa first came into being as a Colony. And its colonization began with the establishment of a refreshment hub at the Cape of Good Hope by the Dutch East India Company in 1652. The main reason behind that was the importance of the strategic location of South Africa, which prompted the Dutch and the British to colonize the country. In this context, the Dutch laid foundation of a new society with the 1652 settlement which was the very outset of racial discrimination between the colonized and the colonizer, between the whites and the no-whites in the history of South Africa. Consequently the Dutch began to proceed from the Cape Town in the quest of more land and came to be known as trekboers (travelling farmers). They gradually made their attitude that it was there right to own the plenty of South African land as much as they can. By the bye, they could have a strong control upon arms and religion. Moreover, the European Dutch could find the credulous and peaceful nature of the indigenous people of South Africa as a great opportunity to make them into servants and slaves in the name of religion and progress. This is how, with time passing, slavery became a dominant institution in the early years of the Dutch settlement. And after the Boer war between the Dutch and the British settlers while a united government of both the white colonizers is made in 1910, a refined and extended form of slavery and oppression had been initiated to be practiced in the name of 'apartheid policies', the various types of racial discrimination that ultimately turned into laws with the establishment of all-white government in 1948. Hence we see how the simple credulous natives of a country gradually become fettered with chains both socially and politically by the crude and nasty shrewdness of the European settlers. However, although the original resourceful mining country had been first discovered by the European settlers in their course of worldwide business through sea voyage in 1610, it became an attraction of many travelers, refugees and rich people throughout the world due to

its natural beauties, resources and geographical location later on. The Dutch and British sailors reached the Cape Town of the country, started business and finally settled there. Apart from them there were many white people who came from many European countries later on for the sake of travelling and could not return home. Even some of the white German refugees also came wandering to the land of South Africa and started living there. And gradually the land is invested by the Asians also who are considered as the colored ones. Thus, with the time passing, the less populated country becomes a populous one where a multi-colored, multi-ethos society is formed. But while many of the strangers are living peacefully with the indigenous people of the country, the European settlers start shaking white supremacy. The white sailors join active politics and do a lot to dominate the society. And they become successful in a while by their pretence and shrewdness. They turn into usurpers and oppressors. In the course they colonize the whole country in due time. But, it may not be said that all the white people were usurpers and oppressors, for there were many generations of the white people living together and some whites were already born on the soil of the country as a result of their fathers or forefathers' migration there. Of course, the white population was a minority there but they grasped the highest social, economical and political power. They had become the ruler of the native Black people. By the way there are many apolitical affluent white people who were sympathetic to the Black people, but they indirectly consuming the racial facilities wrongly created by some people of their own race. They may be termed as white liberals but they cannot keep themselves unstained because in spite of their love and sympathy towards the native Black people they can neither oppose the white oppressors nor kick off the racial privilege they are in. Nonetheless, there were, though a few, such common white people who could go against the injustice of their own race and stand solid with the deprived Black people in of the country. Nadine Gordimer was among the such few great humanists. She belonged to the same European whites as an identical race in the country but her parentage was not from the same from the white usurpers of the land. She was hailed from the white emigrant Jew parents who had always a soft corner for the poor and have-nots. And she was born in such a time on the soil of the country when its colonial drudgeries were in full swing. As a matter of fact, she had to see and face many prevailing nasty policies of the barbaric white colonialist of the then South Africa. However, Gordimer from her early childhood had a brilliant writer and she had a natural soft corner of her mother. Hence, most of the early novels and short stories of Gordimer are embedded with the political struggles of all the deprived indigenous black people of South Africa. She joined active politics, campaigned against the apartheid laws of the white government and had become an anti-apartheid icon. However, in long run her effort and struggle became successful when the African National Congress under Nelson Mandela won the election in 1994 and a liberated multi-cultured democratic South Africa is formed. But this was also the critical transitional hour when many a critics asked Gordimer: “Once Apartheid is abolished entirely, do you think there will still be something for you to write about?” (Clingman 137). For so far both her life and writings were dedicated to eliminate the colonial oppressive government. The question of the critics was legitimate. But the activist writer was a great seer of her society. She observed that the moral of her society had been eroded due to the prolonged colonial drudgeries and discriminations. People had become divisive, diffident and suspicious. They could not get over the side-effects of the nasty apartheid laws of the colonial government even after the abolition of the laws and the law makers. And this was what the answer to question of the critics that Gordimer gave through the themes of her later writings- the post apartheid after-maths, among which 'the social paranoia', the unnecessary fear and suspicion among people in the society, was a prominent one.

Thus, we see that South Africa's transition from Apartheid to democracy marked a significant period in its history. The prolonged practiced of the colonial persecutions made its society fragile and eroded. People were still suffering from economic and mental crisis. There was always an air of fear and frustration. The society became paranoid. And the paranoia was working in the minds of the many sophisticated white people who could not leave the country at the time of its independence. Though they did not oppressed the native Africans but they belonged to the race of the oppressor. And some of them were white liberals who had sympathy and love to the Black people but could not do anything against the oppressors. Hence all the existing white residents of the newly democratic South Africa were in confusion and mental dilemma because they felt that knowingly or unknowingly they were offenders and they were likely to repay it. They were suffering from the sense of security and the fear of being revenged by the destitute black people. On the other hand, being freed from the colonial bondage the black millions were very happy but helpless in their social and economical condition. The colonial practice of divisive and destructive policies like Apartheid for a long time had left deep scars on the social and economical fabric of the nation. Thus, both the races-

the white and the black of the present South Africa were going through a restless condition of the obvious post-apartheid consequences. The so far privileged people, for the old racial guilt of their past, are getting into a likely sense of being revenged, while the newly freed common native black people cannot get rid of the apartheid-ridden fear, suspicion, mistrust and a sense of being monitored for years. As a matter of fact, a common air of paranoia in the society is largely pervaded. Thus, paranoia had become one of the prominent colonial after-effects. And Nadine Gordimer the South African social activist writer intricately weaves the theme of paranoia into many of her post-apartheid short stories shedding keen light on the psychological impact of Apartheid on the characters grappling with fear, suspicion, and a constant sense of insecurities. However, this research paper employs a qualitative analysis of some of the select short stories by Nadine Gordimer such as *Once Upon a Time*, *The Ultimate Safari*, and *Something Out There* which provide a nuanced understanding of the post-Apartheid era, capturing the complexities of human emotions in a society reeling from its recently past history. Besides, the close analysis of the narratives will manifest the recurring motifs, character portrayals, and narrative techniques used by Gordimer to depict the theme of paranoia in post-Apartheid South Africa.

The most important short story by Nadine Gordimer that delves into the psychological impact of paranoia in post-Apartheid South Africa is *Once Upon a Time*. The story sums up the atmosphere of fear, suspicion, and insecurity prevalent in society through the experiences of a suburban family. It revolves round the sophisticated suburban white family striving to protect themselves from perceived threats, both real and imagined. They live in a gated community, constantly fortifying their home with higher security measures, reflecting the pervasive atmosphere of paranoia in the society. The family's actions, such as installing electrified alarming gate and reinforcing barriers are symbolic of their desire to shield themselves from the outside world because of a probability of being harmed. But "the alarm was often answered- it seemed- by other burglar alarms, in other houses, with a neighborhood response of howls and sirens, wails and whistles that continued, petulantly, to call the intruders back into their shelter and security" (Gordimer 26). Hence the case of paranoia happens in the minds of the family members and it marks the community's pervasive sense of fear and suspicion. However, the motif of paranoia intensifies as the family becomes increasingly apprehensive about perceived intruders. Their fear amplifies to the extent where they accidentally cause harm to an innocent bystander, and this proves the devastating consequences of living in a perpetual state of suspicion. This is how the story of Gordimer skillfully captures the insidious nature of paranoia, showcasing how it not only affects individual behavior but also shapes communal attitudes. The story portrays the erosion of trust, the isolation caused by constant vigilance, and the tragic consequences of allowing fear to dictate actions. Thus the story serves as a poignant critique of the societal repercussions of paranoia.

The Ultimate Safari by Nadine Gordimer is another exciting story that explores the profound impact of paranoia in a post-Apartheid South Africa through elusive narratives set in a dystopian world. The story pivots on a group of children who embark on a treacherous journey to escape the war-time chaos and violence in their country. And paranoia is the central theme that vividly depicts through the children's experiences as they go through a wild dense forest as a last means to reach the refugee camps on the border. The forest was fraught with all kinds of danger. Throughout their harrowing journey, the children live in a constant fear of being killed by the wild animals or discovered, captured and harmed by any stranger. A claustrophobic sense of fear and suspicion always haunts their minds. However, this fear is not only rooted in the immediate dangers of their surroundings but also in the broader societal atmosphere of mistrust and uncertainty that their colonial country levied upon them. They say, "we have no home; the animals don't know we're refugees" (Gordimer 49). And this is how the story showcases how paranoia shapes the children's behavior and interactions. They learn to be cautious, wary of strangers, and constantly alert to potential threats. The adults' instructions to the children reflect the deep-seated paranoia prevalent in their society, urging them to hide, stay silent, and avoid drawing attention to themselves at all costs. Thus the narrative portrays the devastating consequences of a society plagued by paranoia, where individuals are forced to navigate a world characterized by fear, suspicion, and the desperate quest for safety. What is more, the story underscores the tragic reality of how paranoia, born from historical injustices and ongoing turmoil, can profoundly shape the lives of individuals, especially the innocent and vulnerable. Finally, it expresses the profound psychological impact of living in a society where fear and mistrust permeate every aspect of life, leaving a haunting impression on the collective psyche of a nation striving to overcome its tumultuous past.

However, there are many other short stories of Nadine Gordime that penetrate the theme of paranoia, and *Something Out There* is the most outstanding among them. In the story a strange, apelike creature is terrorizing the

affluent white suburbs of Johannesburg. It attacks in the dark of night, killing and maiming pets and frightening anyone trying to encounter it. But the residents live in constant fear due to rumors of a dangerous animal or intruder, amplified by the media and gossip, making everyone feel unsafe and suspicious. As the fear grows, people start to distrust each other, suspecting that anyone could be hiding information about the creature or even be in league with it. But it generates another level of fear and suspicion in the minds of the white suburbs because they are still in a feeling of being revenged by the black revolutionists, and it truly makes them paranoid to the society beyond their own class. This heightened paranoia erodes trust within the larger community, leading to a nervousness that makes people wary and isolated. The psychological impact is also significant. The characters become jumpy and easily startled. Thus, Gordimer portrays effectively how paranoia can spread through a community, fueled by fear of the unknown and mistrust among neighbors, showing the profound impact on both individual psyche and social cohesion. As the author writes, "The residents began to double-lock their doors and windows, whispering about the beast that might be out there" (Gordimer 58), illustrating the pervasive nature of paranoia. Another situation highlights this atmosphere: "Even in broad daylight, there was a nervousness in the air; neighbors eyed each other with suspicion, wondering who might be next" (Gordimer 63). Thus the illusive narratives in the story capture the psychological after-effects of the long run Apartheid Regime, among which paranoia is the most disrupting one.

Finally, it may be said that many of the post-apartheid stories of Gordimer vividly illustrate how paranoia affects both individuals and communities and the pervasive nature of it creates a paranoid society where people live in a likely sense of fear and suspicion. However, from the above analysis and illustration we can trace a historical truth that the independent South Africa had to go through some fatal consequences of its long run colonial disruptions, and a common paranoia in the society is worth remembering. However, it was due to the constant vigilance, discriminating social laws and perpetuating trauma of the recent colonial past. By the way, the short stories discussed above serve as poignant reflections of the pervasive paranoia lingering in post-Apartheid South Africa. The narratives not only depict the psychological turmoil experienced by individuals but also offer insights into the challenges of reconciliation and trust-building in a society scarred by its history. Hence the activist author writes the stories in a didactic and allegorical way so that the people of her society regain confidence, establishing the social harmony.

Works Cited:-

1. Clingman, Stephen *Nadine Gordimer's Fiction and the Irony of Apartheid*, Palgrave Macmillan, 1994

2. Gordimer, Nadine. "*Once Upon a Time*", *Selected Stories by Nadine Gordimer*, Penguin Books, 1991, pp.21-28

3. Gordimer, Nadine. "The Ultimate Safari", *Jump and Other Stories*, Farrar, Straus and Giroux, 1991, pp.41-52

4. Gordimer, Nadine. "Something Out There", *Something Out There*, Viking Press, 1984, pp. 50-75.

5. Huggan, Graham and Helen Tiffin. *Postcolonial Ecocriticism: Literature, Animals, Environment*. Routledge, 2010.

Sk Jiaul Haque
Research scholar
Department of English
Ranchi University
Ranchi

46

जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' में आध्यात्मिक विवेचना

डॉ0 करुणा सिन्धु

सारांश–

स्कन्दगुप्त नाटक में आध्यात्मिक तत्त्व सूक्ष्मता और सुगढ़ता से समाहित है। प्रसाद के नाटकों का मुख्य विषय ऐतिहासिकता, संस्कृति, भारतीय जीवन मूल्य, शौर्य आदि हैं। जब किसी साहित्य में यह प्रमुख बिन्दु होंगे तब अध्यात्म प्राण की तरह उसमें समाहित रहेगा। प्रसाद जी ने नाटक में अध्यात्म के अंतर्गत दर्शनवाद, रहस्यवाद और नियतिवाद को प्रकट किया है। दर्शनवाद में निष्काम कर्म, कर्म के द्वारा फल की प्राप्ति, आत्मा की अमरता पर प्रकाश डाला गया है। रहस्यवाद में प्रकृति की परिवर्तनशीलता और स्कन्दगुप्त का अपना लक्ष्य चुनना और कर्म पथ पर अग्रसर होना है। नियति वाद में सचेतन प्रकृति नियति के रूप में सक्रिय है। यहॉ नियति भाग्य से अलग है। नियति का होना मानव तथा समाज के लिये कल्याणकारी होता है।

हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसाद ने जिस प्रकार अपनी रचनाओं के द्वारा भारत की ऐतिहासिकता, त्याग, शौर्य, जीवन मूल्य और संस्कृति को प्रकट किया है वह अमूल्य और अमर साहित्यिक धरोहर है। अपने नाटकों में प्रसाद जी ने विशेष रूप से त्याग, शौर्य, एकता, ऐतिहासिकता और अतीत के प्रति गौरव को लेखन का विषय बनाया है। 1928 में इसी विषय पर आया प्रसाद जी का 'स्कन्दगुप्त' एक अद्वितीय नाटक है। अतीत के पुनरुत्थान से वर्तमान में गौरव और एकता का संचार प्रसाद जी का लक्ष्य है। इस विषय पर नामवर सिंह कहते हैं ''पुनरुत्थान–भावना प्रसाद में सबसे अधिक थी। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि अनेक ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा उन्होंने जातीय जागरण के प्रसार में सहयोग तो दिया ही, इस भावना के उन्होंने कई गीत भी लिखे, जिसमें 'स्कन्दगुप्त' का प्रसिद्ध गीत ''हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार'' मूर्धन्य है।''[1] वास्तव में पुनरुत्थान की भावना अध्यात्म की एक विशेषता है जो जन्म–मरण और फिर जन्म में विश्वास करता है। स्कन्दगुप्त नाटक में आध्यात्मिक विचारधारा की विशेषता कई रूपों और अर्थों में प्रकट हुई है। भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता इसका आध्यात्मिक गुण है। यह आध्यात्मिक गुण ही कण–कण में ईश्वर को देखने की दृष्टि देता है। भारतीयों में यह अध्यात्म भावना उनके जीवन के व्यवहार का प्रमुख और विशेष गुण है। भारतीय जन–जीवन में सर्वत्र इस भावना के दर्शन होते हैं। प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित मनुष्य ने इन सबके पीछे किसी शक्ति का आभास पाया। कहीं आपदायें तो कहीं प्रकृति ने मानव को सहज सुलभ उपहार भी प्रदान किये। ईश्वर में विश्वास के साथ ही मनुष्य के भीतर इस अध्यात्म भावना के दर्शन हुये। इसका प्रमुख कारण मानसिक चिन्तन भी रहा है। भारत में धर्म तथा ईश्वर के प्रति पर्याप्त निष्ठा रही है तथा समस्त प्राणियों के लिये सुख शांति की कामना प्रकट की गई है। अध्यात्म और संस्कृति की विशेषता को रेखांकित करते हुये सत्यकेतु विद्यालंकार कहते हैं – ''भारत की संस्कृति ने अपने को जिस रूप में अभिव्यक्त किया, उसकी मुख्य विशेषता अध्यात्म भावना है। आँखों से दिखाई देने वाले इस स्थूल संसार के परे भी कोई सत्ता है जिससे जीवन व शक्ति प्राप्त करके यह प्रकृति फलफूल रही है।''[2] इस प्रकार भारतीय संस्कृति में जीव, जगत और जगदीश को केन्द्र में रखकर जगत में रहने के लिये जीव को परस्पर विकसित करते हुए ज्ञान की मुमुक्षा को शांत कर जगदीश को प्राप्त करने का जो अनुशासनात्मक व्यवहार है वह अध्यात्म के धरातल से प्रारम्भ होता है। अध्यात्म के द्वारा हम यह चिंतन करते हैं कि यह सृष्टि क्या है, इसकी परम ऊँचाई कहाँ तक है और इसका अंत क्या होगा। 'एकं सत्य विप्रः बहुधा वदन्ति' का यह संदेश हमें अध्यात्म की ऊँचाई से ही प्राप्त हुआ है जो सभी द्वन्द्वों को समाप्त करते हुए मनुष्यों को कर्मपथ पर चलते हुए ईश्वर को प्राप्त करने को कहता है। सत्यं शिवं सुन्दरम् का उद्घोष हमारे मनीषयों को आध्यात्मिक चिंतन के द्वारा ही प्राप्त हुआ है, जो सत्य और ईश्वर को एक मानते हुए उसी ईश्वर को कल्याणकारी, सुखद और परम लक्ष्य मानता है। हर जीव में परमात्मा देखते हुए सृष्टि के रहस्य को खोज कर मनुष्य जीवन के कर्मों के मार्ग को कल्याणकारी, विवेकपूर्ण और मोक्ष तक पहुँचाना यह हमारे अध्यात्म का मूल विषय है। ऋग्वेद में ऋषियों ने सभी मनुष्यों के लिए एकता और सामूहिकता के द्वारा कर्म करते हुए लक्ष्य को प्राप्त करने को कहा है।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागे यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।

जब सभी मनुष्य एक होकर चलेंगे स्वर और मन समान होंगे तब जिस प्रकार देवताओं ने अपना भाग प्राप्त किया है साथ कार्य करते हुए मनुष्य भी अपना भाग प्राप्त करेंगे। अध्यात्म सामूहिकता, सामाजिकता और सहयोग के द्वारा अपना अधिकार प्राप्त करने का संदेश देता है और यह कर्म का पथ हमें प्रसाद जी के नाटक स्कन्दगुप्त में देखने को मिलता है। प्रसाद जी के नाटक स्कन्दगुप्त में आध्यात्मिकता का तत्त्व मुख्य रूप से तीन भागों में प्रकट हुआ है।

क–दर्शनवाद – मानव सभ्यता का जैसे–जैसे विकास होता गया वैसे ही उस सभ्यता का मनुष्य अपने चहुँ ओर फैले प्रकृति के रहस्यों को खोजने के लिए प्रयासरत होता गया। भारतीय उपमहाद्वीप में रहने

वाली भारतीय संस्कृति में भी मनुष्य और प्रकृति के बीच रहस्यों के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने और इस जिज्ञासा पर मनन और अध्ययन करना प्रारम्भ किया। चिंतन, अध्ययन और योग के द्वारा मनुष्य ने जाना कि जीव और प्रकृति के बीच कोई परमसत्ता या शक्ति है जो इस समस्त ब्रह्माण्ड को चला रही है। मानव बुद्धि ने यह विचार किया कि समस्त सृष्टि किस प्रकार उत्पन्न हुई है, इसका निर्माण क्यों और किसने किया और भविष्य में क्या यह जीव की तरह नष्ट हो जाएगी? क्या कुछ भी शाश्वत नहीं है? जीवित प्राणी क्या शरीर से भिन्न है और यदि भिन्न है तो उसका स्वरूप क्या है? इस तरह के विचारों, प्रश्नों और जिज्ञासाओं से दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। स्कन्दगुप्त नाटक दार्शनिक विचार के तत्त्व प्रसाद जी ने निम्न प्रकार से व्यक्त किये हैं। मातृगुप्त कुमारदास से कहते हैं– ''यदि यह विश्व इन्द्रजाल ही है तो इस इन्द्रजाल की अनन्त इच्छा को पूर्ण करने का साधन– यह मधुर मोह चिरंजीवी हो और अभिलाषा से मचलने वाले भूखे हृदय को आहार मिलें।''[3] मातृगुप्त अपने इसी विचार की व्याख्या और समर्थन के रूप में व्यक्त करते हैं। ''दैन्य जीवन के प्रचंड आतप में सुन्दर मेरी छाया बने'' अर्थात जीवन अगर दीनता और दुख की उष्णता से कष्टपूर्ण और झुलस गया है तो उसके लिए स्नेह और प्रेम की शीतल छाया की आवश्यकता है और शीतल छाया मिलती है तो अवश्य यह कष्टपूर्ण और दैन्यता से झुलसा जीवन सुखद और धन्य हो जाएगा। विश्वरूपी इन्द्रजाल में पड़े हुए अभिलषित जीवन को यदि यह मोह पूरा कर सकता है तो उसकी अपेक्षा जीवन के लिए है। झुलसे हुए जीवन के धन्य होने से तात्पर्य है कि अध्यात्म में जो त्याग भावना है वह व्यक्ति के जीवन को निवृत्ति की ओर ले जाती है। प्रसाद जी जीवन के प्रवृत्ति मार्ग के समर्थक हैं। मातृगुप्त इसलिए कहते हैं कि यह मधुर मोह चिरंजीवी हो। जयमाला विजया से युद्ध को संगीत की तरह बताती हुई कहती है– ''युद्ध क्या गान नहीं है? जीवन के अंतिम दृश्य को जानते हुए अपनी आँखों से देखना जीवन रहस्य को चरम सौन्दर्य की नग्न और भयानक वास्तविकता का अनुभव केवल सच्चे वीर हृदय को होता है, ध्वंसमयी महामाया प्रकृति का वह निरंतर संगीत है। उसे सुनने के लिए हृदय में साहस और बल एकत्र करो। अत्याचार के श्मशान में ही मंगल का शिव का, सत्य सुन्दर संगीत का शुभारम्भ होता है।''[4] विजया को प्राणों का मोह है जयमाला उसे युद्ध की वास्तविक स्थिति का बोध कराती है। प्राण मोह प्रत्येक जीव में होता है परन्तु यह जानते हुए कि यह मेरे जीवन का अंत समय हो सकता है या युद्ध के निष्कर्ष को जानते हुए जो प्राणों का मोह किये बिना रणभूमि में उतरते हैं वे ही सच्चे वीर होते हैं। भारतीय दर्शन में कहा गया है कि शरीर तो नष्ट होने वाला है परन्तु आत्मा अमर है। हमें सिर्फ अपने कर्तव्यों का पालन, फल की इच्छा के बिना करते रहना चाहिए। भारत के दर्शन में हमेंशा से ही भौतिक की अपेक्षा अभौतिक, स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म, मूर्त की अपेक्षा अमूर्त और प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष को प्रधानता देते हुए आये हैं। इस नश्वर शरीर की कल्पना तथा आत्मा के अजर अमर होने का विचार भी अध्यात्म भावना की विशेषता रही है। श्रीमद्भगवद्गीता में नश्वरता को इस प्रकार व्याख्यायित किया है–

''न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।''[5]

आगे श्रीमद्भगवद्गीता में जन्म–मरण और फिर जन्म के विषय में कहा गया है–

,''जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।''[6]

आत्मा की अमरता और जन्म–मरण और फिर जन्म के विज्ञान के अतिरिक्त प्रत्यभिज्ञा दर्शन देखने को मिलता है। जयमाला द्वारा विजया को कही गई पंक्तियों में प्रसाद जी के प्रत्यभिज्ञा दर्शन से सम्बन्धित विचार प्रकट होते हैं। इस दर्शन में शिव तत्व प्रमुख है। अद्वैत दर्शन है। अन्य इसके पैंतिस तत्त्व और हैं जो कि इसी से आविर्भूत हैं। इन पैंतिस तत्त्वों में पहला शिव तथा छठा तत्त्व माया है। प्रसाद जी के अनुसार माया ध्वंसमयी है जो कि प्रकृति और नियति को संचालित करती है। प्रकृति के ध्वंसात्मक परिवर्तन के साथ ही शिव अपने सत्य रूप संगीत की सृष्टि करते हैं। प्रसाद जी ने धार्मिक उथल–पुथल के उसी ऐतिहासिक आलोक में इस कथावस्तु के उपकरणों का चयन किया है। ब्राह्मण तथा बौद्धों के आपसी धार्मिक विवाद ने हिन्दू समाज को आलोड़ित कर रखा था। बौद्ध दर्शन में अहिंसामूलक धर्म के विपरीत ब्राह्मणों ने वैदिक कर्मकाण्डात्मक धर्म की प्रतिष्ठा करके करुणावादी सामाजिक धारा में उथल–पुथल मचा दी थी। तथापि उनकी श्रुति और धर्मशास्त्र प्रणीत संस्कारों की पवित्रता ने पतन की ओर बढ़ रहे बौद्ध धर्म की संकीर्णता में आबद्ध और क्षुब्ध हिन्दू समाज को मुक्तकर नवजीवन प्रदान किया। इस प्रकार स्कन्दगुप्ता नाटक में प्रसाद जी का दर्शनवाद प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रभावित है। संस्कृति में कर्मकाण्ड के रूप में जो हिंसा आ गई थी उसकी भी तर्कयुक्त व्याख्या करके प्रसाद जी ने संस्कृति को विकसित रूप में स्थापित करने का महान प्रयास किया है।

ख– रहस्यवाद – प्रसाद जी की विचारधारा को जानने के लिए हमें सबसे पहले उनके संग्रह काव्य और कला पर दृष्टि डालनी

होगी। प्रसाद जी ने रहस्यवाद को ''काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की मुख्य धारा''[7] कहा है। उनकी काव्य धाराओं की स्वाभाविक परिणीति यही हो सकती है काव्य और कला निबन्ध संग्रह में रहस्यवाद का प्रतिपाद्य इस काव्य धारा की भारतीयता को प्रमाणित करता है। स्कन्दगुप्त नाटक में प्रसाद जी के रहस्यवादी विचार प्रस्तुत हुए हैं। सिंहल के युवराज कुमार धातुसेन मातृगुप्त से कहते हैं– ''सरलयुवक! इस गतिशील जगत में परिवर्तन पर आश्चर्य! परिवर्तन रुका कि महापरिवर्तन प्रलय हुआ। परिवर्तन की सृष्टि ही जीवन है स्थिर होना मृत्यु है, निश्चेष्ट शांतिमरण है। प्रकृति क्रियाशील है। समय, पुरुष और स्त्री की गेंद लेकर दोनों हाथों से खेलता है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग की समष्टि–अभिव्यक्ति की कुंजी है .... यही जड़ प्रकृति का चेतन रहस्य है।''[8] प्रसाद जी का मत है कि हमारे आसपास प्रकृति देखने में जड़ प्रतीत होती है परन्तु परिवर्तन ही इसका रहस्य है। सृष्टि का निर्माण पुरुष और स्त्री रूपी कारकों से होता है। परिवर्तन इसीलिए जीवन है कि व्यक्ति यदि स्थिर और निश्चेष्ट हो जाए तो उसे मरण कहते हैं। स्कन्दगुप्त चक्रपालित से कहते हैं कि मानव जीवन का उद्देश्य मरना और मारना ही नहीं है ऐसे जीवन के प्रति दुख व्यक्त करते हुए कहते हैं इस मानव जीवन का कोई न कोई रहस्य अवश्य ही है भले ही वह उसे जान न सका है। विजया द्वारा मिल रहे धन और विलास के प्रलोभन को अस्वीकार करके स्कन्दगुप्त कहते हैं कि विश्वसनियता के उद्देश्य का मुझे आभास हो रहा है कि इस पृथ्वी को स्वर्ग होना है इस पर देवताओं का निवास होगा, इस कार्य को पूरा करने के उद्देश्य से ही उसने मुझे अस्त्र रूप में भेजा है, मैं उसका अमोघ अस्त्र हूँ। स्कन्दगुप्त के इस विचार से स्पष्ट होता है कि वह किसी अव्यक्त सत्ता के निर्देश पर ही कार्य कर रहा है। स्कन्दगुप्त आगे भी कहता है कि प्रकृति अपनी नियम और रक्षा के लिए स्वयं सन्नद्ध है। उसी प्रकृति के रहस्य पर मैं कार्य कर रहा हूँ। मेरी खुद की कोई इच्छा नहीं है ''परन्तु इस संसार का कोई उद्देश्य है। इसी पृथ्वी को स्वर्ग होना है, इसी पर देवताओं का निवास होगा, विश्व नियंता का ऐसा ही उद्देश्य मुझे विदित होता है फिर उसकी इच्छा क्यों न पूर्ण करूँ..... देशव्यापी हलचल के भीतर कोई शक्ति कार्य कर रही है। पवित्र प्राकृतिक नियम अपनी रक्षा करने के लिए सन्नद्ध है। मैं उसी ब्रह्मचक्र का एक''[9] प्रसाद जी छायावाद के प्रमुख साहित्यकारों में से हैं और वह रहस्यवाद के समर्थक भी हैं। उनमें और दूसरे रहस्यवादी साहित्यकारों में एक अंतर है और वह है जीवन के प्रति दृष्टिकोण यथार्थवाद और छायावाद नाम के निबन्ध में उन्होंने इस धारणा को खण्डित किया है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में लाकर छायावाद की सृष्टि होती है।

ग– नियतिवाद – प्रत्यभिज्ञा दर्शन का 11वां तत्त्व नियति है जिसके विषय में लिखा गया है कि ''इससे परेश का स्वातन्त्र संकुचित हो जाता है। फलतः वह प्रकृति परतन्त्र हो जाता है। कारण परतन्त्र हो जाता है। अर्थात जीव प्रकृति के नियमों में जकड़ जाता है। इसी प्रभाव में जीव का सम्बन्ध देश से– देश विशेष से होता है। उसका व्यापकत्व रूप ऐश्वर्य आच्छादित हो जाता है– संकुचित हो जाता है''[10] नियतिवादी विचारधारा स्कन्दगुप्त नाटक में कतिपय स्थलों पर व्यक्त हुई है। अनंतदेवी ही नियति की बात करती हैं– ''अपनी नियति का पथ मैं अपने पैरों चलूँगी। अपनी शिक्षा रहने दें''[11] जिस नियति का पथ अपने पैरों चलने की बात अनंतदेवी कहती हैं वहीं नियति हर पल एक नये सत्य का उद्घाटन करती है। देवकी को मारने का उनका षड़यंत्र बेकार हो जाता है। पुरगुप्त स्कन्दगुप्त से क्षमा प्राप्त कर ही युवराज पद का अधिकारी होता है। नियति को प्रसाद जी ने सचेतन प्रकृति का कार्य कलाप मानते हैं। सचेतन प्रकृति नियति के रूप में सक्रिय होती है इस प्रकार नियति भाग्य या प्रारब्धवाद से भिन्न है। प्रसाद नियति को अज्ञेय शक्ति मानते हैं किन्तु वह जड़ और अज्ञानमूलक नहीं है उसका प्रवाह मानवता और सृष्टि के कल्याण के लिये है। नियति परमात्मा की नियामिका शक्ति है जो समस्त विश्व का शासन एवं नियंत्रण करती है। प्रसाद जी की विचारधारा पर डॉ0 दिवेश्वर प्रसाद जी लिखते हैं– ''प्रसाद को यथार्थवाद और आदर्शवाद के दोनों सम्मिलित रूप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और यथार्थोन्मुख आदर्शवाद प्रिय है, किन्तु इन दोनों में उन्हें अधिक प्रिय है। यथार्थोन्मुख आदर्शवाद।''[12] स्कन्दगुप्त नाटक प्रसाद जी की इसी विचारधारा की कृति है। स्कन्दगुप्त नाटक की रचना का एकमात्र उद्देश्य स्कन्दगुप्त का चरित्र चित्रण नहीं था अपितु ऐसे उज्ज्वल और गौरवशाली आर्य सम्राट का चित्रण करना है जो वाह्य और मानसिक कर्मभावना में सामंजस्य स्थापित करते हुए भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के गुणों के अनुसार ही व्यवहार करे। स्कन्दगुप्त में निष्काम कर्म, त्याग, शौर्य, आत्म बलिदान, धर्माचरण आदि गुण भारत की संस्कृति और अध्यात्म के धरातल से निकलते है।।

निष्कर्ष–

जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों में भारत के इतिहास, वीरता, ज्ञान, संस्कृति के दर्शन होते हैं। स्कन्दगुप्त नाटक में अध्यात्म और संस्कृति प्राण की तरह समाहित हैं। भारत के लोगों के जीवन का मूल्य तत्त्व ही अध्यात्म है जो उनके मन, कर्म और वचन से प्रकट होता है। अध्यात्म मनुष्य को अपने जीवन के कर्म करने के लिये प्रेरणा देता है और कर्म करते हुए मनुष्य अपने जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है। जीवन–मरण और फिर जीवन यह प्रकृति का एक अंग है। स्कन्दगुप्त श्रेष्ठ आर्य जाति का नायक है और भारत का सम्राट है। उसका धर्म है कि वह युद्ध करे और अपनी

संस्कृति, धर्म और अपने देश को सुरक्षित रखे। यही अध्यात्म भी उपदेश देता है।

संदर्भ–

1. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाश प्रा0 लि0 नई दिल्ली–110002, छठी आवृत्ति–2004, पृष्ठ–73
2. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति का विकास, प्रकाशक–श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष–2000., पृष्ठ–13
3. जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, साक्षी प्रकाशन, एस–16 नवीन शाहदरा दिल्ली–110032, संस्करण 2019, पृष्ठ–48
4. जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, साक्षी प्रकाशन, एस–16 नवीन शाहदरा दिल्ली–110032, संस्करण 2019, पृष्ठ–63
5. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर–273005, वि0सं0–2049, अध्याय–2, श्लोक–20, पृष्ठ–40
6. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर–273005, वि0सं0–2049, अध्याय–2, श्लोक–27, पृष्ठ–42
7. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रकाशन वर्ष 2000, पृष्ठ–31
8. जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, साक्षी प्रकाशन, एस–16 नवीन शाहदरा दिल्ली–110032, संस्करण 2019, पृष्ठ–47
9. जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, साक्षी प्रकाशन, एस–16 नवीन शाहदरा दिल्ली–110032, संस्करण 2019, पृष्ठ–146
10. डॉ0 दयाशंकर शास्त्री, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन, प्रकाशक–सौरभ प्रिन्ट सर्विसेज, लखनऊ, प्रकाशन वर्ष–2001, पृष्ठ–26
11. जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, साक्षी प्रकाशन, एस–16 नवीन शाहदरा दिल्ली–110032, संस्करण 2019, पृष्ठ–48
12. डा0 दिनेश्वरप्रसाद, प्रसादजी की विचारधारा, प्रकाशक–श्री गणेश प्रेस पटना, पृष्ठ–124

डॉ0 करुणा सिन्धु

निवास– लोक कला केन्द्र,

285/391 करेहटा

नया शिव मंदिर

ऐशबाग, लखनऊ–226004 मो0 9839232349

Email- karunasindhu1984@gmail.com

47

प्रो० जे०के० मेहता का अर्थशास्त्र : एक अध्ययन

डॉ0 तान्या शर्मा

सारांश–

जेके मेहतद्धांत के क्षेत्र में सकारात्मक योगदान दिया। उनकी आर्थिक सोच भारतीय जीवन शैली, धर्म और नैतिकता और सभी गांधीवादी दर्शन से बहुत प्रभावित है। मेहता को 1930 के दशक में सीमांत राजस्व की अवधारणा की स्वतंत्र खोज के लिए जाना जाता था। जोन रॉबिन्सन ने अपनी पुस्तक इकोनॉमिक्स ऑफ इम्परफेक्ट कॉम्पिटिशन में इसका जिक्र किया है। हालांकि, मेहता, मुख्यधारा के नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र में अपने योगदान के बजाय, 'अधिकतम आर्थिक आदमी' की तुलना में इसकी आलोचना और मनुष्य के वैकल्पिक मॉडल के निर्माण के प्रयासों के लिए अधिक प्रसिद्ध है। प्रचीन विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्र के प्रोफेसर श्री जे० के० मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मनुष्य के आचरणों का अध्ययन इस उद्देश्य से करता है कि वह आचरण मनुष्य को ऐसी स्थिति में पहुंचाने में कहाँ तक सहायक है जहाँ पर उसे कोई आवश्यकता ही प्रतीत न हो। मनुष्य में दो प्रकार को आवश्यकतायें होती हैं प्रथम सचेत (Conscious) तथा द्वितीय अचेत (Unconscious)। अचेत आवश्यकता की सन्तुष्टि से सुख प्राप्त होता है किन्तु सन्तुष्टि के अभाव में दुख का ज्ञान नहीं होता। अचेत आवश्यकतायें सन्तुष्टि के लिए व्यक्ति में कोई कार्य उत्तेजना (activity) भी नहीं जागृत करती हैं। अचेत आवश्यकतायें तो सचेत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के कार्य के बीच प्रतीत होने लगती है। सचेत आवश्यकतायें वह आवश्यकतायें हैं कि जिनकी सन्तुष्टि न करने से मनुष्य में असन्तुलन (disequilibrium) उत्पन्न करता है जिससे दुख प्रतीत होता है और इस दुख को ही दूर करने के लिए मनुष्य प्रयास प्रारम्भ करता जैसे–जैसे यह सचेत आवश्यकता की सन्तुष्टि का प्रयास या दुख के दूर करने का प्रयास भागे बढ़ता जाता है कर्त्ता सुख का अनुभव करता जाता है। पूर्ण सन्तुष्टि हो जाने पर सुख (Pleasure) का आभास होता है। मनुष्य जब किसी आवश्यकता को प्रतीत करने लगता है तभी उसे दुख (Pain) का अनुभव होता है क्योंकि तब उसे एक असन्तुष्ट आवश्यकता का दुख प्रतीत होता है। अचेत आवश्यकता की असंतुष्टि से दुख नहीं होता जैसे एक व्यक्ति जिसने कभी सिनेमा की चलते–फिरते चित्रों को नहीं देखा न उसके सम्बन्ध में सुना ही है तो उसको सिनेमा की सचेत आवश्यकता (Conscious want) भी नहीं है और इसके कारण उसे दुख भी प्रतीत नहीं होता परन्तु यदि वह सिनेमा में ऐसे चलते–फिरते बोलते चित्र देखे तो उसे आनन्द अवश्य ही प्राप्त होगा। परन्तु सचेत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के साथ ऐसा नहीं होता। सचेत आवश्यकतओं के प्रतीत होते ही दुख प्रारम्भ हो जाता है और सन्तुष्टि होने पर सुख का अनुभव होता है।

प्रो० मेहता : एक दार्शनिक अर्थशास्त्री :

प्रोफेसर जे. के. मेहता ने अर्थशास्त्र को एक नवीन दृष्टि दी थी। उनका चिंतन पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों के भौतिक दृष्टिकोण से सर्वथा विपरीत तथा दर्शन, संस्कृति और अध्यात्म के अनुरूप रहा है। विभिन्न धर्म, दर्शनों में एवं प्राचीन ऋषियों, मुनियों ने सदा से ही मनुष्य को सादा जीवन जीने, अपनी इच्छाओं को कम करने एवं सदाचार, सादगीपूर्वक जीवन व्यतीत करने पर बल दिया है। प्रो. मेहता ने इसी दर्शनको आर्थिक विचारों में व्यक्त करने का प्रयास किया। उनका कहना था– अर्थशास्त्र का संबंध इच्छाओं की संतुष्टि से नहीं अपितु इच्छाओं के अन्त से है जिससे की इच्छारहित अवस्था अर्थात् निर्वाण को प्राप्त किया जा सकता है। इच्छाविहीनता के आर्थिक सिद्धान्त के आधार पर मेहता ने अपने अर्थशास्त्र की संपूर्ण संकल्पना को प्रस्तुत किया।

मेहता ने मुख्य रूप से दार्शनिक दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र की प्रकृति और दायरे पर विचार किया। मेहता ने आर्थि आर्थिक गतिविधि के प्रमुख प्रेरक के रूप में पश्चिमी अर्थशास्त्रियों के असीमित चाहतों के सिद्धांत के प्रतिकार के रूप में अभाव के सिद्धांत को विकसित किया। उनके अनुसार, पहले लोगों के दिमाग में उभरना चाहता है और बाद में जब वे उन्हें संतुष्ट नहीं कर पाते हैं तो दर्द के स्रोत के रूप में और अधिक उभर कर सामने आते हैं। इसके अलावा, जैसे ही कोई इच्छा पूरी हो जाती है, उनके मन में इच्छा की बार–बार संतुष्टि और कई अन्य संबद्ध इकाइयों की पीढ़ी की भावना पैदा होती है। इस प्रकार, किसी चाहत की संतुष्टि, चाहतों के एक नए समूह को जन्म देती है, जिससे अगर चाहत पूरी नहीं हो पाती, तो दर्द का एक नया स्रोत पैदा हो जाता है। एक चाहत की संतुष्टि से दूसरी चाहत को जन्म देने का यह चक्र अनवरत चलता रहता है। इस प्रकार, किसी चाहत की संतुष्टि इच्छा और दर्द के घेरे को बंद नहीं करती है।

मेहता के अनुसार, इच्छाहीनता की स्थिति वह है जिसमें कोई दर्द नहीं होता है और परिणामस्वरूप आनंद प्राप्त करने की कोई संभावना नहीं होती है। ऐसी मनःस्थिति में व्यक्ति जो अनुभव करता है, उसे खुशी द्वारा सर्वोतम रूप से दर्शाया जाता है, जैसा कि मेहता ने कहा। उन्होंने संतुष्टि या सुख और खुशी के बीच अंतर किया। खुशी केवल दर्द को दूर करना नहीं है; यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें कोई दर्द नहीं होता। यह (खुशी) तब अधिकतम होगी जब दर्द शून्य हो जाएगा। इसलिए, जैसा कि मेहता ने दिया है, मानव व्यवहार का अंत खुशी है, हालांकि खुशी, अंत का एक साधन मात्र है।

आनंद की अधिकतमता को केवल उसी हद तक उचित ठहराया जा सकता है, जिस हद तक यह ''खुशी के अंतिम लक्ष्य तक पहुंचने का साधन'' के रूप में कार्य करता है। जब यह अंत पहुँच जाता है जब अभाव की स्थिति प्राप्त हो जाती है मनुष्य उत्तेजनाओं के प्रति

अपनी सामान्य प्रतिक्रिया बंद कर देता है और फिर उन्हें संतुष्ट करने के लिए कोई इच्छा, कोई थाह और कोई दर्दनाक प्रयास नहीं रह जाता है। उनके अनुसार, इसलिए, अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मानव व्यवहार का अध्ययन लंबे समय में दर्द को कम करने के प्रयास के रूप में करता है, या दूसरे शब्दों में, इच्छाओं से मुक्ति पाने और खुशी की स्थिति तक पहुंचने के प्रयास के रूप में करता है।

श्री मेहता के अनुसार आवश्यकता को दूर करना ही सुख प्राप्त करना है। जितना अधिक आवश्यकता को प्रतीत होने से पहले दुख होता है सन्तुष्टि होने पर उतना ही अधिक सुख प्राप्त होता है। जब सुख की अधिकतम मात्रा प्राप्त होती है तो दुख की न्यूनतम मात्रा होती है। आवश्यकता व सुख साथ ही रहते हैं। जब आवश्यकता पूर्ण रूप से दूर हो जाती है तो फिर कोई दुख दूर करने को नहीं रह जाता और इसी समय और अधिक सुख प्राप्त करने की सम्भावना भी नहीं रहती। इस समय मस्तिष्क पूर्ण सन्तुलन की अवस्था में होता है। न ''दुख'' ही, न ''सुख'', परन्तु ''आनन्द'' है। अतः आनन्द इस बात का ज्ञान है कि हमारा मस्तिष्क सन्तुलित अवस्था में है। मेहता के अनुसार मनुष्य के व्यवहार का लक्ष्य आवश्यकताओं को कम करना है, जिससे कि वह अन्त में ऐसी स्थिति में पहुँच जाये कि उसे कोई आवश्यकता ही न रहे। इस समय उसको पूर्ण आनन्द प्राप्त होगा। जितनी आवश्यकतायें कम होंगी मनुष्य उतना ही अधिक इस आनन्द के निकट होगा और आवश्यकतायें पूर्णतः दूर हो जाने पर वह आनन्द (happinese) को प्राप्त करता है।

मन के इस सन्तुलन या आनन्द को प्राप्त करने को प्रो० मेहता ने दो ढंग बताये हैं, एक तो यह कि हम बाह्य वातावरण में इस प्रकार का परिवर्तन करें कि वह मन के अनुकूल हो जाये द्वितीय यह कि हम मन में इस प्रकार की स्थिति पैदा कर दें कि बाह्य वातावरण से उसमें कोई कष्टदायक प्रभाव ही न जागृत हो। इन दोनों ढंगों में प्रथम ढंग से उद्देश्य की पूति का यह अर्थ हुआ कि हम अपने आसपास के उपलब्ध साधनों का प्रयोग करें। यह बिल्कुल वही बात है जो प्रो० राबिन्स ने अधिकतम संन्तुष्टि के सिद्धान्त के अन्तर्गत कही है। परन्तु सन्तुलन प्राप्त करने के लिए यह ढंग सीमित व दोषपूर्ण है। मनुष्य अपनी किसी आवश्यकता की सन्तुष्टि के लिए जो प्रयास करता है उससे वह आवश्यकता तो अवश्य ही सन्तुष्ट हो जाती है परन्तु एक आवश्यकता के 'सन्तुष्ट होने पर दूसरी आवश्यकता प्रकट हो जाती है और आवश्यकतांयें बार–बार प्रतीत भी होती हैं जैसे भूख (आवश्यकता) के सन्तुष्ट होने पर आराम करने की आवश्यकता प्रतीत होती है या अभी दोपहर को भूख शान्त हो गई तो शाम को फिर भूख प्रतीत होती है। अतः आवश्यकताओं का इस प्रकार से दूर करना असम्भव है और न इस प्रकार सन्तुलन ही प्राप्त हो सकता है फिर समस्त आवश्यकताओं का सन्तुष्ट करना भी असम्भव है क्योंकि आवश्यकतायें असीमित हैं अतः सीमित साधनों के प्रयोग से अधिक से अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति। इससे प्रो० मेहता यह परिणाम निकालते हैं कि वातावरण में ही केवल परिवर्तन करके हम पूर्ण रूप से सन्तुलन नहीं प्राप्त कर सकते। इससे हमें अधिकतम उपयोगिता या तृप्ति (Satisfaction) को प्राप्त होती है परन्तु इससे हमें आनन्द नहीं मिलता जो वास्तविक सन्तोष है। वास्तव में अर्थशास्त्र का उद्देश्य उपयोगिता या सन्तुष्टि की वृद्धि करना नहीं है वरन् अधिकतम वास्तविक सुख को प्राप्त करता है और यह आवश्यकताओं में वृद्धि करने से नहीं बल्कि आवश्यकताओं में कमी करके सम्भव हो सकता है। यह उनका दूसरा ढंग है। अर्थात् मानव के मस्तिष्क की वह दशा कि जब उसके ऊपर बाहर से आने वाले प्रभाव न पड़ सकें, उसमें कोई विघ्न न पैदा हो सके। यह मस्तिष्क के अनुशासन से ही प्राप्त हो सकता है और यही पूर्ण सन्तुलन कहलाता है।

अर्थशास्त्र का दर्शन :

प्रो. मेहता एक दार्शनिक अर्थशास्त्री थे जिन्होंने अर्थशास्त्र की व्याख्या दार्शनिक विचारों के आधार पर की। उन्होंने दर्शन को दृढ़तापूर्वक मानवीय ज्ञान की समस्त शाखाओं का मूल आधार माना। उनके अनुसार प्रत्येक विज्ञान में दर्शन की विद्यमानता होती है और अर्थशास्त्र भी इससे अछूता नहीं है। अर्थशास्त्रीय सत्य को प्राप्त करने का प्रयास, अर्थशास्त्र और दर्शनशास्त्र को मिला देता है। प्रतीष्ठित और नव प्रतीष्ठित अर्थशास्त्रियों की तरह मेहता इस बात पर विश्वास नहीं करते है कि आर्थिक विज्ञान मानवीय मांगों की संतुष्टि अत्यधिक सीमा तक नहीं करते हैं। मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र का उद्देश्य मांगों से स्वतंत्रता प्राप्त करके अथवा उनसे निवृत्त होकर मांगविहीनता की अवस्थता में पहुँचने का होना चाहिए। मांगविहीनता की अवस्था में पहुँकर ही व्यक्ति पूर्णानंद अथवा निर्वाण की प्राप्ति करता है। इस स्थिति में अर्थशास्त्र और दर्शनशास्त्र का गठबंधन हो जाता है। वे यह तर्क देते हैं कि अर्थशास्त्र का अंतिम उद्देश्य पूर्ण आनंद की प्राप्ति करना है।

रोबिन्स व मेहता :

पाश्चात्य के देशों ने मनुष्य को आवश्यकताओं की वृद्धि व विभिन्नता में ही विश्वास किया है। इसी से सन्तुष्टि वृद्धि होती है। समसीमान्त उपयोगिता के सिद्धान्त के अनुसार एक सीमा के अन्दर अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त की जा सकती हैं परन्तु क्या इससे वास्तविक सुख की उपज होती है। साधनों की सीमितता से चुनाव की समस्या का उदय होता है और यह निर्णय करना पड़ता है कि किस आवश्यकता को सन्तुष्ट किया जाये और किसे छोड़ा जाये व किस आवश्यकता को किस सीमा तक सन्तुष्ट किया जाय। यह ही तो सब प्रो० राबिन्स का अर्थशास्त्र है। अर्थशास्त्र क्या मानव के व्यवहार का अध्ययन उस प्रयास के रूप में करे जो कुछ लक्ष्यों की पूर्ति व प्राप्ति के लिये किया जाता है– उन लक्ष्यों की पूर्ति प्राप्ति जो स्वयं इससे बड़े व अन्तिम लक्ष्य सन्तुष्टि–वृद्धि की प्राप्ति के साधन ही बन जाते हैं– या स्वयं अन्तिम लक्ष्य या सन्तुष्टि–वृद्धि के लक्ष्य के रूप में? प्रथम दशा में हम लक्ष्यों से तटस्थ व उदासीन हो जाते हैं परन्तु दूसरी दशा में हम लक्ष्यों से विमुख नहीं रह सकते और हमें

वास्तविक विज्ञान के साथ–साथ आदर्श विज्ञान की भी शरण लेनी पड़ती है।

प्रो० राबिन्स ने अर्थशास्त्र की व्याख्या करते हुये यह कल्पना की है कि मानव के सभी कार्य विवेकपूर्ण होते हैं। मनुष्य अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिये बुद्धिमानी व विचार से कार्य करता है। प्रो० मेहता के कथनानुसार क्या मनुष्य का प्रयास इस हेतु होता है कि वह अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करे या अधिकतम उपयोगिता उसके प्रयासों व कार्यों के फलस्वरूप स्वयं प्राप्त हो जाती है। जिन लोगों के कार्य अधिकतर स्वाभाविक रूप से ही होते हैं। उनके कार्यों में विवेकपूर्णता का अंश बहुत कम होता है। आवश्यकतायें तो अपनी तीव्रता के अनुसार, न कि अधिकतम उपयोगिता प्राप्ति के दृष्टिकोण से सन्तुष्ट की जाती हैं।

प्रो० मेहता के अनुसार अधिकतम उपयोगिता या हमारे उपलब्ध साधनों के द्वारा अधिकतम आवश्यकताओं की सन्तुष्टि ही हमारे जीवन का एक मात्र उद्देश्य नहीं है। हम आनन्द चाहते हैं न कि केवल आवश्यकता सन्तुष्टि क्योंकि इससे तो आवश्यकता के द्वारा जागृत दुख का ही अस्थायी अन्त होता है। एक आवश्यकता की सन्तुष्टि पर दूसरी आवश्यकता या आवश्यकतायें उसका स्थान ग्रहण कर लेती हैं और फिर दुख या मेहता के अनुसार असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह चक्र इसी प्रकार चलता ही रहता है और हमको आनन्द (Happiness) नहीं प्रतीत होने पाता। आनन्द की प्राप्ति तो आवश्यकताओं को धीरे–धीरे कम करने तथा अन्त में बिल्कुल निकाल देने से ही सम्भव हो सकती है और तभी पूर्ण मानसिक सन्तुलन की अवस्था प्राप्त होगी। इस हेतु हमारे लिये ''आवश्यकता रहित'' की 'दशा (Wantlessness) को पहुँचना ही उद्देश्य होना चाहिये क्योंकि किसी और प्रकार से आनन्द के आदर्श की प्राप्ति हो ही नहीं सकती है।

प्रो० मेहता व राबिन्स के विचारों में इस प्रकार बड़ा अन्तर है (i) राबिन्स ने लक्ष्यों व साधनों के आधिक्य को माना है परन्तु मेहता का विचार इसके विपरीत है। उन्होंने केवल एक ही लक्ष्य को माना है अर्थात् अधिकतम संतोष या आनन्द की प्राप्ति और केवल एक ही साधन को अर्थात् आवश्यकता–विहीनता (Wantlessness)। (ii) राबिन्स लक्ष्यों की ओर से पूर्णतया तटस्थ व उदासीन है और उनके लिये अर्थशास्त्र केवल वास्तविक विज्ञान ही है, परन्तु मेहता लक्ष्यों की ओर से उदासीन नहीं हैं और उनके लिये अर्थशास्त्र आदर्श विज्ञान भी है। (iii) राबिन्स ने मानव–व्यवहार को उपयोगिता वर्धक माना है परन्तु मेहता में मानव के व्यवहार को पूर्ण आनन्द या पूर्ण मानसिक सन्तुलन प्राप्ति का एक प्रयास ही माना है। (iv) राबिन्स ने मानव व्यवहार को विवेकशील माना है। राबिन्स ने लक्ष्यों को स्वीकृत तत्वों (Data) के रूप में स्वीकार किया परन्तु मेहता लक्ष्यों के चुनाव पर बल देते हैं। इस प्रकार से राबिन्स ने जिस अधिकतम सन्तुष्टि की ओर संकेत किया वह केवल मनोवैज्ञानिक है परन्तु मेहता के लिये आनन्द (Happiness) नैतिक है।

प्रो० मेहता की परिभाषा की आलोचना :

प्रो० मेहता की अर्थशास्त्र की परिभाषा में कई दोष बताये जाते हैं उन्होंने इसको धार्मिक तथा दार्शनिक बना दिया है। उन्होंने इतने ऊँचे आदर्श की चर्चा की है जो एक साधारण व्यक्ति के लिये असम्भव है और न वह इसका अनुसरण ही कर सकता है। यह भी कहा जाता है कि यदि मेहता के अनुसार पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हो गई और मनुष्य आवश्यकता विहीन हो गया तो फिर आदर्शशास्त्र की ही समाप्ति हो जायेगी। उसकी कोई आवश्यकता ही न रहेगी। और फिर क्या कोई ऐसी आवश्यकता नहीं है जिसको मनुष्य से दूर किया ही नहीं जा सकता और यदि हाँ, तो फिर आवश्यकता–विहीनता की परिस्थिति कैसे प्राप्त की जा सकती है। यदि ऐसी परिस्थिति की कल्पना भी कर ली जाये तो फिर सन्तुष्टि की भावना (Feeling of satisfaction) का भी अन्त हो जायेगा। और अधिकतम सन्तोष का प्रश्न भी समाप्त हो जायेगा। हम इन आलोचनाओं पर कुछ विस्तार से विचार करेंगे ।

(i) कहा जाता है कि मेहता ने अर्थशास्त्र के साथ धर्म, दर्शन तथा नैतिकशास्त्रों का समावेश कर दिया है जिससे इस शास्त्र को अर्थशास्त्र के स्थान पर कोई दूसरा ही शास्त्र कहना अधिक उपयुक्त होगा। उनकी परिभाषा में आवश्यकता विहीनता, आनन्द, आत्मा, दुख व सुख इत्यादि शब्द अर्थशास्त्र के नहीं हैं और न यह विचार ही आर्थिक विचारों के साथ चल सकते हैं। अर्थशास्त्र का क्षेत्र इन शास्त्रों के क्षेत्र से भिन्न हैं। परन्तु इसके उत्तर में प्रो० मेहता का तर्क है कि चूंकि अर्थशास्त्र के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है मानव के सुख को अधिकतम करना, अतः आवश्यकता को दूर करने की क्रिया में मानव का जो व्यवहार व आचरण दृष्टिगोचर होता है उसका अध्ययन जरूरी हो जाता है और इस कारण अर्थशास्त्र के अध्ययन में इन आचरणों का भी स्थान होना चाहिये। प्रो० मेहता के इस तर्कपूर्ण विवाद को यदि स्वीकार कर लिया जाये तो अर्थशास्त्र की सम्पूर्ण विषय सामग्री को फिर से निश्चित करना पड़ेगा और अब तक भारतवर्ष व विदेशों में अर्थशास्त्र में जो कुछ अध्ययन किया गया है उसमें फिर से एक बार उलट फेर करना अनिवार्य हो जायेगा।

(ii) प्रो० मेहता के इस विचार पर भी आपत्ति की जाती है कि मनुष्य का अंन्तिम लक्ष्य तो सन्तुष्टि को चरम सीमा तक बढ़ाना (Maximization of happiness) है। कहा जाता है कि साधारण मनुष्य की क्रियाओं का यह लक्ष्य नहीं होता। उसका कार्य तो स्वभाव द्वारा प्रेरित होता है; वह इस दृष्टिकोण से कार्य नहीं करता कि वह अधिकतम सुख प्राप्त करे। जीवन तो सुख–दुख का घर ही है, इन सुखों–दुखों को झेलता हुआ वह जीवन व्यतीत करता चला जाता है और जब ऐसा है तो एक ऐसे व्यक्ति की क्यों कल्पना की जाये जो इन भावनाओं व विचारों से दूर हो, यह तो फिर वही प्राचीन अर्थशास्त्रियों के आर्थिक मनुष्य (Economic man) का गड़ा मुर्दा उखाड़ना है। यह तर्क विवेकपूर्ण है, परन्तु यदि इस तर्क पर हम भारतीय विचार से दृष्टिपात करें तो हमें यह दिखाई देता है

कि हमारे ऋषि–मुनियों ने तो इसी आवश्यकता विहीनता की ही शिक्षा दी है। आवश्यकताओं व इच्छाओं को कम करना ही आनन्द को प्राप्त करना है। महात्मा बुद्ध ने भी यही उपदेश दिशा था और आधुनिक युग में महात्मा गांधी ने भी यही शिक्षा दी है। इन सब के होते हुए भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि साधारण व्यक्ति की पहुँच से यह आवश्यकता–विहीनतां का आदर्श बाहर है और प्रो० मेहता अत्यधिक आदर्शवादी हैं।

(iii) प्रो० मेहता के अर्थशास्त्र पर एक आपत्ति यह की जाती है कि उनके अनुसार मनुष्य का लक्ष्य अधिकतम सन्तुष्टि की वृद्धि करता है अधिकतम सुख या आनन्द उसी समय प्राप्त होता है जब आवश्यकतायें मन से बिल्कुल निकाल दी जायें। मनुष्य के साथ आवश्यकतायें हैं आवश्यकता की सन्तुष्टि से ही सुख प्राप्त होता है और आवश्यकता की अनुपस्थिति में संन्तुष्टि की भी अनुपस्थिति होगी तो आवश्यकता के रहने पर सुख या आनन्द की कल्पना कैसे की जा सकती है। बिना आवश्यकताओं के सुख न होगा क्योंकि कोई आवश्यकता ही सन्तुष्ट करने के लिये न रहेगी अतः हमको अधिक से अधिक आवश्यकता रखनी चाहिये ताकि उनकी सन्तुष्टि से हमको अधिक से अधिक सुख मिले। यदि थोड़ी सी ही आवश्यकतायें होंगी तो थोड़ा ही आनन्द प्राप्त होगा। इस प्रकार के विचार भ्रमात्मक हैं। प्रो० मेहता के कथनानुसार हम ऐसा तर्क करते समय यह भूल जाते हैं कि यदि हमारे मन में आवश्यकतायें न होंगी तो हमें दुख भी न होगा। दुखों की पूर्ण अनुपस्थिति ही पूर्ण आनन्द (Happiness) है। आवश्यकतायें अपने स्वभाव के अनुसार बार–बार आती ही रहती हैं और हमको सुख (Pleasure) की प्राप्ति के लिये इन आवश्यकताओं को सन्तुष्टि के लिये निरन्तर प्रयास करते रहना पड़ता है अतः सुख की प्राप्ति केवल आवश्यकता को सन्तुष्टि करके ही हो सकती है परन्तु यदि आवश्यकतायें आयें ही नहीं तो किसी आवश्यकता की सन्तुष्टि से जो सुख की भावना प्रतीत होती है वह सदैव बनी रहेगी। आवश्यकता को सन्तुष्टि के लिये व्यक्ति प्रयास करते हैं यही इस बात का द्योतक है कि हम आवश्यकतायें नहीं चाहते हैं और एक मानसिक सन्तुलन वाली दशा को प्राप्त करने को निरन्तर इच्छुक रहते हैं। मनुष्य को आवश्यकता की सन्तुष्टि से सुख मिलता है यह इसी कारण कि वह जानता है कि इस प्रकार आवश्यकता–सन्तुष्टि से हम अपने अन्तिम लक्ष्य (मानसिक सन्तुलन) से निकट होते जाते हैं। हमको इस लक्ष्य की ओर पहुँचने की ही सदा चिन्ता रहती है यदि यह बात न होती तो आवश्यकता सन्तुष्टि भी न होती। आवश्यकता की सन्तुष्टि हम आवश्यकता की सन्तुष्टि के हेतु ही नहीं करते वरन् एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये। अर्थात् मानसिक सन्तुलन या पूर्णानन्द।

(iv) प्रो० मेहता के ऊपर यह भी एक आक्षेप है कि उनके अर्थशास्त्र से अर्थशास्त्र का ही विनाश हो जायेगा। जब मनुष्य एक ऐसी दशा को प्राप्त कर लेगा जब उसको कोई आवश्यकता ही न रहेगी और उसको पूर्णानन्द प्राप्त होगा तो फिर यह विविध साधनों के चुनाव व निर्णय की समस्या का भी अन्त हो जायेगा। और फिर अर्थशास्त्र की ही क्या आवश्यकता रहेगी। अर्थशास्त्र का भी अन्त हो जायेगा। यह तर्क ठीक है परन्तु अर्थशास्त्र के विनाश पर पश्चाताप की क्या आवश्यकता? मनुष्य के यदि सब शारीरिक रोग व बाधायें दूर हो जायें और इसके परिणामस्वरूप चिकित्साशास्त्र का अन्त हो जाये तो कौन इसके लिये दुखी होगा। इसी प्रकार यदि मानव की सभी आवश्यकतायें दूर हो जायें तो इसके परिणामस्वरूप यदि अर्थशास्त्र का अन्त हो जाये तो इसमें दुख की क्या बात है।

सारांश यह कि प्रो० मेहता का अर्थशास्त्र मानव जाति के लिये एक सुख–सम्बाद है। मनुष्य कैसे पूर्णानन्द की प्राप्ति कर सकता है। उन्होंने एक प्रकार से भारत के ही विचारों को आर्थिक दृष्टिकोण से हमारे सामने रखा है। महात्मा गौतम बुद्ध तथा महात्मा गांधी के विचार भी इसी प्रकार हैं। वास्तव में मानव का सुख वस्तुओं के आधिक्य में निहित नहीं है वरन् आवश्यकताओं के कम करने में ही है। प्रो० मेहता ने अर्थशास्त्र को एक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रदान किया है और इस विचार से उनका प्रयास सराहनीय है परन्तु फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि उनके विचार अत्यन्त आदर्शवादी हैं। उनका अर्थशास्त्र एक साधारण व्यक्ति से सम्बन्धित भी नहीं प्रतीत होता है और इस दृष्टिकोण से उनका विचार बड़ा संकीर्ण व अनुपयुक्त दिखाई देता है। प्रो० राबिन्स के अनुसार किसी विज्ञान की परिभाषा में यह गुण होना चाहिये कि वह विज्ञान के विशेष सामान्य नियमों (Generalisations) की विषय सामग्री को ठीक प्रकार से बता सके। इस आधार पर प्रो० मेहता की अर्थशास्त्र की परिभाषा नहीं टिकती क्योंकि उन्होंने एक साधारण व्यक्ति के साधारण व स्वाभाविक कार्यों पर ध्यान न देकर उनको एक धार्मिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित कर दिया है।

Reference:

1. J.K. Mehta : Advanced economic theory
2. J.K. Mehta: Lectures on modern economics
3. J.K. Mehta: Fundamental of economics

डॉ0 तान्या शर्मा
सहायक प्रोफेसर
अर्थशास्त्र विभाग (अतिथि)
मगध महिला कॉलेज पटना (बिहार)
पटना विश्वविद्यालय।